ISBN: 978-93-6128-808-1

रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता

- डॉ० राजीव अग्रवाल
- भीम सिंह राजपूत

रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता

डॉ० राजीव अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, अतर्रा (बाँदा)

भीम सिंह राजपूत
एम०ए० (संस्कृत), एम०एड०

रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता

डॉ० राजीव अग्रवाल

भीम सिंह राजपूत

E-book संस्करण: 2025

मूल्य: ₹ 201

ISBN: 978-93-6128-808-1

प्रकाशकः

भीम सिंह राजपूत ग्राम-नीमखेड़ा, पोस्ट-दिदोनियां, जिला- ललितपुर (उत्तर प्रदेश)

Mob.-7388556915

E-mail: bheemsingh7388@gmail.com

मनुष्य को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति माना गया है। शिक्षा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने का माध्यम है। यह हमारी संवेदनशीलता और दृष्टि को प्रखर करती है जिससे राष्ट्रीय एकता बढ़ती है। और समझ एवं चिंतन में स्वतंत्रता आती है। शिक्षा हमारे संविधान में प्रतिष्ठित समाजवाद धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के लक्ष्यों की प्राप्ति में हमारी सहायता करती है। किन्तु यह व्यावहारिकता और यथार्थवाद से कोसों दूर है। शिक्षा का प्रारम्भ इस लक्ष्य को लेकर हुआ कि सामाजिक दृष्टि से अच्छे इंसान तैयार हो किन्तु अब यह विकृत होकर ऐसी प्रणाली में बदल गई है, जो शरीर और बुद्धि की बात तो करती है किन्तु मनुष्य का आध्यात्मिक और भावनात्मक दृष्टि से स्पर्श नहीं करती। इसी का परिणाम है कि जीवन के आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और जन सामान्य का मूल्यों पर से विश्वास उठता जा रहा है।

शिक्षाक्रम में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त साधन बन सके। शिक्षा में प्राचीन एवं आधुनिकता का समन्वय होना चाहिए। भौतिकता, आध्यात्मिकता, व्यवहार व सिद्धान्त

का सन्तुलन होना चाहिए। शिक्षा में पारिवारिक भाव का विकास, नीति व्यवस्था, पाठ्यचर्या एवं पाठ्यक्रम का निर्धारण भी होना चाहिए।

'शिक्षा' का कार्य मानव जीवन को अधिक व्यवस्थित एवं श्रेष्ठ बनाना है। भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा की उत्तम व्यवस्था विभिन्न माध्यमों से की गयी है। इस दृष्टि से उपनिषदों व प्राचीन साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है, जिससे ज्ञान का विस्तार होता रहा है। ऐसा माना जाता है कि उपनिषदों के रहस्यपूर्ण मंत्रों को सरल भाषा में श्रीरामचरितमानस द्वारा जनता तक पहुँचाया गया है। श्रीरामचरितमानस में केवल धार्मिक बातें ही समाविष्ट नहीं है, अपितु शैक्षिक पहलुओं पर भी समुचित चिन्तन पाया जाता है, जो मानव का समुचित सर्वांगीण विकास कर उसे जोड़े रखने का कार्य करता है।

श्रीरामचरितमानस ने ही श्रीराम के आदर्शों को घर-घर पहुँचाया। भारतीय संस्कृति को न केवल भारत में वरन् सम्पूर्ण विश्व में इस ग्रंथ ने जीवित रखा है। विदेशों में बस चुके भारतीयों को अपनी जड़ों से जोड़े रखने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। श्रीरामचरितमानस सर्वांग सुन्दर, उत्तम काव्य लक्षणों से युक्त, साहित्य के सभी रसों का आस्वादन कराने वाला, काव्य कला की दृष्टि से सर्वोच्च, आदर्श गृहस्थ जीवन, आदर्श राजधर्म, आदर्श पारिवारिक जीवन, आदर्श पतिव्रत धर्म, भ्रातृधर्म के साथ भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य तथा सदाचार की शिक्षा देने वाला, सगुण साकार भगवान की आदर्श मानव लीला व्यक्त करने वाला अद्वितीय ग्रंथ है।
श्रीराम का जीवन ऐसा आदर्श है जिसमें एक भारतीय को कैसा जीवन जीना चाहिए. उसका दैनन्दिन आचरण कैसा होना चाहिए तथा पारिवारिक जीवन में किन मर्यादाओं का पालन करते हुए, विभिन्न आश्रमों का निर्वाह कर अपनी जीवन यात्रा आगे बढ़ानी चाहिए, यह सब देखने को मिलता है। छोटी-छोटी चौपाइयों के माध्यम से पूरा जीवन दर्शन, आदर्श व्यक्तित्व के निर्माण की विधा, परिवार के संचालन से लेकर अनीति से लड़ते हुए देवत्व की रक्षा का संघ शक्ति के महत्व का शिक्षण दिया गया है। रामचरितमानस में जहाँ धर्मतंत्र रूपी दंड का राजतंत्र रूपी व्यवस्था तंत्र पर पूर्ण नियंत्रण बताया गया है। वहाँ आदर्श गुरु शिष्य परम्परा व शिष्य धर्म के निर्वाह को भी समझाया गया है। भ्रातृ धर्म का निर्वाह करना, संयुक्त परिवार प्रथा, पिता की आज्ञा का शिरोधार्य पालन, भौतिक जगत के प्रलोभन छोड़कर तप तितिक्षा को जीवन का अंश बनाना रामचरितमानस से ही सीखा जा सकता है लक्ष्मण का कर्तव्य पालन, कठोर तप, श्रीराम का हर जाति वर्ग वर्ण के व्यक्ति से अनन्य प्रेम, असुरता का मर्दन आदि प्रेरणाएं आज भी प्रासंगिक है।
सामाजिक दृष्टि से यह पति-पत्नी के सम्बन्ध, पिता पुत्र के कर्तव्य, गुरु-शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, माता-पिता, पत्नी, पुत्र, भाई, पति के आदर्श को बखूबी प्रस्तुत करती है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह रामराज्य का आदर्श, वानर आदि जातियों में आर्य संस्कृति का प्रसार, नैतिकता, सत्य के प्रति निष्ठा और कर्तव्य के लिए त्याग का आदर्श चित्रण करती है।

प्रस्तुत पुस्तक का शीर्षक "रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता" है। इस पुस्तक को छः अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय का शीर्षक अध्ययन परिचय है, जिसके अन्तर्गत शिक्षा: विकास की प्रक्रिया, वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याएँ, समस्या का प्रादुर्भाव, अध्ययन के उद्देश्य, अध्ययन विधि, अध्ययन की परिसीमांकन, अध्ययन का महत्व एवं सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में अध्ययन से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण किया गया है, जिसके अन्तर्गत शैक्षिक विचारधारा से सम्बन्धित कतिपय शोध अध्ययन की समीक्षा एवं समीक्षात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय गोस्वामी तुलसीदास जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत उनकी जीवन यात्रा तथा व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर सविस्तार चर्चा की गयी है।

चतुर्थ अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास जी की साहित्य सर्जना के अन्तर्गत उनके प्रमाणित तथा अप्रमाणित ग्रन्थों का वर्णन किया गया है।

पञ्चम अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में कुल 7 कांड है जिसका शोधार्थी द्वारा सम्यक प्रकार से अध्ययन कर विशिष्ट शैक्षिक एवं मूल्यपरक कुछ दोहे और चौपाईयों को छाँटा गया और उन्हें 46 शीर्षकों में निबद्ध कर प्रासंगिकता सहित वर्णन किया गया है।

षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत निष्कर्ष, अध्ययन के सुझाव, शैक्षिक उपादेयता एवं भावी शोध हेतु सुझावों को प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक लघु शोध प्रबन्ध पर आधारित है। प्रत्येक शोध कार्य सौददेश्य होता है और शोध कार्य के परिणामों के उचित क्रियान्वयन पर ही यह उद्देश्य सार्थक हो सकता है, इस कार्य के लिए शोध कार्य को जनमानस के लिए सुलभ बनाने के नितांत आवश्यकता होती है। एक मनुष्य के रूप में शोध कार्य को प्रकाशित करने से यह कार्य सुगमता से पूर्ण हो सकता है। शोध कार्य की पुस्तक के रूप में प्रकाशन से वैज्ञानिक ज्ञान में वृद्धि होती है तथा अन्य बुद्धिजीवियों को अनेक क्षेत्रों में नवीन अनुसंधान करने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में किया गया एक प्रयास है। यह पुस्तक निश्चित ही जनमानस में रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता पर प्रकाश डालने में सहायक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के सृजन में संदर्भ ग्रंथ सूची में उल्लिखित विभिन्न पुस्तकों, लेखकों, विचारकों एवं अध्येताओं के ग्रन्थों और विचारों की सहायता ली गयी है। हम उन सभी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में अनेक त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है। अतः यदि अनुभवी विद्वत्गण अवगत कराने का कष्ट करेंगे तो, हम अत्यंत आभारी रहेंगे और आगामी संस्करणों में उन त्रुटियों को दूर कर सकेंगे।

इस पुस्तक सृजन का कार्य, टाइप सेटिंग एवं मुद्रण का कार्य मेरे द्वारा स्वयं किया गया है। अतः मुझे आशा है कि विद्वत्जन एवं मेधावीगण मेरे इस पुस्तक की परिहार्य एवं अपरिहार्य त्रुटियों को क्षमा करते हुए इसका सम्यक मूल्यांकन करेंगे।

दिनांक: 30 मई, 2025 **डॉ० राजीव अग्रवाल**

भीम सिंह राजपूत

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

अध्ययन परिचय

1.1 प्रस्तावना

1.2 समस्या का प्रादुर्भाव

1.3 समस्या कथन

1.4 अध्ययन के उद्देश्य

1.5 अध्ययन विधि

1.6 अध्ययन का परिसीमांकन

1.7 अध्ययन का महत्व
एवं सार्थकता

भारत एक ऐसा देश है, जो धर्म एवं अध्यात्म के क्षेत्र में विश्व का मार्गदर्शक रहा है। हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति एवं आदर्शों, परंपराओं का ही प्रभाव था कि संपूर्ण विश्व में हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार हुआ। हजारों वर्षों से मनुष्य ज्ञान की वृद्धि के साथ -साथ मनुष्य के चिंतन में भी वृद्धि हो रही है। मानव समस्त प्राणियों में बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ है, उनमें ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञान की क्षुधा तृप्त करने की असीम अभिलाषा व क्षमता रहती है। मानव की उत्पत्ति के समय से ही यह प्रमाण मिले हैं कि जितनी भी उन्नति और प्रगति मानव ने की है वह उसकी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण ही संभव हो सकी है।

शिक्षा किसी राष्ट्र के नवनिर्माण एवं उनकी संस्कृति की वाहक होती है। शिक्षा के गौरवशाली अतीत पर ही उसके वर्तमान की दिशा निर्धारित होती है। शिक्षा एक उद्देश्य पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है। जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार कार्यप्रणाली एवं जीवन व्रत में परिवर्तन एवं परिमार्जन किया जाता है। शिक्षा न केवल पथ प्रदर्शक, ज्ञानवर्धक एवं प्रगति की द्योतक होती है बल्कि यह हमारी राष्ट्रीय गरिमा को संरक्षित एवं संवर्धित करती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों का विकास करके उसके व्यवहार का परिमार्जन एवं परिष्करण किया जाता है।

शिक्षा को केवल ज्ञान देने का साधन नहीं माना जा रहा परंतु जब तक शिक्षा जीवन के मूल्यों, आदर्शों एवं परंपराओं, मान्यताओं का परिचय न दें, तब तक वह शिक्षा नहीं कही जा सकती। आज भारत में फैली बुराइयों, सामाजिक कुरीतियों

के कारण नैतिकता का ह्रास होता जा रहा है। इन समस्याओं को हल करने के लिए समाज को शिक्षित होना होगा और इसके लिए शिक्षा व्यवस्था में बदलाव लाना होगा।

समाज के उत्थान एवं उन्नति के लिए प्राचीन काल से ही धर्मगुरु, समाज सुधारकों के प्रयास सराहनीय रहे हैं। समय-समय पर विभिन्न संस्थाओं ने समाज में शिक्षा के व्यापक प्रसार के लिए योगदान दिया है। जैसे समाज में स्त्री शिक्षा, बालकों की शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा आदि इसी क्रम में एक और संस्थान समाज में वंचित और पिछड़े बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दे रहा है।

1.1.1 शिक्षा: विकास की प्रक्रिया

शिक्षा मानव जीवन का आधार है मानव का विकास और उन्नयन शिक्षा पर ही निर्भर है। शिक्षा व्यक्तित्व का निर्माण भी करती है और शृंगार भी करती है। व्यक्तिगत विकास हेतु शिक्षा द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय, सम्पन्न और समृद्ध बनाना चाहता है। शिक्षा के माध्यम से बालक विभिन्न कुशलताओं का विकास करने में सक्षम होता है। शिक्षा से राष्ट्र के नागरिक सुरक्षित, सुशिक्षित, सभ्य, कुशल व ईमानदार बनते हैं जिससे राष्ट्र उन्नति करेगा, समृद्धिशाली बनेगा। हरबार्ट (Herbart) ने कहा है "अच्छे नैतिक चरित्र का विकास ही शिक्षा है।" अतः शिक्षा का लक्ष्य बहुत व्यापक है जिसे रामचरितमानस जैसे महा ग्रंथ में अवश्य पाया जा सकता है।

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा मनुष्य की समस्त जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाया जाता है।

भारत एक ऐसा देश है जो धर्म एवं अध्यात्म के क्षेत्र में विश्व का मार्गदर्शन करता रहा है। हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति तथा आदर्शों एवं परम्पराओं का ही प्रभाव था कि संपूर्ण विश्व में हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार हुआ। यहाँ यह स्वाभाविक है कि ऐसी उत्कृष्ट संस्कृति व्यवस्था स्थापित करना और आदर्शों एवं परंपराओं को निर्धारित करना कैसे संभव हो सका तो इस प्रश्न का उत्तर है अद्वितीय शिक्षा व्यवस्था उत्कृष्ट शिक्षा व्यवस्था के द्वारा भावी पीढ़ी का उच्च आदर्शों आकांक्षाओं, विश्वासों तथा परम्पराओं और सांस्कृतिक संपत्ति को इस प्रकार हस्तांतरित करता है कि व्यक्ति के हृदय में सद्भाव तथा त्याग की भावना प्रज्ज्वलित हो जाती है।

शिक्षा, समाज की एक पीढ़ी द्वारा अपने से निचली पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तांतरण का प्रयास है। इस विचार से शिक्षा एक संस्था के रूप में काम करती है जो व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा समाज की संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है। बच्चा शिक्षा द्वारा समाज के आधारभूत नियमों व्यवस्थाओं समाज के प्रतिमानों एवं मूल्यों को सीखता है। बच्चा समाज से तभी जुड़ पाता है जब वह उस समाज विशेष के इतिहास से अभिमुख होता है।

शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व का विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। जब हम शिक्षा शब्द के प्रयोग को देखते हैं तो मोटे तौर पर यह दो रूपों में प्रयोग में लाया जाता है व्यापक रूप में तथा संकुचित रूप में| व्यापक अर्थ में शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। मनुष्य क्षण-प्रतिक्षण नए-नए अनुभव प्राप्त करता है व करवाता है जिससे उसका दिन-प्रतिदिन का व्यवहार प्रभावित होता है। उसका यह सीखना सिखाना विभिन्न समूहों, उत्सव, पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि अनौपचारिक रूप से होता है। वही सीखना सिखाना शिक्षा के व्यापक तथा विस्तृत रूप में आते हैं। संकुचित अर्थ में शिक्षा किसी समाज में एक निश्चित समय तथा निश्चित स्थानों (विद्यालय, महाविद्यालय) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली एक सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थी निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर सम्बन्धित परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना सीखता है।

समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों व नीतिकारों ने शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार दिए हैं। शिक्षा के अर्थ को समझने में ये विचार भी हमारी सहायता करते हैं। कुछ शिक्षा सम्बन्धी मुख्य विचार यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

"शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।" (महात्मा गांधी)

"मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।" (स्वामी विवेकानन्द)।

"शिक्षा व्यक्ति की उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास है, जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रखकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके।" (जॉन ड्यूवी)

आज की शिक्षा को केवल ज्ञान देने का साधन नहीं माना जा रहा है लेकिन शिक्षा जब तक जीवन के आधार पर है आदर्शों एवं सिद्धांतों का परिचय तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक वह शिक्षा नहीं पा सके। आज भारत में फैली सामाजिक बुराइयाँ जैसे नैतिकता का ह्रास अनुशासनहीनता, मूल्यों का ह्रास आदि समस्याओं का हल हमारी व्यवस्था में सुधार लाकर ही किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षा प्रणाली में बदलाव लाना होगा। यह भारतीय विद्वान शिक्षाविदों के शैक्षिक विचार एवं प्राचीन साहित्यों में वर्णित शैक्षिक विचारों का अध्ययन कर कुछ धर्मगुरुओं एवं समाज सुधारकों द्वारा किए गए शैक्षिक प्रयासों का अध्ययन कर उसका आधार एक नई शिक्षा प्रणाली है स्थापित करने पर ही संभव है ।

1.1.2 वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याएसमस्याएँ

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी के अतिरिक्त प्रशासन और व्यवसाय जैसे तत्वों के समाविष्ट होने के कारण इसकी दशा और दिशा एक सामान्य शिक्षा प्रणाली से बिल्कुल भिन्न हो चुकी है। इसका मूल उद्देश्य अक्षर

ज्ञान से शुरू होकर जीविकोपार्जन के किसी साधन तक सीमित हो चुका है। जिसके चलते मनुष्य का सर्वांगीण विकास बाधित होता है। इस बाधा के उत्पन्न होने के कारण समाज में विभिन्न प्रकार की कुंठाओं और वैमनस्य का अंकुरण होता है, जो आगे चलकर एक वृहद समस्या का रूप धारण कर लेता है जिनमें भेदभाव, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार तथा साम्प्रदायिकता प्रमुख हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की उपयोगिता के आधार पर कुछ विशिष्टताएँ है परन्तु वह उपयोगिता मनुष्य को भौतिक संसाधनों के चरम सुख की तरफ ले जाती है। भौतिक संसाधनों की अधिकता और कमी के आधार पर समाज का विघटन होना शुरू हो जाता है और मनुष्य उच्चवर्गीय, मध्यम वर्गीय तथा निम्न वर्गीय श्रेणियों में गिने जाने लगते हैं जबकि शिक्षा का लक्ष्य असमानता उत्पन्न करना नहीं होता वरन् मानव पीढ़ी के भीतर विद्यमान गुणों को विकसित करते हुए उन्हें पूर्णता प्रदान करना होता है। साथ ही भौतिकता नैतिक मूल्यों से संरक्षित रहती है जिसका विकास आध्यात्मिकता से होता है जो कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली का अंग नहीं है जबकि शिक्षा एक मूलभूत आवश्यकता होती है ताकि हमारी शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकें तथा इस आधार पर ही किसी शिक्षा पद्धति का मूल्यांकन किया जा सकता है। इस शिक्षा पद्धति में आर्थिक आवश्यकता के अतिरिक्त कोई अन्य आवश्यकता को आवश्यकता नहीं समझने की भूल की जाती है, जिसके चलते समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है और इनमें से कुछ समस्याओं की अप्रत्यक्ष रूपरेखा निम्नलिखित है जिनके समाधान व्यक्तिगत रूप से भले ही तलाश किए जाएँ परन्तु सामूहिक रूप से उनकी स्वीकार्यता होनी चाहिए।

- शैक्षिक पाठ्यक्रम का एक निश्चित लक्ष्य और उद्देश्य होना चाहिए। व्यवसायिक शिक्षा और शिक्षा के व्यवसाय ने पारम्परिक शिक्षा को हाशिए पर धकेल दिया है। शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरी तरह से अलग कर दिया गया है, जिसके चलते मानसिक तनाव और शारीरिक समस्याओं की बुनियादी समझ से विद्यार्थी वंचित रह जाता है। शिक्षा केवल किसी विशेष संकाय या विषय में ज्ञान प्रदान करना या किसी को नौकरी हासिल करने या परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन करने के लिए उपयुक्त बनाना नहीं है, बल्कि साथ ही यह तार्किक सोच में एक प्रशिक्षण भी है, जो आने वाली पीढ़ियों को लगातार बदलते परिवेश में समायोजित करने में मदद करता है। इसका अर्थ मन के दरवाजे खोलना, आत्मा को शुद्ध करना और स्वयं की प्राप्ति भी है। शिक्षा की गुणवत्ता सामाजिक लाभ के लिए जनशक्ति की गुणवत्ता को बहुत प्रभावित करती है। किसी भी पाठ्यक्रम में मनोविज्ञान विषय का शामिल होना अनिवार्य होना चाहिए। ताकि स्वयं से जुड़ी अथवा सहपाठियों से जुड़ी ऐसी समस्याओं की पहचान और उनका निवारण किया जा सके।
- मूल्यांकन प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसमें विद्यार्थियों के साथ साथ उन्हें दी जा रही शिक्षा का भी मूल्यांकन हो सके। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की मूल्यांकन पद्धति में सिर्फ विद्यार्थियों का ही मूल्यांकन किया जाता है। उन्हें कैसी शिक्षा मिली इसका कोई प्रमाण नहीं होता जिसके चलते दी जा रही शिक्षा में उत्तरोत्तर सुधार की प्रक्रिया बाधित होती है और सफलता या असफलता का ठीकरा सिर्फ विद्यार्थियों पर ही फोड़ा जाता है।

- बहुभाषी राष्ट्र होने के कारण वर्तमान शिक्षा पद्धति में भाषागत समस्या प्रमुख है, जबकि वैज्ञानिक शोधों के अनुसार मातृभाषा में ही मौलिक चिन्तन होने की पुष्टि की गयी है अतएव मातृभाषा में प्राप्त शिक्षा मौलिक शोध, आविष्कार अथवा ज्ञान का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। फ्रांस, जर्मनी, चीन और जापान जैसे देशों का उदाहरण देना गलत न होगा।
- स्कूलों का सामाजिक स्तर पर उच्च वर्ग अथवा निम्नवर्ग जैसा वर्गीकरण बन्द होना चाहिए तथा इनका व्यावसायीकरण नहीं होना चाहिए, मौलिक अधिकारों में समानता का अधिकार और शिक्षा का अधिकार दोनों शामिल हैं इसका ध्यान रखते हुए कम से कम शैक्षिक स्तर पर एक समानता कायम होनी चहिए।
- शिक्षा का संचरण भावनात्मक जुड़ाव और आत्मीय सम्बन्धों के माध्यम से होना चाहिए ताकि चारित्रिक विशेषताएँ प्रेम और सौहार्द के साथ मिलकर शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य को फलीभूत कर सके।
- देश में आजकल यह बात आम होने लगी है, कि हमारी शिक्षा अपने परिवेश संस्कृति से कटती जा रही है। जिस समाज या संस्कृति से शिक्षा का पोषण होता है और जिसके लिए वह प्रासंगिक होनी चाहिए वह एक दुःस्वप्न सरीखी होती जा रही है। इन सबके बीच जो पढ़-लिख जाता है वह मानो एक बड़ी यांत्रिक व्यवस्था के उपकरण के रूप में ढल जाता है। प्रतिस्पर्धा की दुनिया में उसका उद्देश्य सफलता, उपलब्धि और भौतिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ने तक सीमित हो रहा है।
- दुर्भाग्यवश हमारे देश में शिक्षक, विशेषकर सरकारी स्कूल प्रणाली में काम करने वाले शिक्षकों को प्रशासन की समस्या के रूप में देखा जाता है। इसमें सारा ज़ोर अध्यापकों के कौशल और प्रेरणा को विकसित करने के अतिरिक्त उन्हें कक्षा में लाने पर केंद्रित रहता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (1961) द्वारा कराए गए एक अध्ययन में पाया गया कि शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण डिज़ाइनिंग में शिक्षकों के फीडबैक/पृष्ठपोषण को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता तथा साथ ही स्थानीय मुद्दों में कोई खास बदलाव नहीं किया जाता और न ही इन पर विचार करने को अहमियत दी जाती है। ऐसे प्रशिक्षण का परिणाम बेहद सीमित होता है और न ही यह देखने की चेष्टा की जाती है कि क्या यह कक्षा के स्तर पर प्रभावी है भी या नहीं।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली और इससे जुड़ी समस्याओं पर मैकाले को कोसना और गुरुकुल जैसी परम्परा का विश्लेषण करना उचित होता यदि शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान और तकनीक हमारी जीवनशैली का हिस्सा न होते। अतीत की क्षुब्धता से सीख और शौर्य से हौसला लेते हुए भविष्य के तक्षशिला की नींव रखना महत्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षा एक प्रक्रिया है जो जीवन जीने की कला में परिवर्तित होनी चाहिए और इस कला के माध्यम से बहुत कुछ सीखने का निरन्तर प्रयास करना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए। गाँधी जी ने भी कहा है कि यदि मनुष्य सीखना चाहे तो उसकी हर एक भूल उसे कुछ शिक्षा दे सकती है और प्रेमचन्द जैसे कहानीकार ने लिखा है कि कभी-कभी उन लोगों से भी शिक्षा मिलती है, जिन्हें हम अभिमानवश अज्ञानी समझ लेते हैं। साक्षरता और शिक्षा में सिर्फ यही अन्तर है कि साक्षरता पुस्तकों में कैद होती है लेकिन शिक्षा

संवेदनशीलता और सहृदयता के पंख लगाकर संकल्पशक्ति के साथ विचारों की अट्टालिकाओं पर बैठी होती है जिसका खुलापन सद्भाव का एक आकाश निर्मित करता है जिसके तले मानव सभ्यता अपने परिवेश के साथ आनन्द और सुख की अनुभूति करती है।

1.2 समस्या का प्रादुर्भाव

शिक्षा मनुष्य के जीवन में जीवन चलने वाली प्रक्रिया है। किसी भी देश के विकास एवं उसके सामाजिक उत्थान में उस देश के नागरिकों का सहयोग अति आवश्यक होता है। अतः शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। प्राचीन काल में शिक्षा धार्मिक, संस्कृति एवं नैतिकता से परिपूर्ण होती है। जैसे-जैसे हम आधुनिकता और विज्ञान युग की ओर बढ़ते गए शिक्षा प्रणाली से धर्म संस्कृति और नैतिकता का लोप होता गया। विज्ञान युग तक आते-आते शिक्षा के क्षेत्र में कई बदलाव आए, शिक्षा का व्यवसायीकरण, राजनीतिकरण हुआ परंतु जब तक शिक्षा जीवन के मूल्यों, आदर्शों एवं मान्यताओं का परिचय नहीं देती तब तक वह शिक्षा नहीं कहीं जा सकती|

किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण एवं उसके प्रचार-प्रसार में साहित्यिक पुस्तकें विशेष भूमिका निभाती हैं। साहित्यिक पुस्तकें ज्ञान का संरक्षण भी करती हैं। यदि हम प्राचीन इतिहास के बारे में जानना चाहते हैं, तो इसका अच्छा स्रोत भी पुस्तकें ही हैं। उदाहरण के तौर पर, वैदिक साहित्य से हमें उस काल के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं की जानकारी मिलती है। साहित्यिक पुस्तकें इतिहास के अतिरिक्त विज्ञान के संरक्षण एवं प्रसार में भी सहायक होती हैं। विश्व की हर सभ्यता के विकास में पुस्तकों का प्रमुख योगदान रहा है अर्थात् हम कह सकते हैं कि सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान को भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने में साहित्यिक पुस्तकों की विशेष भूमिका रही है।

पुस्तकें शिक्षा का प्रमुख साधन तो हैं ही, इसके साथ ही इनसे अच्छा मनोरंजन भी होता है। पुस्तकों के माध्यम से लोगों में सद्वृत्तियों के साथ-साथ सृजनात्मकता का विकास भी किया जा सकता है। पुस्तकों की इन्हीं विशेषताओं के कारण इनसे मेरा विशेष लगाव रहा है। पुस्तकों ने हमेशा अच्छे मित्रों के रूप में मेरा साथ दिया है। मुझे अब तक कई पुस्तकों को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इनमें से कई पुस्तकें मुझे प्रिय भी हैं, किन्तु सभी पुस्तकों में 'रामचरितमानस', 'भगवद्गीता' मेरी सर्वाधिक प्रिय पुस्तक है। इसे हिन्दू परिवारों में धर्म-ग्रन्थ का दर्जा प्राप्त है। इसलिए 'रामचरितमानस' हिन्दू संस्कृति का केन्द्र है।

जॉर्ज ग्रियर्सन ने कहा है—"ईसाइयों में बाइबिल का जितना प्रचार है, उससे कहीं अधिक प्रचार और आदर हिन्दुओं में रामचरितमानस का है।"

यह एक ऐसा ग्रंथ है—जिसमें जीवन से सम्बद्ध सभी पक्षों को काव्य-कला-कौशल से एकीकृत किया गया है। प्रायः आज भी समाज में रामचरितमानस से प्रत्येक व्यक्ति को अपने कोई न कोई तथ्य और जीवन सन्दर्भ मिल ही जाता है बावजूद इसके पाश्चात्य संस्कृति और वैज्ञानिक आविष्कारों की चकाचौंध से हर व्यक्ति मतिभ्रम का शिकार है। इस क्रम से कहा जा सकता है कि मुस्लिम शासकों की तलवार ने आठ सौ वर्षों में हिन्दू संस्कृति की जो हानि नहीं करवा सका

प्रायः वहीं हानि पाश्चात्य संस्कृति ने दो सौ वर्षों में ही कर दी। प्रकारान्तर से जैसे तलवार की चोट गर्दन पर पड़ती है, बुद्धि पर नहीं, उसी प्रकार कहा जा सकता है कि पाश्चात्य संस्कृति ने बुद्धि पर चोट पहुंचायी उसने हृदय को प्रभावित नहीं किया। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में क्रिसमस क्रिश्चिपन- नव-वर्ष, वेलेंटाइन डे, मदर्स डे, फादर्स डे जैसे अवसरों पर होने वाले भव्य आयोजनों को देखा जा सकता है। इन आयोजनों के तौर तरीकों का प्रभाव प्रायः भारतीय संस्कृति पर ही पड़ा है जिससे सांस्कृतिक चेतना का स्खलन हुआ है।

आज हर तरफ मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं का ह्रास होता जा रहा है। वर्तमान पीढ़ी आज गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों को अपनाती जा रही है। आज जन्म देने वाले माता-पिता का सम्मान, भ्रातृ तथा मित्र प्रेम, गुरु के प्रति आदर्श, गुरु–शिष्य अनुशासन, राजा और सेवक के कर्तव्य, नारी सम्मान आदि नैतिक मूल्य अपनी संस्कृति के अनुसार दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है। इसलिए पुन: रामचरितमानस में वर्णित आदर्शों, मान्यताओं और मर्यादाओं की रक्षा के लिए भावी पीढ़ी को रामचरितमानस का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर तुलसीदास कृत हिंदी साहित्य का सबसे बड़ा ग्रंथ रामचरितमानस का शिक्षा के क्षेत्र में किन-किन मूल्यों का योगदान है इस पर शोधार्थी द्वारा लघु शोध प्रबंध कार्य करने का निर्णय किया।

वर्तमान समय में रामचरितमानस में अधिक से अधिक शोध कार्य हुए और होते रहेंगे, क्योंकि इसकी विषय वस्तु सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, पारिवारिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक आदि पहलुओं से परिपूर्ण है। और आज हमें भी तुलसीदासजी द्वारा रचित रामचरितमानस पर शोध कार्य करने का शुभ अवसर मिला है जिसको पूर्ण करने में भगवान श्रीराम एवं श्रेष्ठ गुरुजनों की कृपा बनी रहे और वह हमारी अल्पबुद्धि (निकृष्ट बुद्धि) का सद्बुद्धि होने का आशीर्वाद दें और शोध कार्य विघ्न रहित संपन्न हो। इस भावना के साथ सम्पूर्ण रामचरित मानस का अध्ययन कर शैक्षिक मूल्यपरक चौपाइयाँ और दोहों को 46 शीर्षकों में निबद्ध किया गया है।

1.3 समस्या कथन

शोधकर्ता द्वारा शोधकार्य के लिए जिस समस्या का चयन किया गया है, उसका शीर्षक इस प्रकार है—

"रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता"

1.4 अध्ययन के उद्देश्य

- गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करना।
- गोस्वामी तुलसीदास की साहित्यिक सर्जना का अध्ययन करना।
- गोस्वामी तुलसीदास जी विरचित रामचरितमानस में निहित शैक्षिक मूल्यों का अध्ययन कर विभिन्न प्रेरक कहानियों, दृष्टांतों सहित शैक्षिक प्रासांगिकता देना।
- शैक्षिक मूल्यों के निष्कर्ष, सुझाव एवं शैक्षिक उपादेयता का वर्णन करना।

1.5 अध्ययन विधि

किसी भी शोध कार्य में विषय विशेष के बारे में बोधपूर्ण तथ्यान्वेषण के लिए अनुसन्धान अध्ययन विधि शोध क्रिया को सुचारु रूप से परिचालित करने का ढंग होती है। मानव ने समस्या समाधान के लिए अनेक विधियों का अविष्कार किया है, जिसका प्रयोग समस्या की प्रकृति के आधार पर किया जाता है। प्रस्तुत लघु शोध का अध्ययन के उद्देश्य एवं प्रकृति के आधार पर अध्ययन की समस्या को देखते हुए अनुसंधान विधि के रूप में वर्णनात्मक अध्ययन विधि एवं केस अध्ययन विधि का चयन किया गया है।

किसी भी अनुसन्धान को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि समस्या की प्रकृति के अनुरूप शोध विधि का प्रयोग किया जाए। किसी विषय पर किए जाने वाले शोध की विधि उसकी समस्या अथवा तथ्यों पर निर्भर करती है। शोधकर्ता द्वारा शोध कार्य में तुलसीदास विरचित रामचरितमानस में निहित शैक्षिक मूल्यों का अध्ययन किया गया है। अतः शोधकर्ता ने अपने शोध कार्य हेतु विवरणात्मक/वर्णनात्मक अनुसन्धान विधि के अन्तर्गत इकाई अध्ययन (Case Study) विधि का चयन किया है। इकाई अध्ययन को वैयक्तिक अध्ययन, एक वृत्त अध्ययन, एकल एक अध्ययन आदि नामों से भी जाना जाता है।

इकाई अध्ययन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक समय में केवल एक इकाई का अत्यन्त गहराई से अध्ययन किया जाता है। वह इकाई एक व्यक्ति भी हो सकता है और एक समूची संस्था अथवा कोई नीति, प्रक्रिया प्रथा आदि भी हो सकती है। इसी प्रकार किसी एक परिवार एक जन-समूह, एक जाति विशेष, धर्म आदि का व्यापक रूप से किया गया अध्ययन भी एक अध्ययन के अन्तर्गत आता है। इन अध्ययनों का उद्देश्य उस इकाई का प्रत्येक दृष्टिकोण से गहन अध्ययन करके इस बात पर प्रकाश डालना होता है कि वास्तव में समस्या क्या है?, वह किस प्रकार उत्पन्न हुई है?, उसे जन्म देने वाले कारक तत्व एवं प्रक्रियाएँ क्या हैं? तथा वे किस प्रकार गतिशील रही हैं? लक्ष्यानुसार अनुसन्धानकर्ता उस इकाई के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित तथा विभिन्न स्रोतों से सूचना सामग्री एकत्र करता है। उस सूचना सामग्री का उपयुक्त विधि से विश्लेषण करके लक्ष्यानुसार निष्कर्षों का निर्धारण करता है।

इकाई अध्ययन विधि के अन्तर्गत किसी एक सामाजिक इकाई से सम्बन्धित सभी पक्षों का व्यापक, सूक्ष्म तथा गहन अध्ययन किया जाता है।

1.6 अध्ययन का परिसीमांकन

किसी भी शोध में साधन, शक्ति और समय सीमित होने के कारण समस्या के सभी पक्षों का गहन अध्ययन करना कठिन होता है। इसलिए सम्बंधित विषयवस्तु का परिसीमन करना आवश्यक हो जाता है। अध्ययन हेतु शोधार्थी के द्वारा गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी विरचित रामचरितमानस को आधार बनाया गया है। जिसके टीकाकर्ता हनुमान प्रसाद पोद्दार हैं। जिसके द्वारा रामचरितमानस में निहित शैक्षिक मूल्य का अध्ययन तक ही सीमित हैं।

1.7 अध्ययन का महत्व एवं सार्थकता

प्रस्तुत अध्ययन हमें इतिहास, पुराण और हिन्दु धर्म से जोड़ता है। इतिहास की कथाओं को जानने और समझने का अवसर मिलता हैं। इस कृति का चाहे जितनी भी बार अध्ययन किया जाय कुछ न कुछ नया हमें इसमें मिलता है। इसलिए इसमें शोध की कई सम्भावनाएँ निहित हैं। निश्चय ही यह लघु शोध अध्यापकों, विद्यार्थियों एवं जन सामान्य के लिए प्रेरणादायी होगा, वे भी अपने जीवन में लेखनी के सुमन बिखेरने में सक्षम हो सकेंगे, इसके अतिरिक्त विद्यार्थी एवं जनसामान्य भी इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रेरणा प्राप्त कर हिंदी भाषा एवं संस्कृति के उत्थान में अपना योगदान दे सकेंगे।

द्वितीय अध्याय

सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा

2.1 प्रस्तावना

2.1 अध्ययन से सम्बन्धित कतिपय शोध कार्य

2.2 समीक्षात्मक निष्कर्ष

2.1 प्रस्तावना

शोध कार्य के पूर्व सम्पन्न अनुसंधानों को सामूहिक रुप में अनुसन्धान साहित्य की संज्ञा दी जाती है। सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित-अप्रकाशित शोध प्रबंधों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसन्धानकर्ता का अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है। एक अनुसन्धान दूसरे अनुसन्धान के लिए सहायक सिद्ध होता है। इससे एक तो कार्य की पुनरावृत्ति नहीं होती है; दूसरे पहले जिन तथ्यों पर प्रकाश नहीं डाला गया उन पर प्रकाश डालकर शोध ग्रन्थ को महत्वपूर्ण बनाया जा सकता है।

अनुसन्धान कार्य में साहित्य सर्वेक्षण की समीक्षा करने की आवश्यकता, उपयोगिता तथा महत्व स्वयं सिद्ध हैं। अनुसन्धान के क्षेत्र में सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के बिना अनुसन्धानकर्ता का कार्य अंधेरे में तीर चलाने के समान हो जाता है। साहित्य के सर्वेक्षण के द्वारा ही अनुसन्धानकर्ता किसी क्षेत्र में क्या हो चुका है? किस क्षेत्र में क्या करना शेष है? से अलग करके अपनी समस्या को सार्थक, मौलिक तथा अद्वितीय बनाता है एवं अनुसन्धान की एक उपयुक्त रूपरेखा तैयार करने में मदद करता है। अनुसन्धान में साहित्य सर्वेक्षण की आवश्यकता तथा महत्व के बारे में विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से विचार व्यक्त किए हैं।

ट्रेवर्स के अनुसार, *''किसी भी क्षेत्र की समस्याओं एवं तथ्यों से परिचित होने के लिए उस विषय से सम्बन्धित साहित्य को पढ़ना आवश्यक होता है, सम्बन्धित साहित्य की समस्याओं एवं तथ्यों के ज्ञान से शोधकर्त्ता विषय हेतु संगत तथा असंगत बातों की जानकारी प्राप्त करता है।*

डब्ल्यू .आर. बोर्ग *ने साहित्य सर्वेक्षण की आवश्यकता तथा महत्व की चर्चा करते हुए कहा है कि, "किसी भी क्षेत्र का साहित्य उस आधारशिला की रचना करता है जिस पर समस्त भावी कार्य किया जाता है। यदि सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण के द्वारा ज्ञान की इस आधारशिला को दृढ नहीं कर लेते हैं हमारा कार्य सतही व नवसिखुआ होने की सम्भावना है एवं प्राय: पूर्व में किसी अन्य के द्वारा अच्छे ढंग से किया गया कार्य को दोहराना रहता है।"*

"The literature in any field forms the foundation upon which all future work will be built. If we fail to build this foundation of knowledge provided by the literature, our work in likely to be shallow and naive and will often duplicate work that has already been done better by someone else."

—W.R. Borg

किसी भी अनुसन्धान कार्य को उचित रुप से सम्पादित करने के लिए सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण आवश्यक होता है, क्योंकि इसके माध्यम से वह अपने अभीष्ट अनुसन्धान क्षेत्र में अर्थपूर्ण प्रश्न की पहचान करने एवं ठोस तथा वस्तुनिष्ठ आधार प्राप्त करने में समर्थ होता है तथा वह पूर्वान्वेषित अनुसन्धान क्षेत्र या किसी समस्या पर पहले किए गए शोध द्वारा उत्तर पुनः शोध का विषय बनने की दिशा में पुनरावृत्ति दोष से बच सकता है। सम्बन्धित साहित्य से अधोलिखित जानकारी उपलब्ध होती है

- किसी पूर्व अन्वेषित क्षेत्र में शोधों के अंतर्गत ऐसे चरों के विषय में संकेत प्राप्त होते हैं जिन्हें महत्वपूर्ण प्रमाणित किया जा चुका है।
- पूर्व सम्पादित कार्यों तथा अन्य कार्यों की, जिन्हें सार्थक ढंग से आगे बढ़ाया जा सकता है या लागू किया जा सकता है, सूचना प्राप्त होती है।
- किसी क्षेत्र विशेष के अंतर्गत निष्कर्षों की दृष्टि से संपन्न कार्यों की यथास्थिति का पता लगता है।
- लिए गए अनुसन्धान विषय में किस विधि का प्रयोग उपयुक्त होगा, कौन से उपकरण उचित होंगे, किस प्रकार की सांख्यिकी का प्रयोग किया जाएगा इत्यादि कि जानकारी मिलती है।
- लिए गए अनुसन्धान विषय की सफलता तथा इसकी उपयोगिता के संबंध में पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है।
- समस्या के समाधान हेतु अनुसन्धान की समुचित विधि का सुझाव देता है।
- यह अब तक उस क्षेत्र में से हो चुके कार्य की सूचना देता है तथा समस्या के अध्ययन में सूझ पैदा करता है।

प्रस्तुत शोध तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' सम्बन्धित पूर्ववर्ती शोध कार्यो की समीक्षा की गयी जिसका विवरण निम्नलिखित है—

2.2 अध्ययन से सम्बन्धित कतिपय शोध कार्य

साध्वी मुक्ता (2017) ने 'रामचरितमानस के प्रमुख नारी पात्रों की सामाजिक यथार्थता: एक अध्ययन' शीर्षक नामक वाले शोध का अध्ययन किया तो पाया गया कि

रामचरितमानस के प्रमुख नारी पात्रों की सामाजिक यथार्थता : एक अध्ययन

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन युनिवर्सिटी की पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि के लिए प्रस्तुत

: शोध–प्रबंध :

प्रस्तुतकर्ता
साध्वी मुक्ता

शोध निर्देशक
डॉ. राम गोपाल सिंह
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद– 380014

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन युनिवर्सिटी, अहमदाबाद
वर्ष 2017

- रामचरितमानस में नैतिक चेतना के क्षेत्र में मानस की सभी प्रमुख नारियाँ पति परायणा है और सती, पवित्रता, सन्नारी, पुण्या, लोका, श्रद्धेया आदि संज्ञाओं से अभिहित है। आज भी उनके आचरण की पवित्रता में कुल, वंश, लोक और समाज की मर्यादा प्रतिष्ठित है भारत के राष्ट्रीय चेतना की ये उन्नायिकाएँ हैं। कैकेयी ने भी आज अपने आपको आत्मग्लानि में गलाकर क्षमा याचना द्वारा जन कल्याणी की पदवी।
- मध्यकालीन सामाजिक मर्यादा में बंधी हुई मानस की नारियों ने अपने कौटुम्बिक सम्बन्धों को मधुर बना लिया था कन्या, पुत्री, भगिनी, पत्नी मानी, माता, विमाता, दादी, नानी, सखी, और दासी जैसे सम्बन्धों को परिमार्जित करते हुए सीता, कौसल्या, कैकेयी, मन्दोदरी तथा पार्वती आज पत्नी, माता, विमाता शत्रुपत्नी और देवियों के आदर्श को अक्षुण्ण बनाए हुए है। इस मधुर सम्बन्धों में बंधी हुई ये नारियाँ राष्ट्रीय एकता की आधार स्तम्भ है।
- जातिगत गुणों के आधार पर सीता कौसल्या व सुमित्रा ने आदर्श मानवी मन्दोदरी ने आदर्श दानवी और पार्वती ने आदर्श देवी की भूमिका मानस में निभाई थी, किन्तु युग की बदलती हुई वर्गहीन समाज की स्थापना करने की कामना से आज के राम काव्य में ये वर्ग तो नहीं रहे, किन्तु आदर्श और यथार्थ पात्रों के वर्ग अवश्य बन गए है। इस दृष्टि से आज मानस के नारी पात्रों ने यथार्थोन्मुख आदर्शवाद अपना रखा है वे अभी अपने मर्यादावादी, परम्परावादी संस्कारों से पृथक नहीं हो पाए हैं। कैकेयी ने यत्किंचित नारी स्वातंत्र्य के अधिकार का यथार्थवादी स्वर रामचन्द्रिका के निर्माणकाल से ही गुंजा रखा है।
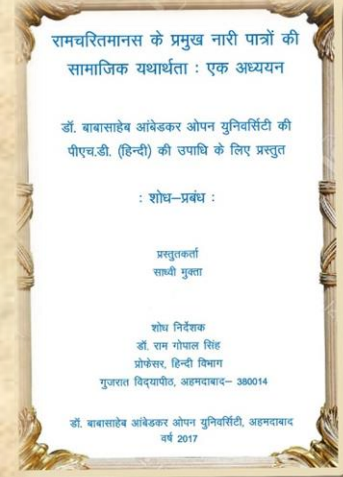
प्रफुल्ल एम० पटेल (2012) ने 'रामचरितमानस का वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य' नामक शोध का अध्ययन किया तो पाया गया कि—

- विज्ञान का कोई भी मुख्य क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसका समावेश इस पवित्र साहित्य ग्रंथ मैं न हुआ हो। 'रामचरितमानस वैसे तो एक आध्यात्मिक महाकाव्य है किन्तु तुलसीदास जी आध्यात्म के साथ विज्ञान को आगे बढ़ाने में भी पीछे नहीं रहे।

  रामचरितमानस' में वर्णित घटनाओं में भी कई वैज्ञानिकता का दर्शन हमें होता है- आकाशवाणी, पुत्रेष्ठि यज्ञ, अहिल्या का पत्थर हो जाना, राम जन्म और ज्योतिषशास्त्र, जलवाणी, मनोवैज्ञानिक गुरु वशिष्ट, मृतक के शव को सुरक्षित

'रामचरितमानस' का वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

गुजरात विद्यापीठ की विद्यावाचस्पति (पीएच.डी.)
हिन्दी की उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबंध

2012

रखना, जयन्त की कुटिलता और राम का ब्रह्मास्त्र, अख सहख, सीता का अग्नि में रक्षा कवच, आकाशमार्गी रथ, रुप बदलना, छायाग्राहिणी पद्धति (राडार पद्धति), पुलिस व्यवस्था रामसेतु का निर्माण, वास्तुकला और शिल्पशास्त्र, अखाड़ा अभ्यास, व्यायाम शालाएँ, पर्यावरण विज्ञान, पुष्पक विमान और जीव विज्ञान आदि घटनाओं में हमें विज्ञान का ज्ञान होता है।

- यहाँ सेतु बाँधने की निपुणता द्वारा विज्ञान की इस सिद्धि की ओर तुलसीदास जी ने संकेत किया है। नल और नील ने एक आधुनिक युग के इंजिनियर का काम किया है।
- वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाय तो रामचरितमानस प्राचीन काल में विज्ञान की पराकाष्ठा पर थी। राम एक ही तीर से मारीच को योजनो दूर फेंक देते हैं। लक्ष्मण एक रेखा खींचकर सीता को उससे बाहर न जाने का अनुरोध करते हैं। रावण उस लक्ष्मण रेखा को पार करने का साहस नहीं कर पाता है। हनुमान उड़कर समुद्र पार कर जाते हैं। उनकी लाई गई संजीवनी बूटी से मूर्च्छित लक्ष्मण पुनः जीवित हो उठते है। भरत अपने तीर से हनुमान को नीचे उतार देते हैं और पर्वत को आकाश में ही ठहरा देते हैं यह सब तत्कालीन विज्ञान के विकास का सूचक और प्रासंगिक भी है।
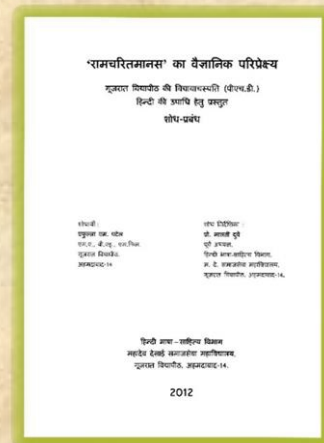
राठौर, आरती देवी आर (2013) ने रामचरितमानस पर शोध किया है जिसका शीर्षक है 'रामचरितमानस में हास्य व्यंग्य' जिसका अध्ययन किया तो पाया है कि—

- रामचरितमानस' में हास्य-व्यंग्य' इस विषय में तुलसीदास जी के राम-भक्ति साहित्य का मूल्यांकन किया गया है। तुलसी जी के काव्य में प्रचलित लोक-प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का दर्शन कराया गया है। साथ ही साथ उनका काव्य हिन्दी साहित्य को प्राप्त एक अनुपम निधि के रूप में माना गया है।
- इसमें विविध प्रसंगों द्वारा हास्य-व्यंग्य प्रकट किया गया है। जैसे बालकांड में शिव-पार्वती विवाह, विश्वमोहिनी एवं नारद प्रसंग, धनुभंग तथा लक्ष्मण परशुराम प्रसंग, अयोध्याकांड में कैकेयी-मंथरा प्रसंग, श्रीराम एवं केवट प्रसंग, अरण्यकांड में शूर्पणखा प्रसंग, किष्किन्धाकांड में बालि सुग्रीव प्रसंग, सुन्दरकांड में अशोक वाटिका में सीता रावण प्रसंग, रावण राजसभा में हनुमान-रावण प्रसंग लंकाकांड में अंगद रावण प्रसंग, उत्तरकाण्ड में भुशुण्डि शाप प्रसंग इस प्रकार विविध प्रसंगो द्वारा जीवन में आत्मसात् करनेवाला एक श्रेष्ठ ग्रंथ है।
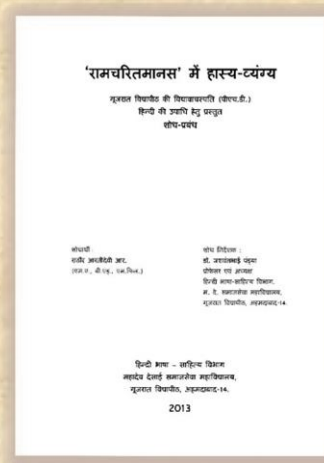
- दुर्बलताओं पर विजय, मूल्यों के प्रति निष्ठा और दायित्वपूर्ण जीवन के विविध आयामों को हास्य-व्यंग्य के द्वारा किस प्रकार सूक्ष्मभाव और विचारों के ताने-बाने के माध्यम से उभारा है, उनका विश्लेषण एवं अनुशीलन किया है।

सपना शुक्ला (2002) ने रामचरितमानस पर शोध किया है जिसका शीर्षक है 'तुलसीदास कृत रामचरितमानस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि' जिसका अध्ययन किया तो पाया है कि तुलसीदास ने रामचरित मानस में सामाजिक चरित्रों की रूपरेखा सांस्कृतिक परम्परा से ग्रहण की है। रामचरित मानस में उन्होंने अपने भावों को विस्तार से निरूपित किया है। सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से उन्होंने मानस में समाज के प्रतिनिधि चरित्रों को उपस्थित किया है जैसे उनके नारी चरित्रों में नारी का भरपुर आदर्श प्रकट होता है इसलिए तुलसी के अधिकांश नारी चरित्रों की भावनाओं के आलंबन तुलसी के आराध्यदेव राम हैं यहीं कारण है कि राम के जीवन से सम्बन्धित एवं उनके अनुकूल नारी चरित्र तुलसी के रामचरित मानस में दिव्य महिमा से मंडित होकर उपस्थित हुए हैं। ऐसे चरित्र हैं कौशल्या, सुमित्रा, मैना,

सुनयना, अनुसूइया, शबरी मन्दोदरी आदि। इसलिए इनके नारी चरित्रों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। सत और असत। उपरोक्त नारियाँ सत्चरित्र का निर्वाह करती है। असत चरित्रों में मंथरा, शूर्पणखा, सुरसा आदि असत् चरित्र का निर्वाह करती हैं ऐसे ही चरित्रों से तुलसी की सामाजिक,सांस्कृतिक दृष्टि और भावना का विशद रूप में प्रकाशन हुआ है।
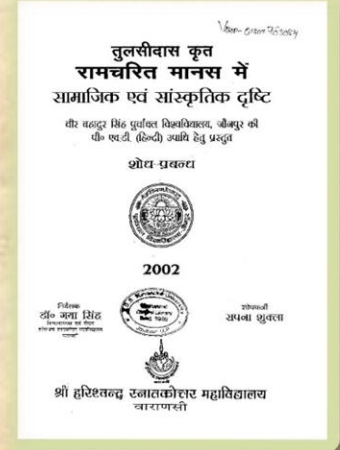
निशा ज० निंबार्क (2009) ने रामचरितमानस पर शोध किया है जिसका शीर्षक है 'रामचरितमानस' में निरूपित यथार्थ और कल्पना जिसका अध्ययन किया तो पाया है कि—

- 'अध्यात्म रामायण' में गौतम ऋषि का आश्रम गंगा तट पर बताया गया है, परन्तु तुलसी ने इस आश्रम को पतित पावनी गंगा के तट की अपेक्षा मिथिला मार्ग में बताया है, क्योंकि भक्त प्रवर तुलसी का ऐसा विश्वास रहा होगा, कि इस प्रकार का पाप कर्म देवनदी गंगा के किनारे असम्भव हैं।
- 'मानस' में तुलसी लोक-परंपरा का आश्रय लेकर सीता की गौरी पूजा की कल्पना अतीव सुन्दर और मार्मिक हैं। सीता के द्वारा गौरी पूजन हेतु आना और श्रीराम का गुरु विश्वामित्र के लिए पुष्पादि हेतु पुष्पावाटिका में अनुज लक्ष्मण के साथ आना। इस प्रकार एक सुन्दर परिकल्पना द्वारा 'मानस' के
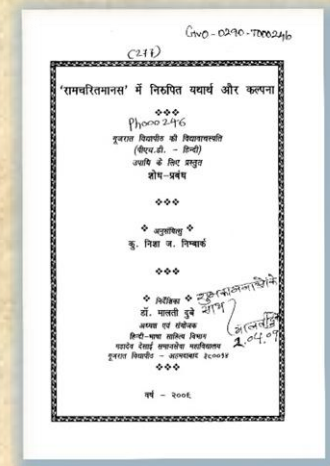
इस माधुर्यभावापन्न मार्मिक प्रसंग की अवतारणा द्वारा तुलसी ने अपनी मनोवैज्ञानिकता पूर्ण काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है।

- इस प्रबंध के प्रथम अध्याय में अनेक प्रसंगो का वर्णन करके तुलसी द्वारा नियोजित नूतन मौलिकता को प्रस्तुत करने का नम्र प्रयास किया गया है। 'मानस' की कथावस्तु का नियोजन सोपानक्रम में भी तुलसी की मौलिकता का परिचय है। बालकाण्ड में शिव चरित्र, अवतार हेतु कथाएँ, मुख्य रामकथा, विश्वामित्र कथा, आदि में तुलसी की मौलिकता का दर्शन होता है।

शिवनारायण (2018) ने रामचरितमानस पर शोध किया है, जिसका शीर्षक है 'तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' और राधेश्याम कथावाचक कृत 'रामायण' का दर्शन एवं भक्ति की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन' जिसका अध्ययन किया तो पाया है कि—

- तुलसीदास का साहित्य जन साधारण के सुख एवं शांति की कामना से ओत-प्रोत है। सोलहवीं शताब्दी के प्रतिभा सम्पन्न कवि अपनी तीक्ष्ण तार्किक बुद्धि से बहुत दूर भविष्य को देखने में सफल हुआ है। और राधेश्याम का साहित्य आधुनिक साहित्य और आधुनिक युग का प्रतिबिम्ब है। एक नाटककार होने के नाते उन्होंने मानवीय संवेदना को आटकीय रूप में अवगत कराने का का प्रयास किया।
- तुलसीदास और राधेश्याम कथावाचक समाजशास्त्री अथवा राजनैतिक विचारक नहीं थे, फिर भी समाज और राजनीतिक में व्याप्त छल-कपट, धोखाधड़ी इत्यादि को उन्होंने अनदेखा नहीं किया है। तत्कालीन शासक और उसकी दुर्नीतियों की व्यंजना उन्होंने कंस और रावण जैसे पौराणिक पात्रों और उनके कार्यों के साथ की है।
- तुलसीदास और राधेश्याम दोनों ने जीव को ब्रह्म का अंश स्वीकार किया है। माया के वशीभूत होने के कारण जीव ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है। इसलिए जीव का लक्ष्य माया को भेदकर ब्रह्म तक पहुँचना दोनों को स्वीकार्य है।
- राधेश्याम रामायण 'रामचरितमानस' तथा 'रामचन्द्रिका' के बाद अपना तीसरा स्थान रखता है। कहीं-कहीं कवि राधेश्याम जी ने प्रबन्ध निर्वाह में कवि कल्पना का अच्छा उत्कर्ष दिखाया है जिसे पढ़कर हृदय गद्गद् हो उठता है।
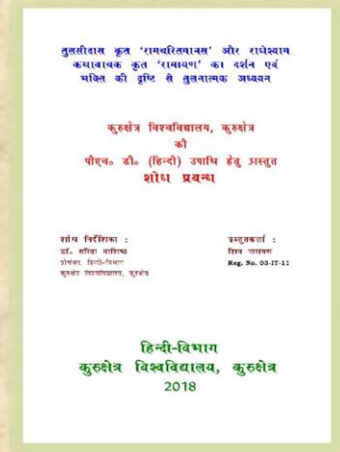
सुमनलता (2018) ने शोध किया है जिसका शीर्षक है 'रामचरितमानस में पर्यावरण' जिसका अध्ययन किया तो पाया है कि—

- गोस्वामीजी ने रामचरितमानस' की रचना में सभी जातियों, वर्गों, पशुओं-पक्षियों से सम्बद्ध समस्याओं और उनके समाधान को प्रस्तुत करते हैं प्रकृति और मानव जो सदैव ही सहचरी रही है, उनका सम्बन्ध अत्यन्त पुराना है। शिशु जब पहली बार अपने आँखे खोलता है तो वह सर्वप्रथम प्रकृति को ही निहारता है, उसी के आलिंगनपाश (या गोद) में चिर निद्रा में सोता है तथा इसके विभिन्न रहस्यों को आश्चर्य से देखता है। इसलिए प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति अत्याधिक संवेदनशीलता देखने को मिलती है।

'रामचरितमानस में पर्यावरण'

कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

की

पी–एच०डी० (हिन्दी)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

शोध–निर्देशक	शोधार्थिनी
प्रो० मानवेन्द्र पाठक (डी० लिट्)	सुमनलता
आचार्य एवं अध्यक्ष	हिन्दी विभाग
हिन्दी विभाग	डी.एस.बी. परिसर
डी.एस.बी. परिसर	कुमाऊँ विश्वविद्यालय
कुमाऊँ विश्वविद्यालय	नैनीताल (उत्तराखण्ड)
नैनीताल (उत्तराखण्ड)

वर्ष–2018

Scanned by CamScanner

- हमारे ऋषियों, मुनियों ने प्राकृतिक शक्तियों को वन्दनीय एवं पूजनीय माना है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद व अन्य धर्मशास्त्रों में धरती व नदियों को 'माता' कहकर सम्बोधित किया गया है। माँ धरती हमारी सभी आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। इसी प्रकार नदियाँ भी हमें जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई 'जल' प्रदान करती हैं। गंगा जो हिमालय के दक्षिण ढलानों से और विंध्याचल के उत्तरी ढलानों के कुछ हिस्सों में बहती है, भारत में अत्यन्त पवित्र मानी जाती है।
- मानस में वर्णित वनों, जंगलों, वनस्पतियों का अध्ययन करें तो न जाने कितने औषधीय गुणों से युक्त वन सम्पदा को तुलसीदास ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाना और समझा होगा। चंदन, अगरू, आम, तुंग, केला, देवदारू, चम्पा, अशोक, पुन्नाग, कटहल, महुआ, असन, पारिजात, लोध, कदम्ब, छितवन, गूलर, अतिमुक्तक, मंदार कदली, प्रियंगु धूलिकदम्ब, वकुल, जामुन, अनार, बेल, बेर, कोविदार, बरगद, कपास, धान आदि वृक्षों व वनस्पतियों के औषधीय महत्त्व को आज तो बिल्कुल नकारा नहीं जा सकता आज भारत में प्राचीन आयुर्वेद द्वारा चिकित्सा कराना लगभग सबकी इच्छा है। अनेक प्रयासों से इसे (आयुर्वेद) पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।
- इस धरती पर प्रत्येक जीव का जीवित रहना परमावश्यक है, क्योंकि सभी एक-दूसरे पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आश्रित रहते हैं। वनों के अतिरिक्त वन में रहने वाले जीवों को भी संरक्षण देना हमारा परम कर्त्तव्य होता है। वन्य जीवों की उपयोगिता के कारण इनका संरक्षण भारतीय संस्कृति का भी विशिष्ट अंग रहा है। इसी कारण लगभग हर एक देवता के साथ एक पशु अथवा पक्षी को उनकी सवारी मानी जाने की मान्यता रही है यथा बैल शिव के साथ सिंह दुर्गा के साथ उल्लू लक्ष्मी के साथ, चूहा गणेश के साथ, मयूर कार्तिकेय के साथ पूजा जाता है। ईश्वर ने भी कई बार पशु के रूप में ही अवतार लिया यथा नरसिंह, मत्स्यावतार आदि।
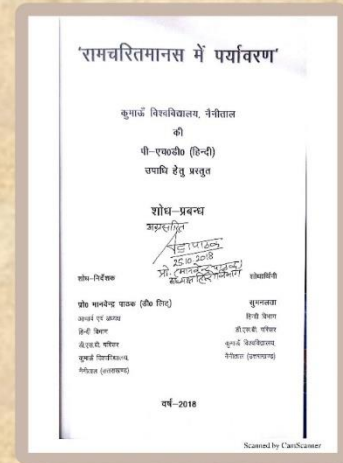
नरेश प्रभु राम भाई जोशी (2021) ने रामचरितमानस एवं साकेत पर शोध किया है जिसका शीर्षक है 'तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' एवं मैथिलीशरणगुप्त कृत 'साकेत' की तुलनात्मक समीक्षा' जिसका अध्ययन किया तो पाया है कि—

- रामचरितमानस' एक ऐसा महाकाव्य हैं, जिसमें विशदता के साथ राम कथा का वर्णन हुआ हैं और साथ में अनेक गौण कथाएँ भी सम्मिलित हैं। किन्तु 'साकेत' में राम कथा भी संक्षिप्त के साथ व्यक्त हुई हैं। राम कथा के कई प्रसिद्ध प्रसंगों का उल्लेख नहीं हैं। कुछ गौण कथाओं का उल्लेख मात्र गुप्त जी ने किया हैं। इस प्रकार कथावस्तु पक्ष की दृष्टि से साकेत मानस (रामचरितमानस) रूपी महासागर की अपेक्षा संकेत मात्र ही रह जाता हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास ने महाकाव्य लेखन के नियमों का पालन करते हुए इस कृति की रचना की है।

तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' एवं मैथिलीशरण गुप्त कृत
'साकेत' की तुलनात्मक समीक्षा
The comparative review of Tulsidas's
'Ramcharitmanas' and Maithilisharan Gupta's 'Saket'

गुजरात विद्यापीठ, पीएच.डी. (विद्यावाचस्पति) हिन्दी की उपाधि हेतु
प्रस्तुत
शोध-प्रबंध

:: शोधार्थी ::
11801908

:: शोध निर्देशक ::
अहमदाबाद – 380014

हिन्दी भाषा - साहित्य विभाग
महादेव देसाई समाजसेवा संकुल
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद – 380014

वर्ष : 2021

- 'साकेत' के राम आर्यों का आदर्श प्रकट करना ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं। वे विवश, दुर्बल और दीन-दुखियों के कष्ट मिटाने आए हैं। 'साकेत' के लक्ष्मण आदर्श भाई के प्रतीक है। वे साहस, शौर्य तथा संयम जैसे गुणों से युक्त हैं। 'साकेत' में गुप्त जी ने कैकई को परम्परागत रूप से अलग चित्रित कर उनके पात्र का उध्वीकरण किया है। दशरथ, भरत और कौशल्या के पात्र दोनों कृतियों में समान प्रतीत होते हैं। 'साकेत' में कवि ने उर्मिला के पात्र को पूरी तरह से न्याय दिया है, जिसे 'रामचरितमानस' में तुलसीदास नहीं दे पाए थे।
- 'रामचरितमानस' के सभी पात्रों में मिथकत्व का निर्वाह हुआ हैं। राम मानव होते हुए भी ईश्वर के रूप हैं, ईश्वर होते हुए भी उनके चरित्र में मानवता का निर्वाह हुआ हैं।

जया द्विवेदी (2005) ने शोध किया है जिसका शीर्षक है 'रामचरित मानस पर भुशुण्डि रामायण के प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन' जिसका अध्ययन किया तो पाया है कि—

- रचनाकाल की दृष्टि से भुशुण्डि रामायण रामचरित मानस की तुलना में परवर्ती रचना सिद्ध होती है। अतएव निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि भुशुण्डि रामायण पर रामचरित मानस का प्रभाव पड़ा।

'रामचरित मानस' पर 'भुशुण्डि रामायण'
के प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन

वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
की
पीएच० डी० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध - प्रबन्ध

शोध - निर्देशक
डॉ० जगदीश सिंह
रीडर, हिन्दी विभाग,
सल्तनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर

शोध - कर्त्री
जया द्विवेदी

2005 ई०

हिन्दी विभाग
सल्तनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बदलापुर

- रामचरित मानस एक प्रबन्धात्मक रचना है। इसमें राम के चरित की समस्त रचनाएँ आवश्यक विस्तार के साथ सुसम्बद्ध रूप में प्रस्तुत की गई है। इस रचना में कोई भी अप्रासंगिक कथा नहीं आई है। सम्पूर्ण रचना में एक तारतम्य है। पाठक और श्रोता कहीं भी ऊबता नहीं है। इसकी कथावस्तु में अनेक दुलर्भ गुण हैं, किन्तु राम जैसे मर्यादा पुरुष के गुणों (उदारता, दया, क्षमा, त्याग, धैर्य आदि) के माध्यम से इस रचना ने
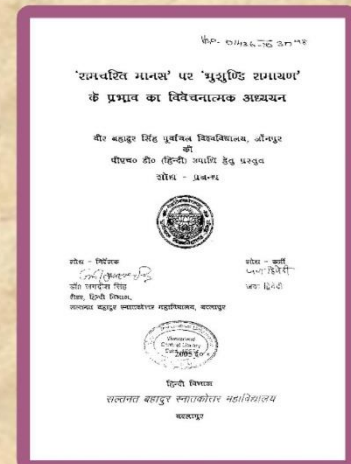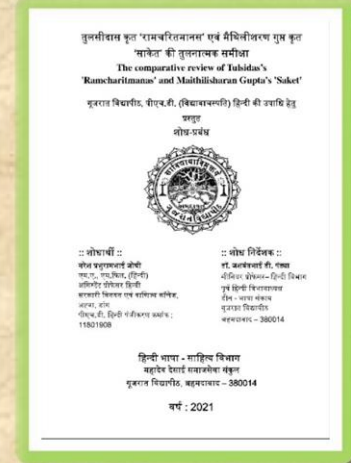
असाधारण सम्मान प्राप्त किया है। दूसरी ओर भुशुण्डि रामायण की कथा में प्रबन्ध कौशल एवं तारतम्य का अभाव है अप्रासंगिक कथाओं की भरमार है। कृष्ण की अनेक बाल लीलाओं का राम चित्रकूट आगमन, राम का जल विहार, रास चरित्र के रूप में वर्णन, दशरथ की तीर्थयात्रा, बाल लीला, काम, क्रीड़ा आदि तथा पश्चिम और उत्तर खण्ड के लगभग सभी प्रसंग कथा के प्रवाह में व्यवधान उपस्थित करते हैं।

- 'रामचरितमानस' के नायक सर्वगुणसम्पन्न तथा मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। दूसरी और भुशुण्डि रामायण के राम अपने अवगुणों के कारण नायक के पद से च्युत हो जाते हैं। 'रामचरितमानस' की तुलना में 'भुशुण्डि रामायण' के शेष पात्रों का चरित्र उभर कर सामने नहीं आ पाया है।
- तुलसीदास ने रामचरित मानस में भक्ति सिद्धान्त को सर्वोपरि रखा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विकास एवं उत्थान के लिए रामभक्ति को एकमात्र साधन कहा गया है। भक्ति में दास्य भक्ति की प्रधानता है। भक्ति के प्रतिपादन के साथ साथ इसमें ज्ञान मार्ग की उपेक्षा नहीं की गई है 'भुशुण्डि रामायण' की भक्ति मर्यादित न होकर रागात्मिका है।

स्मिता त्रिपाठी (2008) ने रामचरितमानस पर शोध किया है जिसका शीर्षक है 'रामचरित मानस में सनातन धर्म की अवधारणा का पात्रों पर प्रभाव' जिसका अध्ययन किया तो पाया है कि—

- रामचरित मानस में रघुकुल के अनुरूप ही राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न को सनातन धर्म से ओतप्रोत संस्कार दिए जाते हैं। इनके परिणाम स्वरूप अपने आचरण की महत्ता से राम मर्यादा पुरूषोत्तम की उपाधि से विभूषित हुए और भरत भातृ धर्म के प्रतीक बन गये। लक्ष्मण ने सेवक धर्म का निर्वाह किया तो शत्रुघ्न द्वारा शत्रुनाश का संकल्प चरितार्थ हुआ।

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से
पी-एच. डी. (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध
वर्ष- 2008
डॉ० शशिकान्त अग्निहोत्री
श्रीमती स्मिता त्रिपाठी
अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

- मेरी समझ में रामचरित मानस सनातन धर्ममय ग्रंथ है जैसे संसार में सद्-असद, पाप-पुण्य, विवेक-अविवेक, ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म आदि परस्पर विरोधाभासी तत्व हैं उसी तरह रामचरित मानस में भी राम के भक्त और राम विरोधी रावण के अनुयायी हैं। दोनों ही धर्म की सनातनता से ओतप्रोत हैं। राम रघुकुल रीति का पालन करते हैं और रावण स्वरचित राक्षस धर्म का अनुगमन करता है।
- सनतान धर्म अनादि और अनंत है इससे भिन्न अन्य धर्मों के दो भाग हो सकते हैं—ये धर्म जो पूर्व काल में थे किंतु अब नहीं हैं अथवा वे धर्म जो पूर्व काल में नहीं थे परन्तु अब हैं। सनातन धर्म का इन दोनों में ही अन्तर्भाव नहीं होता क्योंकि यह सनातन धर्म परब्रह्म परमात्मा की तरह आदि मध्यान्तहीन है। ब्रह्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, स्कंद पुराण आदि में इसी की आराधना हुई है।
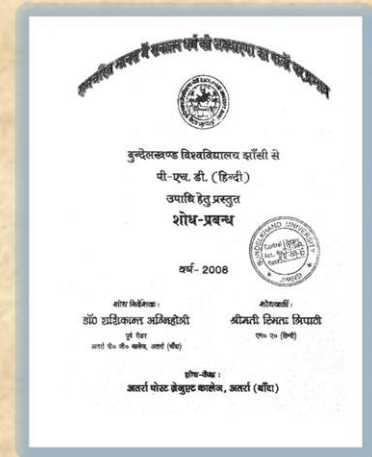
2.3 समीक्षात्मक निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय में शोधकर्ता के द्वारा कतिपय शोधों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया, और पाया कि पूर्व में 'रामचरितमानस के प्रमुख नारी पात्रों की सामाजिक यथार्थता: एक अध्ययन', 'रामचरितमानस का वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य', रामचरितमानस में हास्य व्यंग्य', 'तुलसीदास कृत रामचरितमानस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि', ' रामचरितमानस' में निरूपित यथार्थ और कल्पना', 'तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' और राधेश्याम कथावाचक कृत 'रामायण' का दर्शन एवं भक्ति की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन', 'रामचरितमानस में पर्यावरण', 'तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' एवं मैथिलीशरणगुप्त कृत 'साकेत' की तुलनात्मक समीक्षा', 'रामचरित मानस पर भुशुण्डि रामायण के प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन', 'रामचरित मानस में सनातन धर्म की अवधारणा का पात्रों पर प्रभाव' आदि विषयों शोध किए गए हैं। किंतु रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता पर अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है।

इसी प्रकार से आज हर तरफ मानवीय मूल्यों, आदर्शों एवं परम्पराओं का ह्रास होता जा रहा है। वर्तमान पीढ़ी आज गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों को अपनाती जा रही है। आज जन्म देने वाले माता-पिता का सम्मान, भ्रातृ तथा मित्र प्रेम, गुरु के प्रति आदर्श, गुरु– शिष्य अनुशासन, राजा और सेवक के कर्तव्य, नारी सम्मान आदि नैतिक मूल्य अपनी संस्कृति के अनुसार दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है। इसलिए पुन: रामचरितमानस में वर्णित आदर्शों, मान्यताओं और मर्यादाओं की रक्षा के लिए भावी पीढ़ी को रामचरितमानस का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर तुलसीदास कृत हिंदी साहित्य के सबसे बड़े ग्रंथ 'रामचरितमानस' का शिक्षा के क्षेत्र में किन-किन मूल्यों का योगदान है? इस पर शोधार्थी द्वारा लघु शोध प्रबंध कार्य करने का निर्णय किया, जिसका शीर्षक 'रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता' है।

तृतीय अध्याय

गोस्वामी तुलसीदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.1 व्यक्तित्व

2.2 कृतित्व

हिन्दी साहित्य के महान सन्त कवि थे। रामचरितमानस इनका गौरव ग्रन्थ है। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है। श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। रामचरितमानस लोक ग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46वाँ स्थान दिया गया। तुलसीदास जी स्मार्त वैष्णव थे। गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति से प्रतिनिधि कवि है । एक श्रेष्ठ साहित्यकार में जिन गुणों की अपेक्षा की जाती है वे सब तुलसी में कूट-कूटकर भरे हुए हैं। व्यक्तिगत साधना में रत रहते हुए भी, लोकपक्ष और लोकधर्म पर उनकी दृष्टि समान रूप से रही हैं।

अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन निर्गुण भक्तों की वाणी में लोक-पक्ष का अभाव एवं उपेक्षा भाव उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा था। अतः उन्होंने अपने काव्य में व्यक्तिगत साधना एवं लोकपक्ष का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया, यह उनकी विलक्षण बुद्धि एवं अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचायक

है । तुलसी की भक्ति सर्वांगीण है, उनकी भक्ति में सभी रूपों का समावेश हुआ है। तात्त्विक दृष्टि से वे सगुण है और निर्गुण में अभेद मानते हैं। भक्त के प्रेम को अतिशयता के कारण निर्गुण निराकार सगुण रूप ग्रहण कर लेता है।

'अगुन, अरूप, अलख, अज जोई। भगत प्रेम बस सगुण सो होई।।

'तुलसी के आराध्य रामभक्तों के लिए भगवान् स्वरूप हैं, तो ज्ञानियों के लिए ब्रह्म स्वरूप हैं। तुलसी की भक्ति एवं साधना का निरूपण करने वाले ग्रंथों में 'रामचरितमानस' एवं 'विनय पत्रिका' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। तुलसी की दास्यभाव की भक्ति का अति सुन्दर निरूपण 'विनय पत्रिका' में हुआ है, तो लोक-पक्ष एवं लोकप्रियता की दृष्टि से 'रामचरितमानस' अपना अक्षुण्य स्थान रखता है ।

'रामचरितमानस' की रचना एक प्रबन्धकाव्य के रूप में हुई है। रामचरितमानस के प्रमुख पात्र (नायक) आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ एक महाकाव्य है, अतः इसमें अनेक पात्रों का समावेश हुआ है। **राम, भरत, लक्ष्मण, दशरथ** तथा **रावण आदि** पात्रों का चरित्र चित्रण उनके निजी स्वभाव एवं मानसिक वृत्तियों के आधार पर ही किया गया है। मानस का प्रत्येक पात्र अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व लिए हुए है और उसके चरित्र का विकास भी उसी के अनुरूप हुआ है। राम इस महाकाव्य के प्रमुख पात्र हैं। फलतः राम के चरित्रांकन में पूर्ववर्ती कवियों द्वारा कहे गए नाना गुणों का समावेश करते हुए भी तुलसी ने अनेक नूतन उद्भावनाएँ की है और अपनी मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है। तुलसी ने मानस में अपने राग को ऐसे सरल, मधुर शील एवं शक्ति से परिपूर्ण एवं अपूर्व सौन्दर्ययुक्त प्रस्तुत किया है कि वे पूर्ववर्ती काव्यों में चित्रित राम से अलग प्रतीत होते हैं। तुलसी के राम में जो धीरता, गंभीरता, कोमलता, सुशीलता एवं मधुरता आदि गुण हैं वे वाल्मीकि रामायण में भी नहीं मिलते है।

'राम सों बड़ी है कौन, मोसो कौन छोटो। राम सो खरो है कौन, मौसों कौन खोटो।।'

3.1.1 जन्म वृतांत:

प्रयाग के पास बाँदा जिले (वर्तमान चित्रकूट जिले) में राजापुर एक गाँव है वहाँ आत्माराम दुबे नाम के एक प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम हुलसी था। सम्वत् १५५४ की श्रवण शुक्ला सप्तमी के दिन अभुक्तमूल नक्षत्र में इन्हीं भाग्यवान दम्पति के यहाँ बारह महीने तक धर्म में रहने के पश्चात् पोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म हुआ।

पन्द्रह से चौवन विषै कालिन्दी के तीर।

श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धरेऊ सरीर।।

जन्म के समय इनके बत्तीसों ही दांत थे और ये पाँच वर्ष के बालक जैसे उत्पन्न हुए थे। जन्म के तीन दिन बाद इनकी माता का देहान्त हो गया।। जन्म के समय तुलसीदास जी रोए नहीं किन्तु उनके मुख से 'राम' का शब्द निकला। उनके मुख में बत्तीसों दाँत मौजूद थे। उनका डील-डौल पाँच वर्ष के बालक जैसा था। इस

अद्भुत बालक को देखकर पिता अमङ्गल की शंका से भयभीत हो गये और अनेक कल्पनाएँ करने लगे। माता हुलसी को यह देख के बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने बालक के अनिष्ट की आशंका से दशमी की रात को नवजात शिशु को अपनी दासी के साथ उनकी ससुराल भेज दिया और दूसरे दिन स्वयं इस संसार से चल बसी। दासी ने, जिसका नाम चुनियाँ था, बड़े प्रेम से बालक का पालन-पोषण किया। जब तुलसीदास लगभग साढ़े पाँच वर्ष के हुए, चुनियाँ का भी देहान्त हो गया और यह बालक सब प्रकार से अनाथ हो गया।

3.1.2 बचपन का नाम:

इनका बचपन का नाम तुलसीदास नहीं वरन् रामबोला था। इसका यह कारण था कि ये 'राम' नाम अधिक लिया करते थे। कतिपय जीवनियों में तथा जनश्रुतियों में यह कहा गया है कि तुलसीदास पाँच वर्ष के बालक के रूप में उत्पन्न हुए थे और जन्म लेते ही उन्होंने 'राम' नाम का उच्चारण किया। इसी से इन्हें 'रामबोला' नाम मिला। इनकी कृतियों में भी उल्लेख मिलता है।

विनयपत्रिका में—

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यों राम। काम यह नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हो॥

कवितावली में—

साहेब सुजान जिन्ह स्वानहूँ को पच्छु कियो। रामबोला नाम ही गुलाम राम साहि को॥"

उपयुक्त कथनों से व्यक्त होता है कि उनका नाम रामबोला था, परन्तु वह बचपन का नाम था। उसके पश्चात् इनका प्रसिद्ध नाम तुलसीदास हो गया।

3.1.3 परिवार:

तुलसीदास के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले संकेत हमें उनके 'रामचरितमानस', 'कवितावली, 'विनयपत्रिका', "बरवै ग्रन्थों रामायण', 'दोहावली' में मिलते हैं और ये संकेत उनकी आत्मकथा सम्बन्धी झलक ही नहीं उपस्थित करते, वरन् उनके व्यक्तित्त्व पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके आत्म परिचायात्मक उल्लेखों में भी उनके माता, गुरु, वंश आदि के वर्णनों या संकेतों के रूप में है। तुलसी साहित्य के अन्तर्गत पारिवारिक व्यक्तियों में माता के अतिरिक्त और किसी के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। माता के नाम का उल्लेख नीचे लिखी पंक्ति में हुआ है—

रामाहिं प्रिय पावन तुलसी सी। तुलसीदास हित हिये हुलसी सी॥

3.1.4 वंश:

अपनी जाति के सम्बन्ध में तुलसी ने अपनी रचनाओं में कोई स्पष्ट संकेत नहीं दिए है। इनके कथनों में प्राय: सन्त परम्परा में अनुकूल जाति बंधन से मुक्त और स्वतन्त्र होने के ही उल्लेख मिलते है:

कवितावली में—

धूत कही, अवधूत कहाँ, रजपूत कही, जोलहा कहाँ कोऊ।

काहूकी बेटीओं बेटा न व्याहब काहूको जाति बिगार न सोऊ॥

तुलसी सरनाम गुलाम है रामको, जाको रूचै सो कहै कछु ओऊ।

माँगि के खैबा, मसीतको सोइयो, लैबोको एक न देबेको होऊ॥

उनके आराध्य श्रीराम को ही एकमात्र भरोसा मान कर अपनी जाति राम के दास के रूप में बताई है जो तुलसी का लोक-परलोक संवारते हैं—

'मेरे जाति पाँति न चहाँ काहूकी जाति-पाति। मेरे कोऊ काम को न हो काहू के काम को॥

विनय पत्रिका में एक स्थान पर उनके वंश का थोड़ा सा संकेत मिलता है जिससे उनका ब्राह्मण वंश का होना प्रतीत होता

दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को। जो पाड़ पंडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को॥

इसमें आए हुए 'सुकुल' शब्द से यह अर्थ है कि वे शुक्ल ब्राह्मण थे। परन्तु यह अर्थ न भी लिया जाए तो 'सुकुल' शब्द का अर्थ 'उत्तम कुल करने से भी ब्राह्मण वंश ही समझा जाएगा । तुलसीदास ब्राह्मणों के बड़े ही प्रशंसक थे। और दूसरे चरण में आया हुआ 'पंडित' शब्द तो और भी इस बात को पुष्ट करता है कि वे ब्राह्मण वंश के थे।

3.1.5 गुरु

तुलसीदास के दीक्षा गुरु का नाम नरहरिदास था 'रामचरितमानस' में वे प्रारंभ में गुरु की वंदना करते हुए तुलसीदास ने अपने गुरु का नामोल्लेख आदर के साथ किया भी है।

वन्दौ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।

महा मोह तम पुज्ज, जासु वचन रवि कर निकर॥

जब तुलसीदास लगभग साढ़े पाँच वर्ष के हुए, उसी समय उनकी दासी चुनियाँ का भी देहान्त हो गया जो एकमात्र सहारा था। इसप्रकार से वह बालक सब प्रकार से अनाथ हो गया॥ इधर भगवान शंकर जी की प्रेरणा से श्रीनरनन्दजी ने इस बालक को ढूँढ़ निकाला और उसका नाम रामबोला रक्खा। अनन्तानन्द के शिष्य नरहयानन्द ने उसका नाम रामबोला रक्खा। उसे वे अयोध्या ले गए और वहाँ सम्वत् १५६१ माघ शुक्ला पंचमी शुक्रवार को उसका यज्ञोपवीत संस्कार कराया। इसके बाद नरहरि स्वामी ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके रामबोला को राममन्त्र की दीक्षा दी और उन्हें विद्याध्ययन कराने लगे। बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। एक बार गुरुमुख से जो सुन लेते थे, उन्हें वह कण्ठस्थ हो जाता था। यहाँ से कुछ दिन बाद गुरु शिष्य दोनों शुकरक्षेत्र (सोरों) पहुँचे। वहीं श्रीनरहरिजी ने तुलसीदास को रामचरित सुनाया—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सुकरखेत। समुझि नहीं तसि बामपनु, तब अति रहे अचेत॥

उस समय वे बिल्कुल बच्चे थे, इससे वे उसे ठीक ठीक समझ नहीं सके। कुछ दिन बाद वे काशी चले आए। काशी में तुलसीदास जी ने पन्द्रह वर्ष तक वेद-वेदाङ्ग का अध्ययन किया। इधर उनकी लोक-वासना कुछ जाग्रत हो उठी। वे अपनी जन्म भूमि को लौट आये।

3.1.6 वैवाहिक एवं वैराग्य जीवन:

उन्होंने सम्वत् १५८३ ज्येष्ठ शुक्ला १३ गुरुवार को भारद्वाज गोत्र की एक सुन्दर कन्या के साथ विवाह कर लिया जिसका

नाम रत्नावली था।। और वे सुख पूर्वक अपनी पत्नी के साथ रहने लगे। एक बार उनकी पत्नी चुपचाप मायके चली गई तो तुलसीदासजी भी अपनी पत्नी के पीछे ही उसके मायके जा पहुँचे। उनकी पत्नी ने इस पर उन्हें बहुत धिक्कारा और कहा—

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ। धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहीं हो नाथ।।

अस्थि चर्ममय देह मम तासों ऐसी प्रीति। होती जो श्रीराम महं, होति न तौ भवभीति।।

अर्थात् मेरे हाड़ मांस के शरीर पर जितनी तुम्हारी आसक्ति है, उससे आधी भी यदि भगवान में होती तो तुम्हारा बेड़ा पार हो गया होता। तुलसीदासजी को ये शब्द चुभ गये। वे एक क्षण भी वहाँ न रुके और तुरन्त वहाँ से चलकर प्रयाग आए वहाँ उन्होंने गृह भेष का परित्याग कर साधु वेष धारण किया, तीर्थाटन करते हुए पुनः काशी पहुँचे। मानसरोवर के पास उन्हें काकभुशुण्डिजी के दर्शन हुए। इसी दुःख में संवत् 1589 में उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई।

3.1.6 गोस्वामी की उपाधि:

गोस्वामी का अर्थ है समस्त इन्द्रियों को बस में करनेवाला। पत्नी की प्रेरणा, उपेक्षा से खिन्न होकर तुलसीदास वैरागी होकर इन्द्रिओं को पूर्णरूप से बस में कर लिए इसलिए तुलसीदास के लिए गोस्वामी की उपाधि मिली। अतः गोस्वामी तुलसीदास हो गए।

3.1.7 भगवान श्री राम जी से भेंट:

काशी में तुलसीदासजी राम कथा कहने लगे। वहाँ उन्हें एक दिन एक प्रेत के द्वारा हनुमानजी मिले। हनुमानजी से मिलकर तुलसीदासजी ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन करने की प्रार्थना की।

हनुमानजी ने कहा कि तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी के दर्शन होंगे, इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े। चित्रकूट पहुँच कर रामघाट पर उन्होंने अपना आसन जमाया। एक दिन मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुषबाण लिए जा रहे हैं। तुलसीदास जी उन्हें देखकर मुग्ध हो गए परन्तु उन्हें पहचान न सके। पीछे से हनुमानजी ने आकर इन्हें सारा भेद बतलाया तो वे बड़ा पश्चाताप करने लगे। हनुमान जी ने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे।

सम्वत् १६०७ की मौनी अमावस्या बुधवार के दिन उनके सामने भगवान् श्रीराम पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालक रूप में तुलसीदासजी से कहा—बाबा हमें चन्दन दो। हनुमानजी ने सोचा ये इस बार भी धोखा न खाएं इसलिए उन्होंने तोता का रूप धारण कर यह दोहा कहा—

चित्रकूट के घाट पर, भई सन्तन की भीर।

तुलसीदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुवीर॥

प्रभु ने चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदासजी के मस्तक पर लगाया और अन्तरध्यान हो गए।
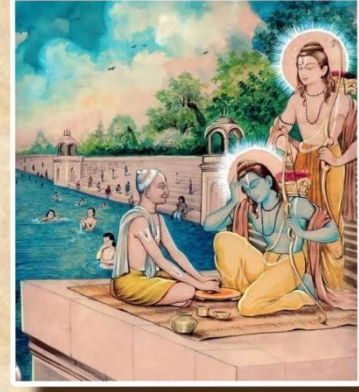
1.1.8 रामचरितमानस का सृजन:

तुलसीदास ने गृह त्याग कर 15 वर्ष तक तीर्थयात्रा और भ्रमण कर अन्त में चित्रकूट में अपना निवास स्थान बनाया । वहाँ हनुमान के द्वारा श्रीराम के दर्शन हुए। यहाँ हित हरिवंश का पत्र मिला और सूरदास से भी मिलने आए और इन्हें संवत्
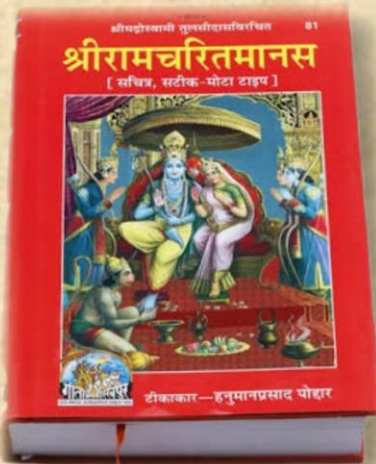
1616 में अपना सूरसागर दिखाया। इसके बाद 1628 में 'राम गीतावली' और 'कृष्ण गीतावली' को संग्रहीत किया। इसके बाद वह हनुमानजी की आज्ञा से अयोध्या की ओर चले और प्रयाग होते हुए वहाँ से वे काशी चले आए और प्रहलाद घाट पर ब्राह्मण के घर वास किया वहाँ कवित्व शक्ति का प्रस्फुरण हुआ और वे संस्कृत में पद्य रचने लगे। परन्तु दिन में वे पद्य रचते, और रात्रि में वह सब लुप्त हो जाते थे। यह घटना सात दिन तक घटती रही आठवें दिन उनको स्वप्न हुआ। शङ्करजी ने उनको आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचो तुलसीदासजी की नींद उचट गई। उसी समय शिव और पार्वती उनके सामने थे। उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। शिवजी ने कहा तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिन्दी में काव्य रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी इतना कह श्रीगौरीशंकर अन्तरध्यान हो गए। उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वह काशी से अयोध्या चले आए।

सम्वत् १६३१ राम नवमी के दिन से श्री तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिन में ग्रन्थ की समाप्ति हुई । सम्वत् १६३३ के मार्ग शीर्ष शुक्लपक्ष में राम विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये। इसके बाद वे काशी चले आए। वहाँ उन्होंने विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक श्रीविश्वनाथजी के मन्दिर में रखदी गई। सवेरे जबपटखोलायया तो उस पर लिखा हुआ पाया गया 'सत्यं शिवं सुन्दरं' लोगों

ने यह आवाज भी कानों से सुनी। इधर पण्डितों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बाँध तुलसीदासजी की निन्दा करने लगे और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक अपने मित्र टोड- रमल के यहाँ रख दी उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की जाने लगीं। इधर पण्डितों ने मधुसूदन सरस्वती को उस पुस्तक को देखने की प्रेरणा दी उन्होंने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उसका सारांश यह है—

आनन्द कानने ह्यस्मिञ्जङ्गम स्तुल सीतरुः कवितामंजरी भाति राम भ्रमर भूषिता॥
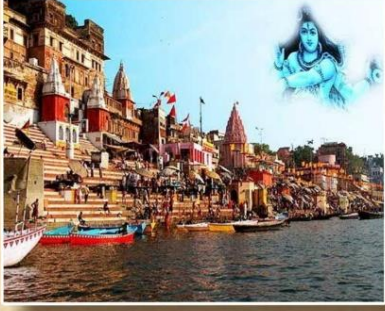
इस काशी रूपी आनन्द वन में तुलसीदास चलता फिरता तुलसी का पौधा है। उसकी कविता रूपी मंजरी बड़ी ही सुन्दर है जिस पर श्रीराम रूपी भँवरा मँडराया करता है। पण्डितों को संतोष नहीं हुआ। तब पुस्तक की परीक्षा का और उपाय सोचा गया। भगवान विश्वनाथ के सामने सब से ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र शास्त्रों के नीचे पुराण और सब के नोचे रामचरित मानस रख दिया गया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि रामचरित मानस वेदों के ऊपर रक्खा है पण्डित लोग बड़े लज्जित तुलसीदासजी से क्षमा माँगी और चरणोदक लिया।

3.1.9 मृत्यु वृतांत:

तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात घाट असीघाट पर रहने लगे, तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा। तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया। हनुमान जी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनय-पत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिए और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया। अर्थात् सम्वत १६८० श्रावण कृष्ण तृतीय शनिवार को असीघाट पर श्री गोस्वामी जी ने राम नाम कहते हुए अपना शरीर त्याग दिया ।

संवत् सोलह सौ असी असी गंग के तीर।

श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यों शरीर॥

3.2 कृतित्व

कवि के अंतर्मन की प्रेरणा, उसकी आंतरिक प्रवृत्तियाँ अथवा उसका आंतरिक व्यक्तित्व ही काव्य रचना अथवा साहित्य है। संस्कृत में 'साहित्य' शब्द का अर्थ सहित होने का भाव (साहितस्य भावः साहित्य) से लिया गया है। हिन्दी साहित्यकारों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य अथवा रचना को हृदय की मुक्तावस्था के लिए किया। 'शब्द विधान' स्वीकार किया है। डॉ० गुलाबराय के शब्दों में रचना अथवा साहित्य संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रक्रिया अर्थात् विचारों, भावों और

संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है और वह हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण संरक्षणीय हो जाती है।

वास्तव में प्रत्येक साहित्यकार अपने अनुभवों को नवीन रंग देकर प्रस्तुत करता है और उसकी विस्तृत व्याख्या करके उनका निष्कर्ष हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, जिससे मानसिक क्रियाओं, विचारों और अनुभव आदि तीनों की अभिव्यक्ति होती है। अतः परिभाषाओं का यही निष्कर्ष निकलता है कि साहित्य रचना सम्बंधी परिभाषाएँ मानव की विभिन्न क्रियाओं के सम्बंध का बोध कराती हैं व्यक्ति देखता है, अनुभव करता है तत्पश्चात् क्रियान्वित होता है। साहित्य रचना से चाहे व आनंदानुभव करे अथवा मान की प्राप्ति, यह उसकी क्रिया अथवा लक्ष्य मात्र का बोध कराता है, जबकि बिम्बित शब्द कवि के अनुभवों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर साहित्यकार के अंतर्गत से निःसरित होता है। तुलसीदास हिन्दी साहित्य के चिर प्रतिष्ठित शिरोमणि कवि हैं जिनके प्रभाव प्रेरणा और अनुकरण से विपुल साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। तुलसीदास युग के लोकनायक के रूप में विख्यात हैं तुलसीदास की रचना क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है।

तुलसीदास हिन्दी काव्य जगत के चंद्रमा हैं जिनका साहित्य आज भी प्रत्येक कसौटी पर खरा उतरता है। इनका साहित्य इतना विपुल है कि विद्वानों में प्रायः इनकी रचनाओं के संदर्भ में मतभेद हैं। ठाकुर शिवसिंह संगर तुलसीकृत 18 कृति मानते हैं। जबकि डॉ. ग्रियर्सन मात्र 12 जो इस प्रकार हैं 1. रामचरितमानस, 2. विनयपत्रिका, 3 गीतावली 4. कृष्ण गीतावली, 5. कवितावली, 6. दोहावली, 7. जानकी मंगल, 8. पार्वती मंगल, 9. रामाज्ञा प्रश्न 10. रामलला नछडू, 11. वैराग्य संदीपनी 12 बरवै रामायण।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी ग्रियर्सन के मतानुसार 12 ग्रंथों को ही गोस्वामी कृत माना हैं। मिश्रबंधुओं ने 'पार्वती मंगल', 'रामाजा प्रश्न', 'रामलला नछहू', 'वैराग्य संदीपनी' और 'बरवै रामायण' को प्रामाणिक न मानकर 'हनुमान चालीसा', 'कवि धर्मा धर्म निरुपण', 'हनुमान बाहुक', 'रामसतसई' और 'रामश्लाका' को इसके स्थान पर प्रामाणिक मानकर बारह ही ग्रंथों की गणना की हैं।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने डॉ. ग्रियर्सन वाली ग्रंथावली में सतसई को और मिलाकर तेरह ग्रंथों को माना है। 'मूलगोसाई चरित' में भी यदि 'बाहुक' को 'कवितावली' को साथ मिला दे तो भी तेरह कृतियाँ ही परिगणित हुई। इस विषय में अब दो ही मान्याताएँ हैं एक तो बारह ग्रंथों के पक्ष में और दूसरी तेरह ग्रंथों के पक्ष में सतसई में अनेक दोहे तुलसीकृत हैं, जो इनकी अन्य पुस्तकों से लिए गए हैं। रचना एवं संकलन के दृष्टि से कालक्रमानुसार तुलसी के 12 ही ग्रंथ प्रामाणिक होते हैं। इन रचनाओं की अगले चतुर्थ अध्याय में संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय

साहित्य सर्जना

4.1 प्रामाणिक ग्रंथ

4.1.1 रामचरितमानस

4.1.2 विनय पत्रिका

4.1.3 कवितावली

4.1.4 दोहावली

4.1.5 गीतावली

4.1.6 श्रीकृष्ण गीतावली

4.1.7 रामाज्ञा प्रश्न

4.1.8 श्री रामलला नहछू

4.1.9 बरवै रामायण

4.1.10 जानकी मंगल

4.1.11 पार्वती मंगल

4.1.12 वैराग्य संदीपनी

4.2 अप्रामाणिक ग्रंथ

तुलसी कृत ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

गोस्वामी तुलसीदास के बारह ग्रन्थों को प्रामाणिक माना जाता है। ये प्रामाणिक ग्रन्थ निम्नलिखित है—

4.1.1 रामचरितमानस

यह तुलसीदास की सबसे लोकप्रिय तथा विश्व प्रसिद्ध कृति है। यह ग्रंथ हिन्दू संस्कृति का सारभूत ग्रंथ है। इस ग्रंथ में भारतीय दृष्टि से जीवन की एक पूर्ण कल्पना प्रस्फुटित हुई है। हिन्दी का यह सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसकी रचना तुलसी ने सं. 1631 वि०सं०, चैत्र शुक्ल 9, मंगलवार को प्रारंभ की थी। सात काण्डों में विभक्त यह ग्रंथ है। फिर भी कथा का विस्तार इतना है कि महाकाव्य के सर्गों से अधिक है। इसमें मात्रिक और वर्णित छन्दों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। तुलसी ने दोहों और चौपाई छंद में मानस की रचना की है। लेकिन बीच-बीच में सोरठा, तोमर, छंद आदि के आ जाने से और भी मनोहारी बन गया है। इसमें राम का उत्तम चरित्र चित्रित किया गया है। मानस का मुख्य रस शांत है लेकिन शृंगार, वीर, करुण आदि सभी रसों का परिपाक अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है। इस ग्रंथ में विभिन्न भावों का विशेष भण्डार है।

तुलसी अपने मनोरम वर्णन द्वारा श्रोता के मन पर अधिकार कर लेते हैं। मानस एक चरित्रप्रधान ग्रंथ है। इसमें संवादों की सजीवता, चरित्र का सूक्ष्म चित्रण, वार्तालाप की उत्कृष्टता परिलक्षित होती है।
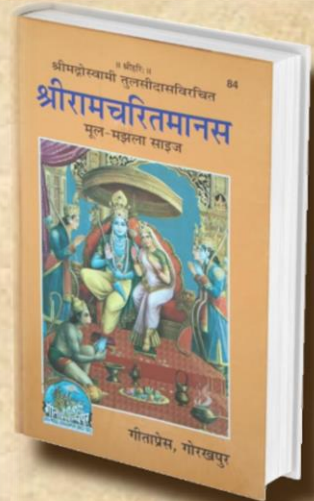
रामचरितमानस की रचना तुलसी ने अपने युग की आध्यात्मिक समस्या के समाधान के लिए की थी। ईश्वर साकार है या निराकार ? तुलसी ने यह सिद्ध किया है कि यह तर्क का विषय नहीं, अनुभव और विश्वास का विषय है। अपने जीवन का प्रमुख ध्येय उसका साक्षात्कार और इसके लिए सुगम उपाय है भक्ति। इस ग्रंथ का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। यह अपूर्व ग्रंथ है। विश्व साहित्य में इसकी समता करने वाला ग्रंथ दुर्लभ है। तुलसी ने रामचरितमानस के बारे में अपनी रचना में निर्देशित करते हुए कहा है—

संवत सोरह सौ इकतीसा। कर कथा हरिपद धरि सीसा।

नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

विमल कथा कर कीन्ह आरंभा। सुनत नहि काम मद दंभा ॥(रा. मा. 1-33-3-34-3)

परंतु मानस की समाप्ति कब हुई यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। मूल गुसाई चरित के अनुसार राम-विवाह की तिथि को अगहन मास में सं. 1633 को इसकी रचना पूर्ण हुई तथा इसकी रचना में दो वर्ष सात मास और छबीस दिन लगे थे। (मूलगु साईंचरित 41.1) भगवत प्रतिभा संपन्न तुलसी जैसे कवि के लिए इतने स्वल्पकाल में इस विशाल ग्रंथ की रचना असंभव भी नहीं है। मानस में कवि के भक्त रूप और चिन्तक रूप अत्यंत मुखर है । बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड इसके लिए सर्वोत्तम सिद्ध होते हैं। विश्व साहित्य में 'रामचरितमानस' को श्रेष्ठतम महाकाव्यों में गिना जाता है। कुछ लोग इसे पुराण काव्य कहते हैं।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार "गोस्वामी तुलसी जी का सबसे महात्वपूर्ण ग्रंथ है जिसे सामान्यतः लोग रामायण कह दिया करते हैं। इस ग्रंथरत्न की प्रशंसा में जो भी कहा जाय वह किंचित मात्र है। क्या भाषा और क्या भाव, क्या काव्य और क्या सिद्धान्त, क्या रस परिपाक और क्या प्रबंध चातुरी, क्या साधुमत और क्या लोकमत, क्या अतीत कथा और क्या भविष्य पथप्रदर्शन जिस दृष्टि से देखिए उसी दृष्टि से यह ग्रंथ अपूर्व जान पड़ता है।" (तुलसी दर्शन पृ० 17)। इन्द्रपाल सिंह 'इन्द' ने 'तुलसी साहित्य और साधना' ग्रंथ में कहा है कि 'रामचरितमानस' की अवरुद्ध जीवनी शक्ति और प्रवणता का सबसे पुष्ट प्रमाण यह है कि वह समग्र उत्तर भारत में धर्मग्रंथ के रूप में मान्य है। उसकी धूपदीप, नैवेद्य से पूजा की जाती है। कोटि-कोटि जनता उससे नवीन शक्ति, नवीन प्राणस्फूर्ति और अमित आत्मतोष प्राप्त करती है तथा अपनी समस्याओं का समाधान खोजती है। उसका घर पर पाठ होता है और विशिष्ट अवसर पर उसका अभिनय भी किया जाता है। अद्भुत जीवनीशक्ति और प्राणवत्ता के कारण ही इस काव्य ने विश्व की अनेक समृद्ध भाषाओं में अनूदित होने का गौरव प्राप्त किया है। विदेशी विद्वानों ने भी इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। सरलता ही इस ग्रंथ की विशेषता है। एक अनपढ़ गंवार भी इसकी पंक्तियाँ सुनकर मुग्ध हो जाता है और उन्हें याद कर लेता है। लोकोत्तर आनन्द देने में यह काव्य ग्रंथ अनूठा है। शांति प्रदान करने के लिए यह अनुपम भक्ति ग्रंथ है। समाज संस्कार के लिए यह एक विशेष नीति ग्रंथ है । रामकथा प्रेमियों के लिए यह कंठहार सदृश है। तुलसी की महत्ता का प्रधान आधार यही एक ग्रंथ है जिसके गौरव के साथ उनका गौरव अभिन्न रूप से संबद्ध है।

4.1.2 विनय पत्रिका

विनयपत्रिका तुलसीदास रचित एक ग्रंथ है। यह ब्रज भाषा में रचित है। विनय पत्रिका में विनय के पद है। और इसका एक नाम राम विनयावली भी है। विनय पत्रिका में 21 रसों का प्रयोग हुआ है। जिसमें प्रमुख रस शांतरस है तथा इस रस का स्थाई भाव निर्वेद होता है। विनय पत्रिका अध्यात्मिक जीवन को परिलक्षित करती है। विनय पत्रिका तुलसीदास के 279 स्तोत्र गीतों का संग्रह है। प्रारम्भ के 63 स्तोत्र और गीतों में गणेश, शिव, पार्वती, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, सीता और विष्णु के एक विग्रह विन्दु माधव के गुणगान के साथ राम की स्तुतियाँ हैं। इस अंश में जितने भी देवी-देवताओं के सम्बन्ध के स्तोत्र और पद आते हैं, सभी में उनका गुणगान करके उनसे राम की भक्ति की याचना की गयी है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि तुलसीदास भले ही इन देवी-देवताओं में विश्वास रखते रहे हों, किंतु इनकी उपयोगिता केवल तभी तक मानते थे, जब तक इनसे राम भक्ति की प्राप्ति में सहयोग मिल सके।

रामभक्ति के बारे में 'विनयपत्रिका' के ही एक प्रसिद्ध पद में उन्होंने कहा है: तुलसीदास जी एक बहुत ही महान कवि थे।

'तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो। जासों होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो॥'
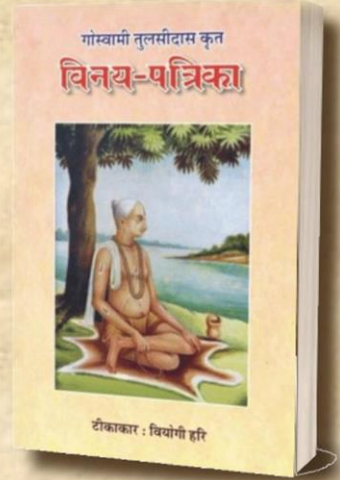
4.1.3 कवितावली

'कवितावली' का काव्य-शिल्प मुक्तक काव्य का है उक्तियों की विलक्षणता, अनुप्रास की छटा, लयपूर्ण शब्दों की स्थापना कथा भाग के छन्दों में दर्शनीय है। आगे रीति काल में यह काव्य शैली बहुत लोकप्रिय हुई और इस प्रकार तुलसीदास इस काव्य शैली के प्रथम कवियों में से ज्ञात होते हैं फिर भी उनकी 'कवितावली' के छंदो में पूरी प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। इस कृति का रचना काल समय संवत् 1656 से लेकर संवत् में 1680 तक माना गया है। कवितावली में कुल मिलाकर 325 छंद है, जो ब्रजभाषा में रचित है इसका वर्ण्य विषय रामचरित है इसके परिशिष्ट में हनुमान बाहुक भी शामिल है। यह एक मुक्तक काव्य है प्राय सभी रसों की व्यंजना हुई है फिर भी वीर रस की व्यंजना में तुलसी को सर्वाधिक सफलता मिली है। कवितावली की महत्ता इस बात में हैं कि इसमें तुलसी के जीवन-चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। इसमें कवि ने सवैया, कवि और छप्पय छन्दों में रामकथा का संक्षेप में गायन किया गया है। यह भी मानस की तरह सात काण्डों में विभक्त है इसमें वस्तु-वर्णन बड़ा संजीव
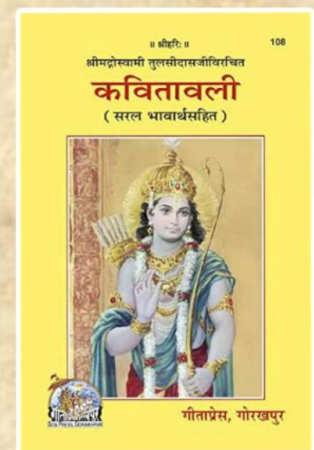
और चित्रात्मक हुआ है तथा मार्मिक स्थलों का विस्तार पूर्वक तथा बड़ा ही भावपूर्ण चित्रण हुआ है। राम की बाल छवि, केवट-प्रसंग, राम-लक्ष्मण और सीता का बन मार्ग में भटकना तथा लंका दहन के वर्णन में कवि ने विशेष रूचि ली है और शेष अंश जो उत्तर काण्ड है। तुलसीदास जी ने राम के प्रति अपनी भक्ति और विनय निवेदित किया है तथा गंगा महात्म्य शंकर-स्तवन और काशी में हमारी आदि स्फुट विषयों पर भी अपने भावोद्गार व्यक्त किये हैं।

4.1.4 दोहावली

दोहावली के एक दोहे से यह ज्ञात होता है कि इस कृति की रचना के समय तुलसी अत्यन्त वृद्ध हो गये थे अतएव विद्वानों ने दोहावली की रचना संवत 1676 ई० के आस-पास माना है, इसमें कुल मिलाकर 573 दोहे संकलित है, जो अवधि भाषा में रचे गए हैं। इनमें 551 दोहे और शेष 22 सोरठे है यहाँ यह भी उल्लेखनीय हैं कि ये सभी दोहे वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न और रामचरित मानस से लिए गए है। दोहावली में तुलसी ने अपनी अनुभूतियों को बड़े ही भावपूर्ण ढंग से दोहों में प्रस्तुत किया है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, प्रेम नीति आदि विविध विषय इसके अन्तर्गत है। ये दोहे अत्यन्त सरस तथा मार्मिक हैं। यह मुक्तक रचना है फिर भी रामचरित के कतिपय अंश इसमें स्फुट और स्वतंत्र रूप से आ गए हैं। इसमें छत्तीस नाम से चर्चित अंश अत्यन्त भावपूर्ण तथा मार्मिक है। इसमें अनन्यता का वर्णन करके भक्ति की एक निष्ठता और उसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है इसमें नीति और सदुक्ति से सम्बन्धित दोहों को भी संजोया है। मनुष्य के इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण का पथ प्रशस्त बनाते है। इसकी रचना में कवि का स्वयं अनुभव तो प्रमुख रहा ही है उसके अनाथ पाण्डित्य का भी प्रमुख योगदान रहा है कतिपय दोहो पर भर्तहरि के नीतिशतकम् के श्लोकों की स्पष्ट छाया दिखती है।
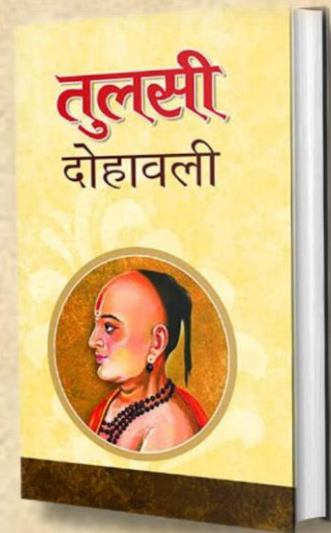
4.1.5 गीतावली

यह तुलसीदास की सबसे मधुर रचना है। ब्रज भाषा का माधुर्य और भावनाओं की कोमलता इसमें विद्यमान हैं। श्रीराम के बालरूप एवं किशोर रूप का तथा आगे चलकर उनके तापस वेष और राजवेष का अति अनूठा चित्रण हुआ है। गीतावली के रचना काल के सम्बन्ध में तुलसी ने स्वयं कहीं भी स्पष्ट नही लिखा है, तथापि गीतावली की शैली और अन्तर्वस्तु के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना कृष्ण गीतावली और विनय पत्रिका के आस-पास
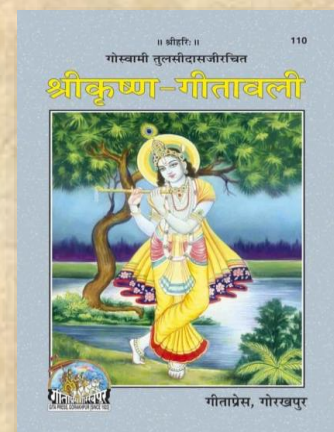
हुई होगी, इस प्रकार गीतावली का रचना-काल संवत् 1655 माना जा सकता है, गीतावली में रामचरित मानस के अनुरूप ही सात काण्डों में श्रृगार वात्सल्य एवं स्थलों का संजीव वर्णन किया गया है, 'गीतावली' की रचना ब्रजभाषा में हुई है। काव्यत्व की दृष्टि से इसे गीतिकाव्य माना जा सकता है, एक आलोचक के अनुसार तुलसी ने गायक सन्तों एवं गायन-प्रेमियों के लिए रागो में राम कथा लिखकर उसे ग्रन्थ में संकलित कर दिया इसलिए इसका नाम गीतावली रखा गया। संगीत पुष्टता गीतावली की अन्यतम विशेषता है, इसके अतिरिक्त अपने काव्य सौष्ठव के कारण गीतावली महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

4.1.6 श्रीकृष्ण गीतावली

उपलब्ध तथ्यों के आधार पर इसका रचना काल संवत् 1660 ई० के आस-पास ठहरता है, ब्रजभाषा में रचित इस रचना में तुलसी ने कृष्ण की बाल लीलाओं से लेकर उद्धव-सवाद तक के प्रसंगो का संजीव वर्णन किया है। काव्य रूप की दृष्टि से कृष्ण गीतावली एक मुक्तक काव्य है, इसमें अनेक शास्त्रोक्त, रागो का प्रयोग हुआ है और इस पर सुरसागर का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। तुलसी द्वारा राम के साथ-साथ श्रीकृष्ण चरित्र के सृजन के उद्देश्य के विषय में एक आलोचक का मत है कि सूर के पदों से ही प्रभावित होकर तुलसी ने कृष्ण गीतावली की रचना की जिसका एकमात्र उद्देश्य अपने उपास्य श्रीराम के ही आधारभूत श्री कृष्ण की लीला का वर्णन कर राम भक्त और सन्तो में पारस्परिक सद्भावना और सामंजस्य बनाए रखना था। काव्यत्व की दृष्टि से कृष्ण गीतावली का कोई विशेष महत्व नही है। तुलसी ने इस ग्रन्थ की रचना मात्र अपने कृष्ण - भक्त होने के अभाव की पूर्ति हेतु की थी। यह ब्रजभाषा में रचित ६१ पदों का आख्यान काव्य है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन है। तत्कालीन युग की छाप इस ग्रन्थ में विशेष रूप से दिखती है।
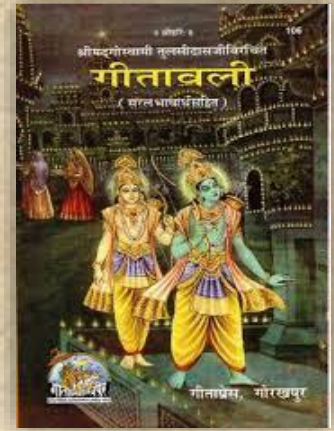
4.1.7 रामाज्ञा प्रश्न

यह भी तुलसी की प्रारम्भिक कृति है यह तुलसी के मित्र पण्डित गंगाराम ज्योतिषी के लिए 49-49 दोहों के सात सर्गो में अवधी भाषा में लिखा गया ज्योतिष ग्रन्थ है, विद्वानो ने इसका रचना काल संवत् 1621 ई० माना है कहा जाता है कि तुलसी ने इस ग्रन्थ की रचना मात्र छह घण्टे के भीतर कर डाली थी। रामाज्ञा प्रश्न मात्र एक शकुन विचार सम्बन्धी ज्योतिष ग्रन्थ है, काव्यत्व की दृष्टि से यह अत्यन्त निम्न स्तर की रचना है। यह ग्रन्थ शकुन विचारने की इच्छा से बनाया गया प्रतीत
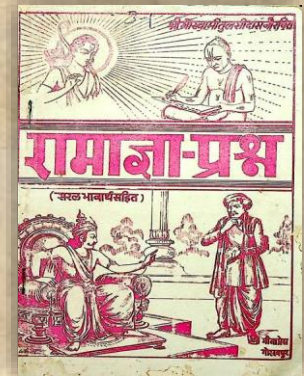
होता है। सात सर्ग और प्रत्येक सर्ग के सात सप्तम और प्रत्येक सप्तम में सात दोहे का विधान रखा गया है। राम राज्य की सुख समृद्धि का चित्रण भी इस ग्रन्थ में किया गया है। इसमें कुल मिलाकर 343 दोहे हैं।

4.1.8 श्रीरामलला नहछू

रामलला नहछू तुलसी की सर्वप्रथम कृति है अधिकांश विद्वान इसका रचना काल संवत् 1611 ई० में मानते है इसमें 20 सोहर छन्दों में अवध प्रान्त की रीति का वर्णन किया गया हैं। नहछू का वास्तविक अर्थ 'नरवछौर' होता है । यज्ञोपवीत के समान नाइन बालक के नाखून काटती है, अतः इस छोटे से ग्रन्थ में राम के यज्ञोपवीत संस्कार का वर्णन है। इसमें राम के लिए कहीं-कहीं 'दूलह' और 'वर' शब्दों का प्रयोग किया है। रामलला नहछू में राम के जीवन की मात्र एक ही घटना का वर्णन हुआ है अतः इसे खण्डकाव्य की संज्ञा नही दी जा सकती, वस्तुतः यह एक घटना काव्य है काव्य-कला की दृष्टि से भी यह अत्यन्त साधारण स्तर का काव्य है इसकी भाषा ठेठ अवधी हैं यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि उसमें श्रृंगार का वर्णन ऐसा है जो तुलसी जैसे भक्त कवि के स्वभाव के अनुरूप नही समझा जा सकता।
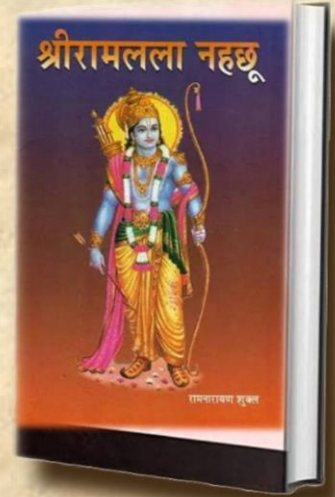
'नहछू' संस्कारगत एक विशेष रीति है। इसकी भाषा पूर्वी अवधी मानी गयी है। इसमें कवि की विनोद भावना और रसिकता लक्षित होती है। राजा दशरथ को विशेष रूप से रसिकता में रंगा गया है। नाइन, तमोलिन, दरजिन, मोचीन, मालिन आदि का रानियों के साथ हास-परिहास भी दिखाया गया है।

4.1.9 बरवै-रामायण

बरवै रामायण का रचना काल संवत् 1669 ई० में माना गया है, इसमें सात काण्ड है तथा 69 बरवै छन्द हैं। तुलसी ने इसकी रचना एक संक्षिप्त भेद से प्रेरित होकर की थी। 'बरवै रामायण' में सीता के सौन्दर्य का इस तरह वर्णन किया गया है जो तुलसी के द्वारा सीता को जगत जननी तुलसी कृत रचना ही नहीं मानते। यह एक मुक्तक काव्य है, जिसमें स्फुट बरवै का संग्रह किया गया है, इसमें अलंकारो का भरपूर प्रयोग किया गया है जिससे यह प्रतीत होता है कि तुलसी ने मुख्यतः अलंकार प्रदर्शन के उद्देश्य से ही इसकी रचना की थी अतएव अलकारों की दृष्टि से इसका महत्वपूर्ण स्थान है।
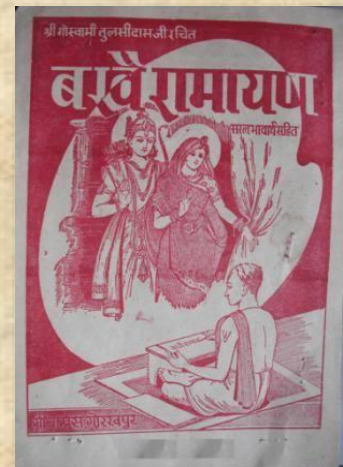
4.1.10 जानकी मंगल

इसका रचना काल संवत् 1643 ई0 में माना जाता है, इसमें 216 अरूण और मंगल छन्दों का प्रयोग हुआ है, इसकी भाषा अवधि है पार्वती मंगल की तरह जानकी मंगल की रचना भी पाठ किए जाने के उद्देश्य से की गई है। इसमें राम और जानकी के विवाह का सजीव चित्रण करके स्त्रोत शैली में लिखा गया जानकी मंगल का पूर्ण निर्वाह नही करता है अतः इसे प्रबन्ध काव्य की श्रेणी में नही रखा जा सकता, यह राम और जानकी के जीवन के एक मात्र वैवाहिक प्रसंग पर लिखा गया मात्र खण्ड काव्य है।
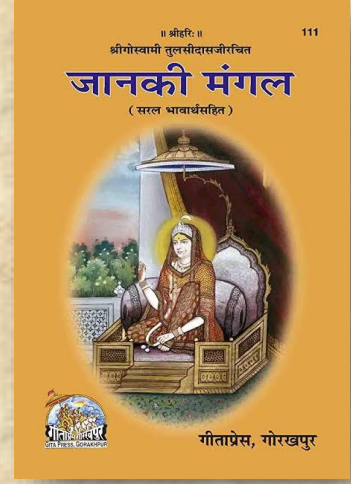
4.1.11 पार्वती मंगल

इसमें कुल मिलाकर 164 मंगल छन्द है, ठेठ अवधी भाषा मे शिव पार्वती के विवाह का वर्णन किया गया है। इसकी रचना संवत् 1642 ई0 में हुई यह एक प्रकार से मंगल काव्य है जिसमें पार्वती के जन्म से लेकर उनके विवाह योग्य हो जाने तक तथा उनके शिव के साथ विवाह हो जाने की कथा का वर्णन किया गया है। कुछ विद्वान पार्वती मंगल को प्रबन्ध काव्य मानते हैं, किन्तु वस्तुतः इसमें महाकाव्य के शास्त्रोक्त लक्षणों का सम्यक निर्वाह नही हुआ है, यह खण्ड काव्य के अधिक निकट प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें पार्वती और शिव के जीवन की मात्र एक घटना विवाह का ही सजीव वर्णन हुआ है सांस्कृत और प्राकृत भाषा में रचे गए मंगल काव्यों से प्रभावित यह भी एक सफल मंगल काव्य है। इस ग्रन्थ में शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है। इसमें १४८ सोहर और १६ छन्द हैं। यह रचना पूर्वी अवधी में है।
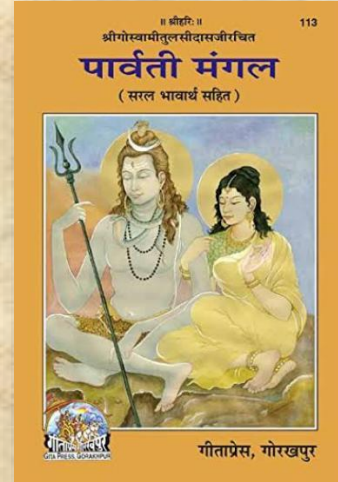
4.1.12 वैराग्य-संदीपनी

विद्वानों के तर्कानुसार इस कृति की रचना सवत् 1629 में इसके आस-पास हुई होगी। दोहा, सोरठा, और चौपाई आदि छन्दों में रचित इस कृति में कुल मिलाकर 68 छन्द है इसी कृति में तुलसी ने राम ध्यान, राम-नाम का महत्व और शरीर की नश्वरता पर विचार किया है और साथ ही मनुष्यों को राम की शरण में जाने के लिए प्रेरित किया है। इसके बाद तुलसी ने सन्त महात्माओं के लक्षण बताए हैं काव्यत्व की दृष्टि से वैराग्य संदीपनी भी साधारण स्तर की रचना है इसमें मुख्यतः वैराग्य का ही विवेचन हुआ है। अतः यह एक दार्शनिक रचना है। यह मुक्तक रचना है। साधारण स्तर की रचना होते हुए भी इसमें तुलसी के समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय अवश्य मिलता है।
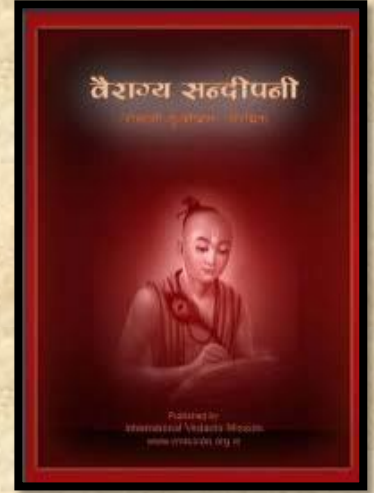
यह वैराग्य बोधक रचना है। दोहा, सोरठा और चौपाई छन्दों का इसमें प्रयोग हुआ है।

गोस्वामी तुलसीदास के दस ग्रन्थों को अप्रामाणिक माना जाता है। ये अप्रामाणिक ग्रन्थ निम्नलिखित है—

1 सतसई
2 छंदावली रामायण
3 कुंडलिया रामायण
4 राम शलाका
5 संकट मोचन
6 रोला रामायण
7 झूलना
8 छप्पय रामायण
9 कवित्त रामायण
10कलिधर्माधर्म निरुपण

````````````````

````````````````
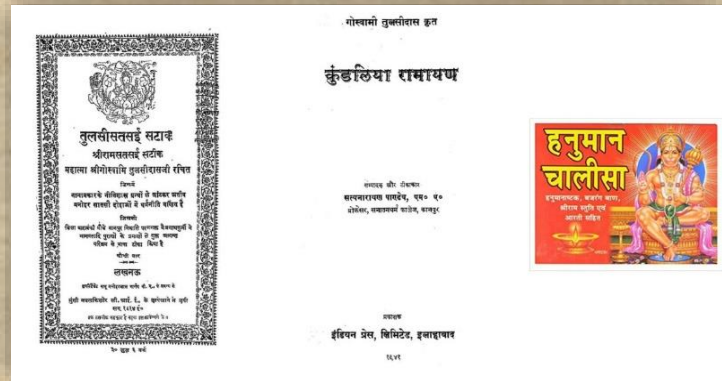
पंचम अध्याय

रामचरितमानस में निहित शैक्षिक मूल्य

- शीर्षक
- प्रासंगिकता
- दृष्टांत

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में कुल 7 कांड है जिसका शोधार्थी द्वारा सम्यक प्रकार से अध्ययन कर विशिष्ट शैक्षिक एवं मूल्यपरक कुछ दोहे और चौपाईयों को छांटा गया जिनका विवरण प्रासंगिकता सहित अग्रलिखित वर्णित है —

साधु चरित सुभचरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा ॥

अर्थ– संतों का चरित्र कपास के चरित्र (जीवन) के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है (कपास की डोड़ी नीरस होती है, संत चरित्र में भी विषयासक्ति नहीं है, इससे वह भी नीरस है; कपास उज्ज्वल होता है, संतका हृदय भी अज्ञान और पापरूपी अन्धकार से रहित होता है, इसलिए वह विशद है; और कपास में गुण (तन्तु) होते हैं, इसी प्रकार संत का चरित्र भी सद्गुणों का भण्डार होता है, इसलिये वह गुणमय है)। [जैसे कपास का धागा सूई के किये हुए छेद को अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोढ़े जाने, काते जाने और बुने जाने का कष्ट सहकर भी वस्त्र के रूप में परिणत होकर दूसरों के गोपनीय स्थानों को ढकता है उसी प्रकार] संत स्वयं दुःख सहकर दूसरों के छिद्रों (दोषों) को ढकता है, जिसके कारण उसने जगत् में वन्दनीय यश प्राप्त किया है।

दो० – बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोई।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ ॥

अर्थ– मैं संतों को प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु ! जैसे अञ्जलि में रखे हुए सुन्दर फूल [जिस हाथ ने फूलों को तोड़ा और जिसने उनको रखा उन] दोनों ही हाथों को समान रूप से सुगन्धित करते हैं [वैसे ही संत शत्रु और मित्र दोनों का ही समान रूप से कल्याण करते हैं]।

दो०–संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।

बालबिनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु॥

अर्थ– संत सरल हृदय और जगत के हितकारी होते हैं, उनके ऐसे स्वभाव और स्नेह को जानकर मैं विनय करता हूँ, मेरी इस बाल-विनय को सुनकर कृपा करके श्रीरामजी के चरणों में मुझे प्रीति दें।

दो० – जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।

संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार॥

अर्थ–विधाता ने इस जड-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है। किन्तु संत रूपी हंस दोषरूपी जल को छोड़कर गुणरूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं।

सरदातप निसि ससि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥

संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥

अर्थ–शरदऋतु के ताप को रात के समय चन्द्रमा हर लेता है। जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं। संत वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी, इन सबकी क्रिया पराये हित के लिये ही होती है।

दो० – भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ।

सदगुर मिलें जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ॥

अर्थ– [वर्षाऋतुके कारण] पृथ्वी पर जो जीव भर गये थे, वे शरदऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गये। जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर सन्देह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं।

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥

निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

अर्थ–संतों का हृदय मक्खन के समान होता है, ऐसा कवियों ने कहा है; परन्तु उन्होंने [असली बात] कहना नहीं जाना। क्योंकि मक्खन तो अपने को ताप मिलने से पिघलता है और परम पवित्र संत दूसरों के दुःख से पिघल जाते हैं।

दो ०–गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन।

बिनु हरि कृपा न होइ स, गावहिं बेद पुरान॥

अर्थ–हे गिरिजे! संत-समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। पर वह (संत-समागम) श्री हरि की कृपा के बिना नहीं हो सकता, ऐसा वेद और पुराण गाते हैं।

सुनि बोले गुर अति सुख पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

अर्थ–सब समाचार सुनकर और अत्यन्त सुख पाकर गुरु बोले- पुण्यात्मा पुरुष के लिये

पृथ्वी सुखों से छायी हुई है। जैसे नदियाँ समुद्र में जाती हैं, यद्यपि समुद्र को नदी की कामना नहीं होती।

तिमि सुखसंपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहि जाहि सुभाएँ॥
तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेबी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥

अर्थ–वैसे ही सुख और सम्पत्ति बिना ही बुलाये स्वाभाविक ही धर्मात्मा पुरुष के पास जाती हैं। तुम जैसे गुरु, ब्राह्मण, गाय और देवता की सेवा करने वाले हो, वैसी ही पवित्र कौसल्या देवी भी हैं।

घटबिकारजितअनघअकामा। अचलअकिंचनसुचिसुखधामा॥
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्य सार कवि कोविद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥

अर्थ–वे संत [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर- इन] छः विकारों (दोषों) को जीते हुए. पापरहित, कामना रहित, निश्चल (स्थिर बुद्धि), अकिञ्चन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान, योगी, सावधान, दूसरों को मान देनेवाले, अभिमान रहित धैर्यवान धर्म के ज्ञान और आचरण में अत्यंत निपुण।

निजगुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। परगुन सुनत अधिक हरपाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरलसुभाउ सबहि सन प्रीती॥

अर्थ–कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं, दूसरों के गुण सुनने से विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं।

जप तप व्रत दम संजम नेमा। गुरु गोविंद विप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥

अर्थ–वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम में रत रहते हैं और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मण के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है।

विरति विवेक विनय विग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥

अर्थ–तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्मा के तत्त्व का ज्ञान) और वेद-पुराण का यथार्थ रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते।

संत संभु श्रीपति अपवादा सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई॥

अर्थ–जहाँ संत, शिवजी और लक्ष्मीपति विष्णुभगवान् को निन्दा सुनी जाय वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो उस (निन्दा करने वाले) की जीभ काट ले और नहीं तो कान मूंदकर वहाँ से भाग जाए।

दो० – सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥

अर्थ–जो मनुष्य इस संत-समाजरूपी तीर्थराजका प्रभाव प्रसन्न मन से सुनते और समझते हैं और फिर अत्यन्त प्रेम पूर्वक इसमें गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फल पा जाते हैं।।

प्रासंगिकता

प्रेरक प्रसंग–1

एक संत कहीं घूमते हुए जा रहे थे। कहां जा रहे थे? हमें इसका पता नहीं है। संत होते ही रमते राम हैं। एक स्थान पर टिक कर उन्हें रहना नहीं आता। यह तो लोकोक्ति है.

बहता पानी और रमता संत ही निर्मल रहता है। एक वन में एक दुष्ट प्रकृति का मनुष्य रहता था। साधु-संतों से उसे चिढ़ थी। चिढ़ थी शो थी। दुष्ट स्वभाव ही अकारण शत्रुता करना, सीधे लोगों को अकारण कष्ट देना होता है। संत घूमते हुए उस वन में निकले। दुष्ट ने उन्हें देखा तो पत्थर उठाकर मारने दौड़ा—'तु इधर क्यों आया? क्या धरा है तेरे बाप का यहाँ?

संत ने कहा— मैंने तुम्हारी कोई हानि नहीं की है। तुम क्यों अप्रसन्न होते हो? तुम्हें मेरा इधर आना बुरा लगता है तो मैं लौट ता हूं। 'तू आया ही क्यों? दुष्ट अपनी दुष्टता पर आ गया था। संत को उसने कई पत्थर मारे। सिर और दूसरे अंगों में चोटें लगी और रक्त बहने लगा, लेकिन संत भी संत ही थे। बिना कुछ बोले लौट आए। कुछ दिनों बाद फिर संत उसी ओर गए। उनका हृदय कहता था—'बेचारा पता नहीं किस कारण साधु के वेश से चिढ़ता है। साधुओं को कष्ट देकर तो वह नरकगामी होगा | उसको सुबुद्धि मिलनी चाहिए। उसका उद्धार होना चाहिए। वह दुष्ट आज दीखा नहीं। संत उसकी झोपड़ी के पास गए। वह तो खाट पर बेसुध पड़ा था। तीव्र ज्वर था उसे जैसे अपना पुत्र ही बीमार पड़ा हो—संत उसके पास जा बैठे उसकी सेवा-शुश्रूषा में लग गए। उस दुष्ट के नेत्र खुले। उसने साधु को देखा। उसके मुख से कठिनाई से निकला—'आप ? संत ने उसे पुचकारा—तुम पड़े रहो। चिंता की कोई बात नहीं है। अरे अपने ही दाँत से अपनी जीभ कट जाए तो कोई क्रोध किस पर करे? तुम अलग हो और मैं अलग हूँ, यही तो भ्रम है। एक ही विराट के हम सब अंग हैं।
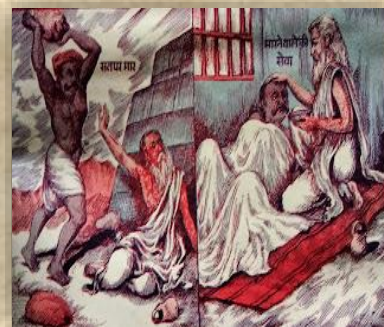
प्रेरक प्रसंग–2 संत एकनाथ सिद्धजन और सच्चे ईश्वरभक्त थे। एक दिन जब वे अपने शिष्यों के साथ बैठे हुए थे तो उनमें से एक शिष्य ने पूछा, “गुरुदेव, आप सदा प्रसन्न कैसे रहते हैं?” संत एकनाथ बोले, “मेरे बारे में मत पूछो, मैं आज तुम्हारे बारे में कुछ बताऊँगा। “शिष्य आश्चर्य से बोला, “मेरे बारे में?” संत बोले, “हाँ, तुम्हारे बारे में ही असल में, आज से सातवें दिन तुम मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे। “संत की भविष्यवाणी सुनकर शिष्य सन्न रह गया। उसके मन पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उस दिन से उसके स्वभाव में एक चमत्कारी बदलाव हुआ। उसकी पत्नी और बच्चे उसके बदले हुए स्वभाव को देखकर आश्चर्यचकित थे। (भर्तहरि विरचित नीतिशतकम् से श्लोक)

ऐसा पड़ोसियों ने भी अनुभव किया। छोटी-छोटी बातों से वह ऊपर उठ गया था। सातवें दिन शाम को भक्त ने पत्नी से कहा, “आज मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगा। मेरे लिए एक जोड़ा साफ कपड़े ले आओ, जिसे मैं स्नान के बाद पहन लूँगा। “स्नान आदि के बाद वह आँगन में लेट गया। उसी समय अचानक संत एकनाथजी वहाँ आ गए और उससे पूछा, “कहो वत्स, सात दिन कैसे बिताए ?” भक्त बोला, “महाराज, इतने दिनों में मैंने किसी पर क्रोध या किसी से घृणा नहीं की कड़वा शब्द नहीं बोला, बल्कि सबके साथ प्रेमपूर्वक रहा। “भक्त की बात सुनकर संत एकनाथजी बोले, “वत्स, जो लोग मृत्यु जैसे शाश्वत सत्य को नहीं भूलते, वे घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि के बारे में सोचते भी नहीं और सदा प्रसन्न रहते हैं।

सुजनपद्धतिः

वाञ्छा सज्जनसंगतौ परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खलै-
रेते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो महद्द्भ्यो नमः ॥

अनुवाद– जिनको सज्जनों की संगति की चाह है, और जो दूसरों के गुण प्रेम रखते हैं, बड़े-बूढ़ों के प्रतिजो नम्र बने रहते हैं, जिन्हें विद्या में व्यसन है -विद्योपार्जन में जो लगे रहते हैं, अपनी स्त्री से जिन्हें प्रेम रहता है, लोक- निन्दा से जो डरते हैं, शिव में जिनकी भक्ति रहती है और जो आत्म-दमन करते हैं, अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं; जो खलों की संगति से दूर भागते हैं; ये निर्मल गुण जिन महापुरूषों में विद्यमान हैं उन महात्मानों को हम प्रणाम करते हैं ।

Salutation to the great, soule, in whom dwell the following terling virtues : - desire for the company of the good, gratifi Fation at the quality of others, humility towards superiors, love f learning or close application to learning, attachment to one's ■wn wife, fear from public scandal, devotion to Lord Siva,power In self-control, and avoidance of the contact with wicked men.

श्री मद्भागवद् गीता के चौदह में अध्याय में कुछ संत-महात्माओं के लक्षण वर्णित हैं—

हिंदी अनुवाद—भगवान ने कहा- हे पाण्डुपुत्र ! जो प्रकाश, आसक्ति तथा मोह के उपस्थित होने पर न तो उनसे घृणा करता है और न लुप्त हो जाने पर उनकी इच्छा करता है, जो भौतिक गुणों की इन समस्त प्रतिक्रियाओं से निश्चल तथा अविचलित रहता है और यह जानकर कि केवल गुण ही क्रियाशील हैं, उदासीन तथा दिव्य बना रहता है, जो अपने आपमें स्थित है और सुख तथा दुख को एक समान मानता है, जो मिट्टी के ढेले, पत्थर एवं स्वर्ण के टुकड़े को समान दृष्टि से देखता है,

जो अनुकूल तथा प्रतिकूल के प्रति समान बना रहता है, जो धीर है और प्रशंसा तथा बुराई, मान तथा अपमान में समान भाव से रहता है, जो शत्रु तथा मित्र के साथ समान व्यवहार करता है और जिसने सारे भौतिक कार्यों का परित्याग कर दिया है, ऐसे व्यक्ति को प्रकृति के गुणों से अतीत कहते हैं।
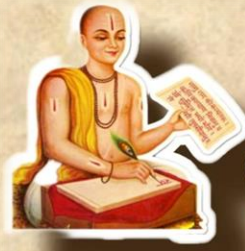
बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥

भावार्थ—अब मैं सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है, जिनको दूसरों का उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है।

हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे पर दोष लखहि सहसाखी परहित घृत जिन्ह के मन माखी॥

भावार्थ—जो हरि और हर के यशरूपी पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए राहु के समान हैं (अर्थात् जहाँ कहीं भगवान विष्णु या शङ्कर के यश का वर्णन होता है, उसी में वे बाधा देते हैं) और दूसरों की बुराई करने के समान वीर हैं। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरे के हितरूपी घी के लिये जिनका मन मक्खी के समान है अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने बनाये काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं)।

तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सब ही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥

भावार्थ— जो तेज (दूसरों को जलाने वाले ताप) में अग्नि और क्रोध में यमराज के समान है, पाप और अवगुण-रूपी धन में कुबेर के समान धनी हैं, जिनकी बढ़ती सभी के हित का नाश करने के लिए केतु (पुच्छल तारे) के के समान है और जिनके कुम्भकर्ण की तरह सोते रहने में ही भलाई है।

दो०–उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन बिनती करइ सप्रीति॥

भावार्थ — दुष्टों की यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु अथवा मित्र, किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन प्रेमपूर्वक उनसे विनय करता है।

परअकाजु लगितनु परिहरहीं। जिमिहिम उपल कृषीदलि गरहीं ॥

बंदउँ खल जस सेप सरोषा। सहस बदन बरनड़ पर दोषा ॥

वचन वज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा ॥

भावार्थ—जैसे ओले खेती का नाश करके आप भी गल जाते हैं, वैसे ही वे दूसरों का काम बिगाड़ने के लिए अपना शरीर तक छोड़ देते हैं। मैं दुष्टों को [हजार मुख वाले] शेषजी के समान समझकर प्रणाम करता हूँ जो पराये दोषों का हजार मुखों से बड़े रोप के साथ वर्णन करते हैं। जिनको कठोर वचनरूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और जो हजार आँखों से दूसरों के दोषों के देखते हैं ॥

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥

बायस पलिअहि अतिअनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा ॥

भावार्थ — मैंने अपनी ओर से विनती की है, परन्तु ये अपनी ओर से कभी नहीं चूकेंगे। कौओं को बड़े प्रेम से पालिये; परन्तु वे क्या कभी मांस के त्यागी हो सकते हैं।

नवनि नीच के अति दुखदाई जिमि अङ्कुस धनु उरग बिलाई ॥

भयदायक खल के प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥

भावार्थ —नीच का झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे अङ्कुश, धनुष, साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी! दुष्ट की मीठी वाणी भी [उसी प्रकार] भय देने वाली होती है, जैसे बिना ऋतु फूल।

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ ॥

तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ॥

भावार्थ —अब असंतों (दुष्टों) का स्वभाव सुनी: कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिए। उनका संग सदा दुःख देनेवाला होता है जैसे हरहाई (बुरी जातिकी) गाय कपिला (सीधी और दुधार) गाय को अपने संग से नष्ट कर डालती है।

खलन्ह हृदय अति ताप विसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी ॥

जहं कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरपाहि मनहुँ परी निधि पाई॥

भावार्थ —दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे परायी सम्पत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निन्दा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्ते में पड़ी निधि (खजाना) पा ली हो।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।

बयरु अकारन सब काहू सों जो कर हित अनहित ताहू सों ॥

भावार्थ —वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं।

ये बिना ही कारण सब किसी से वैर किया करते हैं जो भलाई करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥

बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा । खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

भावार्थ —उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है। (अर्थात् वे लेने-देने के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपये ले लिये, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार खाते हैं चने की रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आये। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य है, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं।) जैसे मोर [बहुत मीठा बोलता है, परन्तु उस] का हृदय ऐसा कठोर होता है कि वह महान् विषैले साँपों को भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं [परन्तु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं]।

दोहा–पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपबाद।

ते नर पाँवर पापमय, देह धरें मनुजाद ॥

भावार्थ —वे दूसरों से द्रोह करते हैं और परायी स्त्री, पराये धन तथा परायी निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर-शरीर धारण किये हुए राक्षस ही हैं।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन । सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥

काहू की जौं सुनहिं बड़ाई । स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥

भावार्थ —लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है (अर्थात् लोभ ही से वे सदा घिरे हुए रहते हैं)। वे पशुओं के समान आहार और मैथुन के ही परायण होते हैं, उन्हें यमपुर का भय नहीं लगता। यदि किसीकी बड़ाई सुन पाते हैं तो वे ऐसी [दुःखभरी] साँस लेते हैं मानो उन्हें जूड़ी आ गयी हो।

जब काहू के देखहिं बिपती । सुखी भए मानहुँ जग नृपती ॥

स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥

भावार्थ —और जब किसी की विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत भर के राजा हो गये हों। वे स्वार्थपरायण, परिवार वालों के विरोधी, काम और लोभके कारण लम्पट और अत्यन्त क्रोधी होते हैं।

मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं । आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥

करहिं मोह बस द्रोह परावा । संत संग हरि कथा न भावा ॥

भावार्थ —वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, [साथ ही अपने संग से] दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं। उन्हें न संतों का संग अच्छा लगता है, न भगवान्की कथा ही सुहाती है।

अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥

भावार्थ —वे अवगुणों के समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागयुक्त), वेदों के निन्दक और जबर्दस्ती पराये धनके स्वामी (लूटनेवाले) होते हैं। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं परन्तु ब्राह्मण-द्रोह विशेषता से करते हैं। उनके हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है, परन्तु वे [ऊपर से] सुन्दर वेष धारण किये रहते हैं।

दो०- ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बूंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहिं॥

भावार्थ —ऐसे नीच और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते। द्वापर में थोड़ेसे होंगे और कलियुग में तो इनके झुंड के झुंड होंगे।

जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हति ताहि नसावा॥
धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥

भावार्थ —नीच मनुष्य जिससे बड़ाई पाता है, वह सबसे पहले उसी को मारकर उसी का नाश करता है। हे भाई! सुनिये, आग से उत्पन्न हुआ धुआँ मेघ की पदवी पाकर उसी अग्र को बुझा देता है।

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥

भावार्थ —धूल रास्ते में निरादर से पड़ी रहती है और सदा सब [राह चलनेवालों] के लातों की मार सहती है। पर जब पवन उसे उड़ाता (ऊँचा उठाता) है, तो सबसे पहले वह उसी (पवन) को भर देती है और फिर राजाओं के नेत्रों और किरीटों (मुकुटों) पर पड़ती है।

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम करसंगा॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती॥

भावार्थ —हे पक्षिराज गरुड़जी ! सुनिये, ऐसी बात समझकर बुद्धिमान लोग अधम (नीच) का संग नहीं करते। कवि और पण्डित ऐसी नीति कहते हैं कि दुष्ट से न कलह ही अच्छा है, न प्रेम ही॥

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥
मैं खल हृदयँ कपट कुटिलाई। गुर हित कहइ न मोहि सोहाई॥

भावार्थ —हे गोसाईं ! उससे तो सदा उदासीन ही रहना चाहिये। दुष्ट को कुत्ते की तरह दूर से ही त्याग देना चाहिये। मैं दुष्ट था, हृदय में कपट और कुटिलता भरी थी। [इसीलिए यद्यपि] गुरुजी हितकी बात कहते थे, पर मुझे वह सुहाती न थी।

प्रासंगिकता

दुष्ट न छोड़े दुष्टता:

किसी नगर में एक दुष्ट आदमी रहता था। वह इतना कठोर और अत्याचारी था कि लोग उसका नाम सुनकर ही डर जाते थे। कोई उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहता था। उसका समय लोगों को डराने धमकाने और आपस में लड़ाई झगड़ा कराने में ही बीतता था। दूसरों के काम में रुकावट डालने में उसे बहुत मजा आता था और किसी की उन्नति को वह फूटी आंख से भी नहीं देख सकता था.... कहते हैं कि दूसरों को दुखी करने वाला आदमी कभी सुखी नहीं रहता दूसरों के सुख को ना देख सकने के कारण वह हमेशा दुखी रहने लगा। उसके घर में गरीबी ने आकर डेरा डाल लिया और वह तरह-तरह के आपदाओं से घिर गया। एक दिन एक महात्मा उसके घर आ पहुंचे और बताया कि प्रभु की उपासना करने से ही तेरे दुख दर्द दूर हो सकते हैं। दुष्ट आदमी ने भगवान की उपासना आरंभ कर दी। वह एक घने जंगल में तपस्या करने लगा। आखिर भगवान प्रसन्न हुए और साक्षात दर्शन देते हुए उस आदमी से वरदान मांगने को कहा। उसने सिर झुका कर प्रार्थना की, 'भगवान मैं बहुत गरीब हूं, मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि मैं जो चाहूँ वह मुझे मिल जाए।' "तथास्तु" कहकर भगवान ने उसके हाथ में एक घंटी पकड़ा दी और बोले, 'यह घंटी तेरी हर इच्छा को पूरी करेगी। इसे बजाते ही एक जिन तेरे सामने होगा, उससे तू जो मांगेगा वह तुझे मिल जाएगा। लेकिन एक बात है -- वह यह कि तू दूसरों की उन्नति नहीं देख सकता इसलिए जो चीज तुझे मिलेगी उसके मुकाबले में तेरे पड़ोसियों को दुगनी चीजें प्राप्त होगी। यह कहकर भगवान अंतर्ध्यान हो गए। दुष्ट आदमी को लगा कि जैसे उसकी तपस्या बेकार हो गई। मुझसे अधिक दूसरों को मिलेगा तो इसमें मेरा क्या लाभ है, भगवान ने भी मेरे साथ कपट किया है। इससे अच्छा तो ये कि मैं घंटी को बजाऊंगा ही नहीं भूखा मर जाऊंगा, लेकिन अपनी तपस्या का लाभ दूसरों के पास नहीं जाने दूंगा.... घर पहुंचते ही उसने घंटी के अंदर रुई ठूंस दी और उसे ताक में छिपाकर रख दिया। उसने सोचा इससे तो बात बनी नहीं अब प्रदेश जाकर नौकरी कर ली जाए। अगले ही दिन वह अपना बोरिया बिस्तर बांध कर घर से निकल पड़ा।

सीख
दुष्ट व्यक्ति से सदा होशियार रहना चाहिए। दुष्ट व्यक्ति चाहें कितनी ही मीठी बातें क्यों न करे। उसकी बातों पर कभी यकीन नहीं करना चाहिए। अगर दुष्ट की बातों का भरोसा कर लिया तो संकट उठाना और मुसीबत में फंसना तय है। दुष्ट व्यक्ति संकट में डालने के लिए हर तरह के जतन करते हैं।लेकिन होशियार कभी भी इनकी बातों में नहीं आते हैं। दुष्ट व्यक्तियों को कभी अच्छा नहीं समझना चाहिए। दुष्ट की प्रवृत्ति दुष्टता की होती है, वह इससे कभी दूर नहीं रह सकता है। ऐसे व्यक्तियों से सावधान रहना चाहिए और उनकी गतिविधियों पर नजर रखनी चाहिए, कुल मिलाकर ऐसे व्यक्तियों से सतर्क रहना चाहिए।

कुछ समय के बाद नौकरी भी मिल गई, लेकिन नियत खराब होने के कारण नौकरी के पैसों में बरकत ना हुई, गरीबी ज्यों की त्यों बनी रही.... एक दिन जब घर में खाने को कुछ ना मिला तो पत्नी की नजर ताक में रखी हुई घंटी पर पड़ी। उसने सोचा अब इसी को बेचकर पेट की आग बुझानी चाहिए। इसके अलावा और कोई चारा नहीं, उसने ताक से घंटी को निकाल लिया। उसके अंदर ठूंसी हुई रूही को बाहर निकालते ही घंटी बज उठी और पहाड़ की तरह एक

जिन उसके सामने आ खड़ा हुआ। अचानक जिन को सामने खड़ा देख वह बेहोश हो गयी। जिन किसी तरह उसे होश में लाया और बोला तुम्हें क्या चाहिए? भूख से उसकी जान निकली जा रही, थी मानो कि चूहों ने पेट में खेल का मैदान बना लिया हो। वह बोली मैंने कई दिनों से खाना नहीं खाया, यदि तुम कुछ दे सकते हो तो पहले मुझे अच्छा सा खाना लाकर दो। कहने की देर थी कि तरह-तरह के पकवानों से भरा हुआ थाल सामने आ गया। पत्नी ने पेट भर खाना खाया। उसे लगा की घंटी में अवश्य ही कोई जादू है और उसके द्वारा मेरे कई काम पूरे हो सकते हैं। उसने दोबारा घंटी को बजाया। तत्काल जिन सामने आ खड़ा हुआ और पूछा अब क्या चाहिए? पत्नी बोली मेरे पास अच्छा सा घर भी नहीं है मैं चाहती हूं कि अपना एक सुंदर घर हो जिसमें भोजन वस्त्र के साथ-साथ सुख सुविधा की सब चीजें मौजूद हो। देखते-देखते घर भी तैयार हो गया और उसकी इच्छानुसार हर चीज घर में अपनी जगह पड़ी दिखाई देने लगी। पत्नी ने देखा कि सारा नगर वैसे ही सुंदर घरों से सुशोभित हो रहा है। लोगों के पास दो-दो घर हैं और घरों के अंदर सुख सुविधा की हर वस्तु उपलब्ध हो गई है। देखकर वह खुशी से उछल पड़ी। अब उसे अपने पति की याद हो आई... जब घर में हर तरह का सुख प्राप्त है तो प्रदेश में रहकर नौकरी करने से क्या फायदा...

फिर अपने पास जादू की घंटी है जब जिस चीज की जरूरत पड़ेगी इसके द्वारा प्राप्त की जा सकती है यह सोचकर उसने तत्काल पति के लिए पत्र लिख दिया कि घर चले आओ! अब घर पर रहकर भी तुम्हारी मनोकामना पूरी हो सकती है। पत्र को पढ़ते ही पति के मन में शंका हुआ। वह चिंता में डूब गया कि कहीं उस कम्बख्त के हाथ घंटी ना लग गई हो। जरूर ऐसा ही हुआ है वह भागा भागा घर लौट आया। उसने देखा, सारा शहर स्वर्ग की तरह जगमगा रहा है। लोगों के पास दो-दो घर हैं, घरों के अंदर कीमती सामान और भोजन वस्त्र की कमी नहीं। सारे नगर को खुशहाल देखकर वह बुरी तरह जल-भुन गया। पत्नी से बोला यह तुमने क्या कर दिया है। खुद एक घर में रहती हो और इन हरामियों को दो-दो घर दिलवा दिए, यह तुमने अच्छा नहीं किया। पत्नी खुश होकर बोली, 'स्वामी! लोगों के पास दो-दो घर होने से हमारा क्या बिगड़ गया,

हमारे लिए एक ही घर काफी है, इसी में हम सुख से रह सकते हैं।' पति बोला, 'तुम निपट मूर्खा हो, मैं इस बात को कभी सहन नहीं कर सकता कि लोगों के पास दो-दो घर हो और वे सुख से अपना जीवन

व्यतीत करें। मेरी तपस्या का फल उन्हें मिले, यह कैसे हो सकता है।' उसने तुरंत घंटी को बजाया। घंटी के बजते ही जिन उपस्थित होकर बोला, 'अब क्या करना है?' दुष्ट आदमी सोच में पड़ गया। थोड़ी देर बाद उसकी समझ में बात आ गई। वह जिन से बोला कि मेरे घर के आगे ठीक दरवाजे पर एक गहरा कुआं खोद डालो। देखते-देखते कुआं खुद गया और इसके साथ ही लोगों के दरवाजे पर दो-दो कुएं खुद गए। उसने फिर घंटी बजाई। जिन ने आकर पूछा, 'अब क्या चाहते हो?' तो उसने बोला अब तुम मेरी एक आंख फोड़ डालो। वही हुआ जिन ने उसकी एक आंख फोड़ डाली और इसके साथ ही शहर के लोगों की दोनों की दोनों आंखें फूट गई। अब बस फिर क्या था, दुष्ट आदमी अपनी एक आंख के जरिए अपना काम चलाने लगा, किंतु जिनकी दोनों आंखें फूट गई थी। वह घरों से निकल-निकल कर कुएं में गिरते चले गए। इस तरह कुछ ही समय के अंदर सारा नगर खाली खाली हो गया और दुष्ट आदमी ने उस सारे नगर पर अपना अधिकार जमा लिया।

दुष्ट इन्सान की मीठी बातों पर
कभी भरोसा मत करो.
वो अपना मूल स्वभाव कभी नही
छोड़ सकता, जैसे शेर कभी
हिंसा नही छोड़ सकता.
-चाणक्य

बंदउँ संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥

महत्वपूर्ण बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥

भावार्थ — अब मैं संत और असंत दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ; दोनों ही दुःख देने वाले हैं, परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। वह अन्तर यह है कि एक (संत) तो बिछुड़ते समय प्राण हर लेते हैं, और दूसरे (असंत) मिलते हैं तब दारुण दुःख देते हैं (अर्थात् संतों का बिछुड़ना मरने के समान दुःखदायी होता है और असंतों का मिलना)।

उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥

सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥

भावार्थ —दोनों (संत और असंत) जगत् में एक साथ पैदा होते हैं पर [एक साथ पैदा होनेवाले] कमल और जोंक की तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। (कमल दर्शन और स्पर्श से सुख देता है, किन्तु जो शरीर का स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है।) साधु अमृत के समान (मृत्युरूपी संसार से उबारने वाला) और असाधु मदिरा के समान (मोह, प्रमाद और जड़ता उत्पन्न करने वाला) है, दोनों को उत्पन्न करनेवाला जगत्रूपी अगाध समुद्र एक ही है [शास्त्रों में समुद्रमन्थन से ही अमृत और मंदिरा दोनों की उत्पत्ति बतायी गयी है।

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू ॥

भावार्थ —भले और बुरे अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुन्दर यश और अपयश की सम्पत्ति पाते हैं। अमृत, चन्द्रमा, गङ्गाजी और साधु एवं विष, अग्नि, कलियुग के पापों की नदी अर्थात् कर्मनाशा और हिंसा करनेवाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं; किन्तु जिसे जो भाता है उसे वही अच्छा लगता है।

दो० – भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु ।

सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु ॥

भावार्थ —भला भलाई ही ग्रहण करता है और नीच नीचता को ही ग्रहण किये रहता है। अमृत की सराहना अमर करने में होती है और विष की मारने में !

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥

पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाउ खगराया ॥

भावार्थ — जगत् में दरिद्रता के समान दुःख नहीं है तथा संतों के मिलन के समान जगत् में सुख नहीं है और हे पक्षिराज! मन, वचन और शरीर से परोपकार करना, यह संतों का सहज स्वभाव है।

संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥

भूर्ज तरू सम संत कृपाला । पर हित निति सह बिपति बिसाला ॥

भावार्थ —संत दूसरों की भलाई के लिये दुःख सहते हैं और अभागे असंत दूसरों को दुःख पहुँचाने के लिये। कृपालु संत भोज के वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिये भारी विपत्ति सहते हैं (अपनी खाल तक उधड़वा लेते हैं।

सन इव खल पर बंधन करई । खाल कढ़ाई बिपति सहि मरई ॥

खल बिनु स्वारथ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥

भावार्थ —किन्तु दुष्ट लोग सनकी भाँति दूसरों को बाँधते हैं और [उन्हें बाँधने के लिए] अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं। हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! सुनिये, दुष्ट बिना किसी स्वार्थ के साँप और चूहे के समान अकारण ही दूसरों का अपकार करते हैं।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥

भावार्थ—हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई (नीचता (पाप) नहीं है। हे तात! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय (निश्चित सिद्धान्त) मैंने तुमसे कहा है, इस बात को पण्डितलोग जानते हैं।

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥

करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ परलोक रत नसाना ॥

भावार्थ —मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दुःख पहुँचाते हैं, उनको जन्म- संकट सहने पड़ते हैं, उनको जन्म मृत्यु के महान संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं, इसी से उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है।

कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥

अस बिचारि जे परम सयाने । भजहिं मोहि संसृत दुख जाने ॥

भावार्थ —हे भाई! मैं उनके लिये कालरूप (भयंकर) हूँ, और उनके अच्छे और बुरे कर्मों का [यथायोग्य] फल देनेवाला हूँ। ऐसा विचारकर जो लोग परम चतुर हैं, वे संसार [के प्रवाह] को दु:खरूप जानकर मुझे ही भजते हैं।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक । भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥

संत असंतन्ह के गुन भाषे । ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे ॥

भावार्थ —इसी से वे शुभ और अशुभ फल देनेवाले कर्मों को त्याग कर देवता, मनुष्य और मुनियों के नायक मुझको भजते हैं। [इस प्रकार] मैंने संतों और असंतों के गुण कहे। जिन लोगों ने इन गुणों को समझ रखा है, वे जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ते।

प्रासंगिकता

प्रेरक प्रसंग—1 किसी गाँव के निकट एक संत अपनी कुटिया में रहते थे। वह हर किसी को अपना मित्र समझते और उनकी सहायता करते थे। अगर कोई दुष्ट व्यक्ति उनकी उदारता का अनुचित लाभ उठाने की कोशिश भी
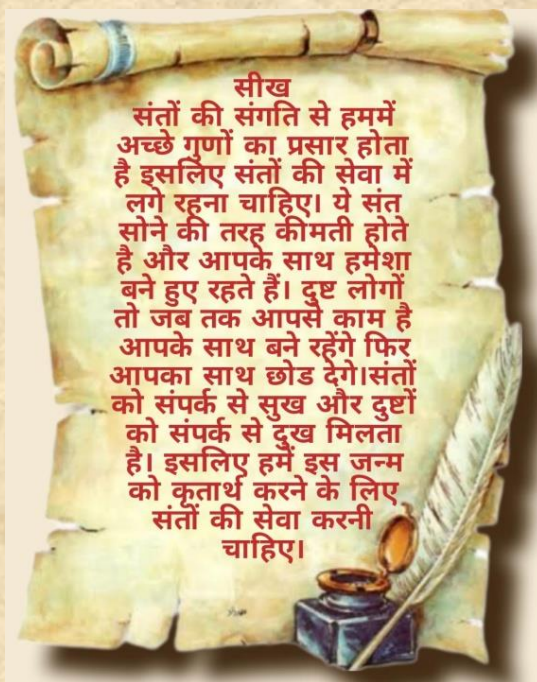
करता तो वह उसको क्षमा कर देते और कहते, “कभी जब इसका अच्छा समय आएगा तो यह स्वयं ही सुधर जाएगा।“ गाँव वाले संत से कहते, “आप इसे कोई दंड दे दो।“ वह कहते, “मैं अपना मूल स्वभाव कैसे छोड़ दूँ। मैंने उसे क्षमा कर दिया।“

एक बार जब संत काशी गए तो किसी दुष्ट व्यक्ति ने उनकी कुटिया से सारा सामान गायब कर दिया। संत लौटकर अपनी कुटिया में गए और तत्काल निर्विकार भाव से बाहर आए। फिर उन्होंने बाहर खड़े गाँववालों से कहा, “भगवान की मुझ पर असीम कृपा है। धूप में सिर छुपाने के लिए छत अभी बची हुई है। वह मुझे आँधी और वर्षा से भी बचाएगी। भोजन की व्यवस्था तो कहीं-न-कहीं से हो ही जाएगी। बाकी मुझे क्या चाहिए। जो चीज मेरे उपयोग की न थी, उनका चले जाना ही अच्छा है। “गाँववाले उनके विशाल हृदय की प्रशंसा करते हुए उनके लिए आवश्यक सामग्री जुटाने में लग गए। थोड़ी देर में वह व्यक्ति भी आया, जिसने संत का सामान चुराया था। उसने संत के चरणों में गिरकर माफी माँगी और सदाचार की राह पर चलने की शपथ ली।

प्रेरक प्रसंग–2 एक लोमड़ी जंगल में घूम रही थी। वो शिकार करने में बहुत माहिर थी ! एक दिन कोई बड़ा शिकार हाथ लगा। उसके हाथ लगे शिकार को हड़बड़ी से खाने के कारण हड्डी गले में फस गई । दर्द से चिल्लाते हुए कहा, ” कोई मेरे मदत करो! एक सारस को उसकी हालत देखते हुए बहुत दया आई। उसने लोमड़ी से बोला, ” आप अपना मुंह खोलो, सारस ने बड़ी चोंच से गले में फसी हड्डी निकाल दी। लोमड़ी ने चैन की सास ली सारस ने मजाक में कहा, ” आपकी गले में फसी हड्डी निकाल दी इसलिए मुझे कुछ तो इनाम दीजिए ।

लोमड़ी आग बबूला हुई,” तेरी हिम्मत की हुई, इनाम मांगने की, तू नहीं तो कोई और कर लेता मेरी मदत से तुम्हारी चोंच मेरे मुंह के अंदर थी मन तो कर रहा था की खा लूं। इस कहानी से यह सीख मिलती है की दुष्ट इंसान की कितनी भी सहायता कर लो वे एहसान नहीं मानते।
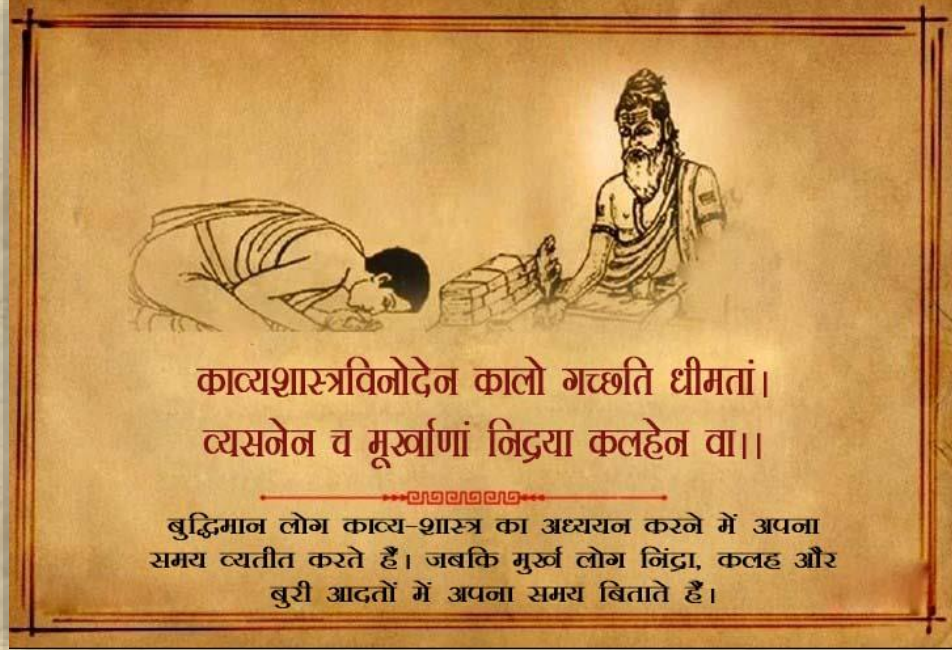
महाकविबाणभट्ट द्वारा रचित ग्रंथ 'कादंबरी कथा' के मंगलाचरण से उद्धृत श्लोक—
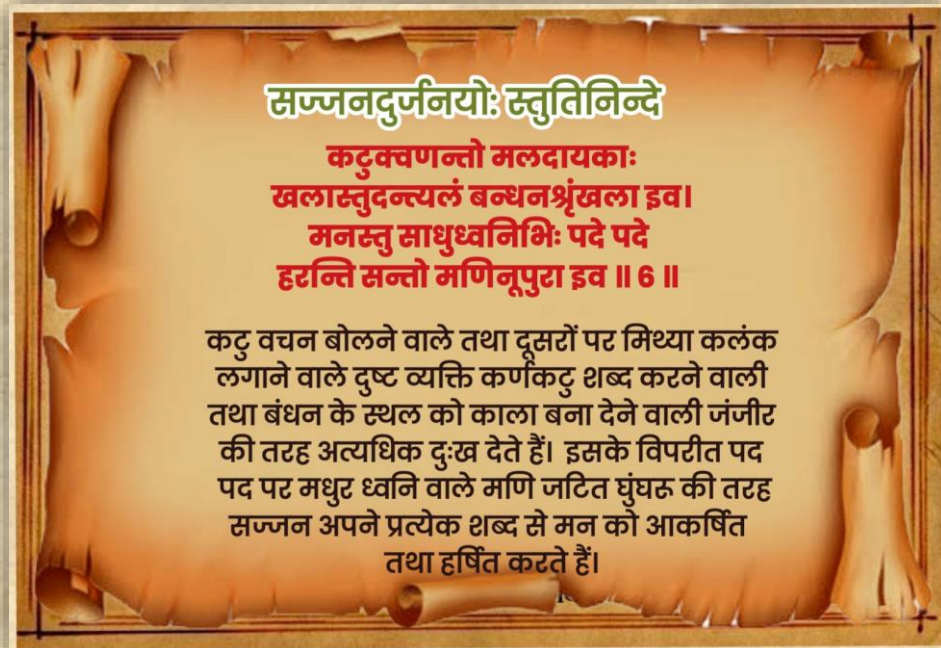
मजन फल पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥

सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥

हिंदी व्याख्या— इस तीर्थराज में स्नान का फल तत्काल ऐसा देखने में आता है कि कौए कोयल बन जाते हैं और बगले हंस। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्योंकि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥

सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

हिंदी व्याख्या— उनमें से जिसने जिस समय जहाँ कहीं भी जिस किसी यत्रसे बुद्धि, कीर्ति, सद्गति, विभूति (ऐश्वर्य) और भलाई पायी है सो सब सत्संग का ही प्रभाव समझना चाहिये। वेदों में और लोक में इनकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

हिंदी व्याख्या—सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और श्रीरामजी की कृपा के बिना वह सत्संग सहज में मिलता नहीं। सत्संगति आनन्द और कल्याण की जड़ है। सत्संग की सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है और सब साधन तो फूल हैं।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥

बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं

हिंदी व्याख्या—दुष्ट भी सत्संगति पाकर सुधर जाते हैं, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सुहावना हो जाता है (सुन्दर सोना बन जाता है)। किन्तु दैवयोग से यदि कभी सज्जन कुसंगति में पड़ जाते हैं तो वे वहाँ भी साँपकी मणि के समान अपने गुणों का ही अनुसरण

करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार साँप का संसर्ग पाकर भी मणि उसके विष को ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाश को नहीं छोड़ती, उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टों के संग में रहकर भी दूसरों को प्रकाश ही देते हैं, दुष्टों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

दो०—संत संग अपबर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद, श्रुति पुरान सदग्रंथ॥

हिंदी व्याख्या—संत का संग मोक्ष (भव-बन्धनसे छूटने) का और कामी का संग जन्म-मृत्यु के बन्धन में पड़ने का मार्ग है। संत, कवि और पण्डित तथा वेद-पुराण [आदि] सभी सद्ग्रन्थ ऐसा कहते हैं।

बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

हिंदी व्याख्या—बड़े ही भाग्य से सत्संग की प्राप्ति होती है, जिससे बिना ही परिश्रम जन्म-मृत्युका चक्र नष्ट हो जाता है। भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुखों की खान है। परन्तु सत्संग (संतों के संग) के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते और पुण्य समूह के बिना संत नहीं मिलते। सत्संगति ही संसृति (जन्म-मरण के चक्र) का अन्त करती है॥

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥

हिंदी व्याख्या—घोर कुसंग ही भयानक बुरा रास्ता है; उन कुसंगियों के बचन ही बाघ, सिंह और साँप हैं। घर के काम-काज और गृहस्थी के भाँति-भाँति के जंजाल ही अत्यन्त दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ हैं।

बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥

हिंदी व्याख्या—मोह, मद और मान ही बहुत-से बीहड़ वन हैं और नाना प्रकार के कुतर्क ही भयानक नदियाँ हैं। कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता? नीच के मत के अनुसार चलने से चतुराई नहीं रह जाती।

हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहुँ बेद बिदित सब काहू ॥

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा । कीचहिं मिलइ नीच जल संगा ॥

साधु असाधु सदन सुक सारीं । सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं ॥

हिंदी व्याख्या—बुरे संग से हानि और अच्छे संग से लाभ होता है, यह बात लोक और वेद में है और सभी लोग इसको जानते हैं। पवन के संग से धूल आकाश पर चढ़ जाती है और वही नीच (नीचे की ओर बहने वाले) जल के संग से कीचड़ में मिल जाती है। साधु के घर के तोता-मैना राम-राम सुमिरते हैं और असाधु के घर के तोता-मैना गिन-गिनकर गालियाँ देते हैं।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई।।

सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता ॥

हिंदी व्याख्या—कुसंग के कारण धुआँ कालिख कहलाता है, वही धुआँ [सुसंग से] सुन्दर स्याही होकर पुराण लिखने के काम में आता है और वही धुआँ जल, अग्नि और पवन के संग से बादल होकर जगत को जीवन देनेवाला बन जाता है।

दो०- ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग ।

होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥

हिंदी व्याख्या—ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र, ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसार में बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं। चतुर एवं विचारशील पुरुष ही इस बात को जान पाते हैं।

दो०- सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह ।

ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥

हिंदी व्याख्या—महीने के दोनों पखवाड़ों में उजियाला और अँधेरा समान ही रहता है, परन्तु विधाता ने इनके नाम में भेद कर दिया है (एक का नाम शुक्ल और दूसरे का नाम कृष्ण रख दिया)। एक को चन्द्रमा को बढ़ाने वाला और दूसरे को उसका घटाने वाला समझकर जगत ने एक को सुयश और दूसरे को अपयश दे दिया ।

सो० – जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि ।

बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि ॥

हिंदी व्याख्या—प्रीति की सुन्दर रीति देखिए कि जल भी [दूध के

साथ मिलकर] दूध के समान भाव बिकता है; परन्तु फिर कपटरूपी खटाई पड़ते ही अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद [प्रेम] जाता रहता है।

दो०–कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।

बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥

हिंदी व्याख्या—कभी [बादलों के कारण] दिन में घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है।

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥

भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

हिंदी व्याख्या—यह जल श्रीरामचन्द्रजी के सुन्दर प्रेम को पुष्ट करता है, कलियुग के समस्त पापों और उनसे होने वाली ग्लानि को हर लेता है। संसार के (जन्म-मृत्यु रूप) श्रम को सोख लेता है, सन्तोष को भी सन्तुष्ट करता है और पाप ताप, दरिद्रता और दोषों को नष्ट कर देता है।

काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥

सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥

हिंदी व्याख्या—यह जल काम, क्रोध, मद और मोह का नाश करने वाला और निर्मल ज्ञान और वैराग्य का बढ़ानेवाला है। इसमें आदरपूर्वक स्नान करने से और इसे पीने से हृदय में रहने वाले सब पाप-ताप मिट जाते हैं।

दो०- तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।

तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

हिंदी व्याख्या—हे तात! स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों को तराजू के एक पलड़े में रखा जाय, तो भी वे सब मिलकर [दूसरे पलड़े पर रखे हुए] उस सुखके बराबर नहीं हो सकते जो लव (क्षण) मात्र के सत्सङ्ग से होता है।

प्रासंगिकता

हमारे जीवन में हमारी संगति का बहुत प्रभाव होता है। हम जिस संगति में रहते हैं वैसे ही स्वाभाव के बन जाते हैं। इस बात को और अच्छी तरह जानते हैं " संगति का असर कहानी " में:-

प्रेरक प्रसंग–1 वाल्मीकि की कथा

महर्षि वाल्मीकि पहले का नाम रत्नाकर था। इनका जन्म पवित्र ब्राह्मण कुल में हुआ था, किन्तु डाकुओं के संसर्ग में रहने के कारण ये लूट-पाट और हत्याएँ करने लगे और यही इनकी आजीविका का साधन बन गया।
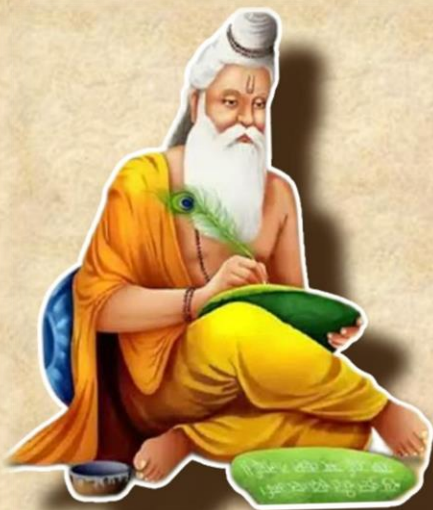
इन्हें जो भी मार्ग में मिल जाता, ये उसकी सम्पत्ति लूट लिया करते थे। एक दिन इनकी मुलाक़ात देवर्षि नारद से हुई। इन्होंने नारद जी से कहा कि 'तुम्हारे पास जो कुछ है, उसे निकालकर रख दो! नहीं तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।' देवर्षि नारद ने कहा- 'मेरे पास इस वीणा और वस्त्र के अतिरिक्त है ही क्या? तुम लेना चाहो तो इन्हें ले सकते हो, लेकिन तुम यह क्रूर कर्म करके भयंकर पाप क्यों करते हो? देवर्षि की कोमल वाणी सुनकर वाल्मीकि का कठोर हृदय कुछ द्रवित हुआ। इन्होंने कहा- भगवान! मेरी आजीविका का यही साधन है। इसके द्वारा मैं अपने परिवार का भरण-पोषण करता हूँ।' देवर्षि बोले- 'तुम जाकर पहले अपने परिवार वालों से पूछकर आओ कि वे तुम्हारे

द्वारा केवल भरण-पोषण के अधिकारी हैं या तुम्हारे पाप-कर्मों में भी हिस्सा बटायेंगे। तुम्हारे लौटने तक हम कहीं नहीं जायँगे। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो मुझे इस पेड़ से बाँध दो।' देवर्षि को पेड़ से बाँध कर ये अपने घर गये। इन्होंने बारी-बारी से अपने कुटुम्बियों से पूछा कि 'तुम लोग मेरे पापों में भी हिस्सा लोगे या मुझ से केवल भरण-पोषण ही चाहते हो।' सभी ने एक स्वर में कहा कि 'हमारा भरण-पोषण तुम्हारा कर्तव्य है। तुम कैसे धन लाते हो, यह तुम्हारे सोचने का विषय है। हम तुम्हारे पापों के हिस्सेदार नहीं बनेंगे।' अपने कुटुम्बियों की बात सुनकर वाल्मीकि के हृदय में आघात लगा। उनके ज्ञान नेत्र खुल गये। उन्होंने जल्दी से जंगल में जाकर देवर्षि के बन्धन खोले और विलाप करते हुए उनके चरणों में पड़ गये। नारद जी ने उन्हें धैर्य बँधाया और राम-नाम के जप का उपदेश दिया, किन्तु पूर्वकृत भयंकर पापों के कारण उनसे राम-नाम का उच्चारण नहीं हो पाया। तदनन्तर नारद जी ने सोच-समझकर उनसे मरा-मरा जपने के लिये कहा।

भगवान्नाम का निरन्तर जप करते-करते वाल्मीकि अब ऋषि हो गये। उनके पहले की क्रूरता अब प्राणिमात्र के प्रति दया में बदल गयी। एक दिन इनके सामने एक व्याध ने क्रौंच पक्षी के एक जोड़े में से एक को मार दिया, तब दयालु ऋषि के मुख से व्याध को शाप देते हुए एक श्लोक निकला। वह संस्कृत भाषा में लौकिक छन्दों में प्रथम अनुष्टुप छन्द का श्लोक था। उसी छन्द के कारण वाल्मीकि आदिकवि हुए। इन्होंने ही रामायण रूपी आदिकाव्य की रचना की। वनवास के समय भगवान श्री राम ने स्वयं इन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। सीता जी ने अपने वनवास का अन्तिम काल इनके आश्रम पर व्यतीत किया। वहीं पर लव और कुश का जन्म हुआ। वाल्मीकि जी ने उन्हें रामायण का गान सिखाया। इस प्रकार नाम-जप और सत्संग के प्रभाव से वाल्मीकि डाकू से ब्रह्मर्षि हो गये।

प्रेरक प्रसंग–2 एक गुरु अपने शिष्यों के साथ एक बगीचे में घूम रहे थे । रास्ते में वे अपने शिष्यों को अच्छी संगत में रहने के विषय के बारे में बता रहे थे । लेकिन शिष्य उस बात को समझ ही नहीं पा रहे थे। तभी गुरु जी ने पूरे बगीचे में नजर घुमाई और उन्होंने फूलों से भरा एक गुलाब का पौधा देखा। उन्होंने पास खड़े शिष्यों में से

एक शिष्य से उस गुलाब के पौधे के नीचे से थोड़ी सी मिट्टी लाने को कहा। शिष्य उसी समय गया और गुलाब के पौधे के नीचे से मिट्टी लेकर आया। जैसे ही वह मिट्टी गुरु के हाथ में थमाने को आगे बढ़ा, गुरु जी बोले, "वत्स ये मिट्टी मैंने अपने लिए नहीं मंगवाई।" सभी शिष्य गुरु की तरफ देखने लगे। तभी गुरु जी ने फिर से बोलना शुरू किया," इस मिट्टी को सूंघ कर देखो।" गुरु का आदेश मानते हुए शिष्य ने मिट्टी को अपने नाक से लगाया और बोला " गुरु जी इसमें से तो गुलाब की बड़ी अच्छी खुशबू आ रही है। "तब संत जी बोले–" बच्चो ! जानते हो इस मिट्टी में इतनी सुन्दर खुशबु क्यों आ रही है ? इस लिए क्योंकि इस मिट्टी पर गुलाब के फूल, टूट-टूटकर गिरते रहते हैं। धीरे-धीरे ये इसी मिट्टी के साथ घुल-मिल जाते हैं। तभी मिट्टी में भी गुलाब की खुशबु आने लगती है। ऐसा ही हमारे जीवन में होता है जब हम अच्छे लोगों के साथ रहते हैं तो उनकी अच्छी बातें हमारे अन्दर आने लगती हैं। जैसे गुलाब की पंखुड़ियों की पास रहने के कारण इस मिट्टी में से गुलाब की खुशबु आने लगी उसी प्रकार जो व्यक्ति जैसे व्यक्ति के साथ में रहता है उसमें वैसे ही गुण-दोष आ जाते हैं।"

संगति का असर कहानी से हमें यही सीख मिलती है कि हमें हमेशा अपनी संगति अच्छे लोगों के साथ रखनी चाहिए। जिस से हम भी एक अच्छे इन्सान बन सकें।
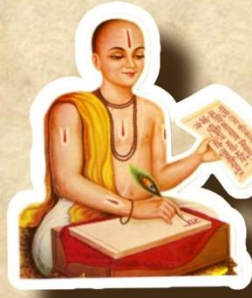
निज कबित्त केहि लागन नीका। सरस होउ अथवा अति फीका ॥

जे पर भनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं ॥

भावार्थ—रसीली हो या अत्यन्त फीकी, अपनी कविता किसे अच्छी नहीं लगती ? किन्तु जो दूसरेकी रचनाको सुनकर हर्षित होते हैं, ऐसे उत्तम पुरुष जगत में बहुत नहीं हैं।

जग बहु नर सर सरि सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥

सज्जन सकृत सिंधु सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥

भावार्थ—हे भाई! जगत में तालाबों और नदियोंके समान मनुष्य ही अधिक हैं, जो जल पाकर अपनी ही बाढ़से बढ़ते हैं (अर्थात् अपनी ही उन्नतिसे प्रसन्न होते हैं)। समुद्र-सा तो कोई एक विरला ही सज्जन होता है जो चन्द्रमाको पूर्ण देखकर (दूसरोंका उत्कर्ष देखकर) उमड़ पड़ता है।

प्रासंगिकता

हम सब अपने जीवन को खुशियों से भरना चाहते हैं। सभी हर घड़ी आनंद में ही तो जीना चाहते हैं। जीना भी चाहिए, इसलिए लोग हर पल आनंद की खोज में लगे रहते हैं। आनंद प्राप्ति के लिए न जाने क्या-क्या करते रहते हैं। अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं, घर को भी खूब सजाकर रखते हैं, लेकिन बात नहीं बनती। हम आनंद पाने के लिए जितनी भाग-दौड़ करते हैं, छटपटाते हैं, आनंद उतना ही हमसे दूर भागता है। फिर कैसे प्राप्त करें आनंद? जीवन को कैसे खुशियों से भरें?

प्रेरक प्रसंग—एक आध्यात्मिक गुरु थे। एक आयोजन में उनके अनेक शिष्य आए। गुरु जी ने अपने शिष्यों के लिए एक प्रतियोगिता रखी। हर व्यक्ति को एक गुब्बारा दे दिया और उस पर अपना-अपना नाम लिखने को कहा। सारे गुब्बारे इकट्ठा कर दूसरे कमरे में रख दिए गए। फिर उन लोगों से कहा गया कि वे एक साथ उस कमरे में जाकर अपने नाम का गुब्बारा ढूंढकर लाएं। वही जीतेगा, जो दो मिनट के अंदर अपने नाम का गुब्बारा ले आएगा। प्रतियोगिता शुरू होते ही सभी लोग कमरे की ओर दौड़ पड़े। एक साथ जाने से लोग एक-दूसरे पर ही गिरने लगे। कमरे में अव्यवस्था फैल गई। गुब्बारे फूट गए। फलत: कोई भी व्यक्ति दो मिनट के भीतर अपने नाम का गुब्बारा नहीं ला सका।अबकी बार आयोजकों ने फिर हर व्यक्ति के नाम लिखे गुब्बारे तैयार किए और लोगों से कहा, वे एक-एक करके कमरे में जाएं और कोई भी एक गुब्बारा उठाकर ले आएं और उस पर जिस व्यक्ति का नाम लिखा हो, उसे दे दें। तेजी से काम करने पर दो मिनटों में हर व्यक्ति के हाथ में उसका नाम लिखा गुब्बारा था। अब गुरु जी ने समझाते हुए कहा, 'जीवन में भी आप लोग पागलों की तरह खुशियां तलाश रहे हैं, लेकिन वह इस तरह नहीं मिलती। जब आप दूसरों को खुशियां देने लगेंगे, तो आपको अपनी खुशी मिल जाएगी।'

संक्षेप में असली खुशी कुछ पाने से नहीं, बल्कि देने से मिलती है।
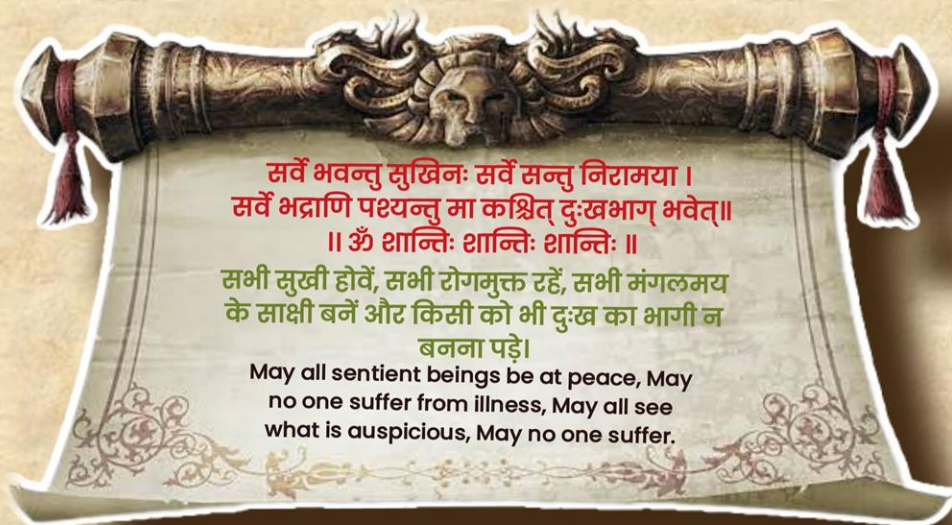
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

भावार्थ— जिनके मन में दूसरे का हित बसता है (समाया रहता है), उनके लिये जगत्‌में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है।

दो०-फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।

पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ॥

भावार्थ— फलोंके बोझ से झुककर सारे वृक्ष पृथ्वी के पास आ लगे हैं। जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर [विनय से] झुक जाते हैं।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जग जाना॥

भावार्थ— वेद, शास्त्र और पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत् जानता है कि सेवा धर्म बड़ा कठिन है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

भावार्थ—कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गङ्गाजी की तरह सबका हित करने वाली हो

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा॥

पर हित लागि तजइ जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही॥

भावार्थ—तथापि मैं तुम्हारा काम तो करूँगा, क्योंकि वेद दूसरे के उपकारको परम धर्म कहते हैं। जो दूसरे के हित के लिए अपना शरीर त्याग देता है, संत सदा उसकी बड़ाई करते हैं।

प्रासंगिकता

इस स्वार्थी दुनिया में सब अपना ही स्वार्थ देखते हैं। आज के ज़माने में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो कोई कार्य निःस्वार्थ भावना से करता हो। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हर कोई अपना नाम बनाने की होड़ में लगा हुआ है। इसी कारण उन्हें मानसिक शांति और धैर्य प्राप्त नहीं होता। जब हम स्वार्थ त्याग कर दूसरों का भला करते हैं, तब हमें अंदरूनी शांति प्राप्त होती है और हर जगह सफलता प्राप्त होती है। आइये भगवन कृष्ण की लीला और इस प्रेरक प्रसंग द्वारा ये जानते हैं कि परोपकार की भावना रखने से किस प्रकार अपना भी भला होता है–

प्रेरक प्रसंग–1 एक बार श्री कृष्ण और अर्जुन भ्रमण पर निकले तो उन्होंने मार्ग में एक निर्धन ब्राह्मण को भिक्षा माँगते देखा। अर्जुन को उस पर दया आ गयी और उन्होंने उस ब्राह्मण को स्वर्ण मुद्राओं से भरी एक पोटली दे दी। जिसे पाकर ब्राह्मण प्रसन्नता पूर्वक अपने सुखद भविष्य के सुन्दर स्वप्न देखता हुआ घर लौट चला। किन्तु उसका दुर्भाग्य उसके साथ चल रहा था, राह में एक लुटेरे ने उससे वो पोटली छीन ली। ब्राह्मण दुखी होकर फिर से भिक्षावृत्ति में लग गया। अगले दिन फिर अर्जुन की दृष्टि जब उस ब्राह्मण पर पड़ी तो उन्होंने उससे इसका कारण पूछा। ब्राह्मण ने सारा विवरण अर्जुन को बता दिया, ब्राह्मण की

व्यथा सुनकर अर्जुन को फिर से उस पर दया आ गयी अर्जुन ने विचार किया और इस बार उन्होंने ब्राह्मण को मूल्यवान एक माणिक दिया। ब्राह्मण उसे लेकर घर पहुंचा उसके घर में एक पुराना घड़ा था जो बहुत समय से प्रयोग नहीं किया गया था, ब्राह्मण ने चोरी होने के भय से माणिक उस घड़े में छुपा दिया। किन्तु उसका दुर्भाग्य, दिन भर का थका मांदा होने के कारण उसे नींद आ गयी…

इस बीच ब्राह्मण की स्त्री नदी में जल लेने चली गयी किन्तु मार्ग में ही उसका घड़ा टूट गया, उसने सोचा, घर में जो पुराना घड़ा पड़ा है उसे ले आती हूँ, ऐसा विचार कर वह घर लौटी और उस पुराने घड़े को ले कर चली गई और जैसे ही उसने घड़े को नदी में डुबोया वह माणिक भी जल की धारा के साथ बह गया। ब्राह्मण को जब यह बात पता चली तो अपने भाग्य को कोसता हुआ वह फिर भिक्षावृत्ति में लग गया।

अर्जुन और श्री कृष्ण ने जब फिर उसे इस दरिद्र अवस्था में देखा तो जाकर उसका कारण पूछा। सारा वृतांत सुनकर अर्जुन को बड़ी हताशा हुई और मन ही मन सोचने लगे इस अभागे ब्राह्मण के जीवन में कभी सुख नहीं आ सकता। अब यहाँ से प्रभु की लीला प्रारंभ हुई। उन्होंने उस ब्राह्मण को दो पैसे दान में दिए। तब अर्जुन ने उनसे पुछा "प्रभु मेरी दी मुद्राएँ और माणिक भी इस अभागे की दरिद्रता नहीं मिटा सके तो इन दो पैसो से इसका क्या होगा" ?

यह सुनकर प्रभु बस मुस्कुरा भर दिए और अर्जुन से उस ब्राह्मण के पीछे जाने को कहा। रास्ते में ब्राह्मण सोचता हुआ जा रहा था कि:-"दो पैसो से तो एक व्यक्ति के लिए भी भोजन नहीं आएगा प्रभु ने उसे इतना तुच्छ दान क्यों दिया ? प्रभु की यह कैसी लीला है "? ऐसा विचार करता हुआ वह चला जा रहा था उसकी दृष्टि एक मछुवारे पर पड़ी, उसने देखा कि मछुवारे के जाल में एक मछली फँसी है, और वह छूटने के लिए तड़प रही है।
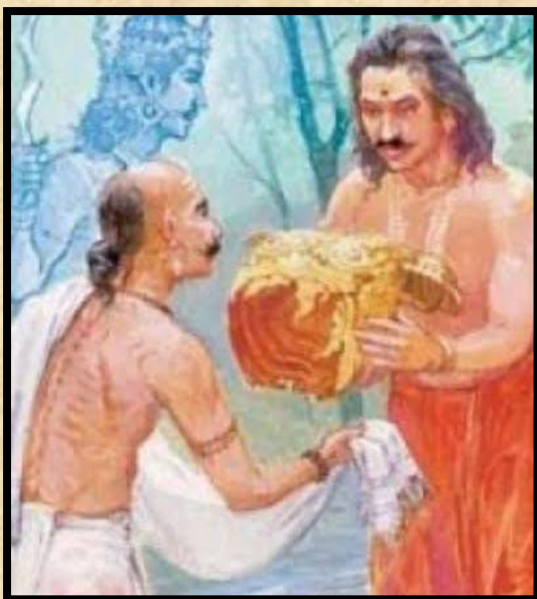
ब्राह्मण को उस मछली पर दया आ गयी। उसने सोचा "इन दो पैसो से पेट की आग तो बुझेगी नहीं। क्यों न इस मछली के प्राण ही बचा लिए जाये"। यह सोचकर उसने दो पैसो में उस मछली का सौदा कर लिया और मछली को अपने कमंडल में डाल लिया। कमंडल में जल भरा और मछली को नदी में छोड़ने चल पड़ा। तभी मछली के मुख से कुछ निकला। उस निर्धन ब्राह्मण ने देखा, वह वही माणिक था जो उसने घड़े में छिपाया था। ब्राह्मण प्रसन्नता के मारे चिल्लाने लगा "मिल गया, मिल गया "..!!! तभी भाग्यवश वह लुटेरा भी वहाँ से गुजर रहा था जिसने ब्राह्मण की मुद्राएँ लूटी थी। उसने ब्राह्मण को चिल्लाते हुए सुना " मिल गया मिल गया " लुटेरा भयभीत हो गया। उसने सोचा कि ब्राह्मण उसे पहचान गया है और इसीलिए चिल्ला रहा है, अब जाकर राज दरबार में उसकी शिकायत करेगा। इससे डरकर वह ब्राह्मण से रोते हुए क्षमा मांगने लगा। और उससे लूटी हुई सारी मुद्राएँ भी उसे वापस कर दी। यह देख अर्जुन प्रभु के आगे नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सके।

अर्जुन बोले, प्रभु यह कैसी लीला है? जो कार्य थैली भर स्वर्ण मुद्राएँ और मूल्यवान माणिक नहीं कर सका वह आपके दो पैसो ने कर दिखाया।

श्री कृष्णा ने कहा "अर्जुन यह अपनी सोच का अंतर है, जब तुमने उस निर्धन को थैली भर स्वर्ण मुद्राएँ और मूल्यवान माणिक दिया तब उसने मात्र अपने सुख के विषय में सोचा। किन्तु जब मैंने उसको दो पैसे दिए। तब उसने दूसरे के दुःख के विषय में सोचा। इसलिए हे अर्जुन-सत्य तो यह है कि, जब आप दूसरों के दुःख के विषय में सोचते है, जब आपके मन में परोपकार की भावना होती है और आप दूसरे का भला कर रहे होते हैं, तब आप ईश्वर का कार्य कर रहे होते हैं, और तब ईश्वर आपके साथ होते हैं। "इसी तरह जिंदगी में भी जो इंसान दूसरों के बारे में अच्छा सोचता है उसके साथ हमेशा ही अच्छा होता है। ऐसा करने से दूसरों को तो ख़ुशी मिलती है साथ ही खुद को भी जिंदगी जीने कई प्रेरणा मिलती है और मानसिक आनंद की प्राप्ति होती है। आशा करते हैं कृष्णा जी का ये उपदेश जिंदगी में आपको आगे बढ़ने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

प्रेरक प्रसंग–2 महर्षि दधीचि स्वयं से अधिक परहित को सर्वोपरि समझा जिसके लिए प्राणों तक का न्योछावर कर देना भी उन्होंने कम समझे। यास्क के मतानुसार दधीचि की माता 'चित्ति' और पिता 'अथर्वा' थे, इसीलिए इनका नाम 'दधीचि' हुआ था। किसी पुराण के अनुसार यह कर्दम ऋषि की कन्या 'शांति' के गर्भ से उत्पन्न अथर्वा के पुत्र थे। दधीचि प्राचीन काल के परम तपस्वी और ख्यातिप्राप्त महर्षि थे। उनकी पत्नी का नाम 'गभस्तिनी' था। महर्षि दधीचि वेद शास्त्रों आदि के पूर्ण ज्ञाता और स्वभाव के बड़े ही दयालु थे। अहंकार तो उन्हें छू तक नहीं पाया था। वे सदा दूसरों का हित करना अपना परम धर्म समझते थे। उनके व्यवहार से उस वन के पशु-पक्षी तक संतुष्ट थे, जहाँ वे रहते थे। गंगा के तट पर ही उनका आश्रम था। जो भी अतिथि महर्षि दधीचि के आश्रम पर आता, स्वयं महर्षि तथा उनकी पत्नी अतिथि की पूर्ण श्रद्धा भाव से सेवा करते थे। यूँ तो 'भारतीय इतिहास' में कई दानी हुए हैं, किंतु मानव कल्याण के लिए अपनी अस्थियों का दान करने वाले मात्र महर्षि दधीचि ही थे। देवताओं के मुख से यह जानकर की मात्र दधीचि की अस्थियों से निर्मित वज्र द्वारा ही असुरों का संहार किया जा सकता है, महर्षि दधीचि ने अपना शरीर त्याग कर अस्थियों का दान कर दिया।

भर्तहरि लिखित ग्रंथ नीतिशतकम् में वर्णित श्लोक—

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥

सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥

भावार्थ— ये सारे विघ्न उसको नहीं व्यापते (बाधा नहीं देते) जिसे श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर कृपा की दृष्टि से | देखते हैं। वही आदरपूर्वक इस सरोव रमें स्नान करता है और महान्‌ भयानक त्रिताप से (आध्यात्मिक, 'आधिदैविक, आधिभौतिक तापों से) नहीं जलता।

प्रासंगिकता

सांख्याशास्त्र के अनुसार दुःख तीन प्रकार के माने गए हैं— आध्यात्मिक, आधिभौतिक और अघिदैविक। अध्यात्मिक दुःख के अंतर्गत रोग, व्याधि आदि शारीरिक दुःख और क्रोध, लोभ आदि मानसिक दुःख हैं। आधिभौतिक दुःख वह है जो स्थावर, जंगम (पशु,पक्षी साँप, मच्छड़ आदि) भूतों के द्वारा पहुँचता है। आधिदेविक जो देवताओं अर्थात्‌ प्राकृतिक शक्तियों के द्वार पहुँचता है, जेसे,—आँधी, वर्षा, बज्रपात, शीत, ताप इत्यादि।

दुःख तीन प्रकार के हैं-आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक उनमें आध्यात्मिक दुःख दो प्रकार के हैं- शारीरिक (शरीर-सम्बन्धी) और मानसिक (मनःसम्बन्धी)। इनमें बात, पित्त और कफ नामक (शरीर के अन्दर रहनेवाले) तीन दोषों के व्यतिक्रम से होनेवाला ज्वर, अतिसार आदि रोग शारीरिक दुःख हैं। जिसे चाहते हैं वह न मिले और जो नहीं चाहिये वह मिल जाय, यह मानस दुःख है। आधिभौतिक का अर्थ है चार प्रकार के भूत (प्राणिसमूह) से होनेवाला अर्थात्‌ मनुष्य, पशु (गाय, घोड़ा आदि), मृग (सिंहादि), पक्षी, सरीसृप (सर्पादि), मशक (मच्छर) जुएँ, खटमल, मछली, ग्राह तथा स्थावर (लकड़ी पत्थर आदि) जरायुज', अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्जों के द्वारा जो उत्पन्न होता है। आधिदैविक

देव अर्थात् देवता सम्बन्धी अथवा दिव= आकाश से जो होता है वह 'देव' कहलाता है. (उसको) लेकर जो (दुःख) उत्पन्न होता है वह आधिदैविक है। जैसे- शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, वज्र, उल्कापात आदि ।

मनुष्य पशु और मृग जरायुज हैं- ये जरायु (जर एक प्रकार की जो कि गर्भ से ही देह में लिपटी रहती है) से उत्पन्न होते हैं।
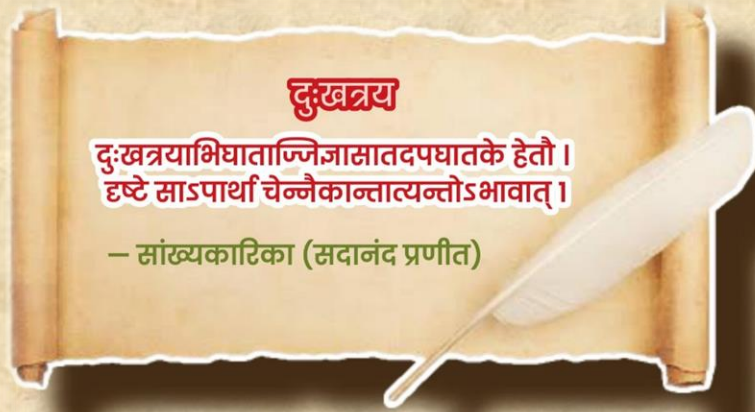
पक्षी, सरीसृप, (मछली आदि उत्पन्न होनेवाले है), अण्डज(अंडे से उत्पन्न होने वाले), स्वेदज (पसीने से होनेवाले) तथा वृक्षादि उद्भिज्ज है। है, आधिभौतिक का भी जिन प्राणियों से दुःख उत्पन्न होने की आशंका है उनसे रक्षा के उपाय आदि करने से तथा यज्ञ, दान, जप-पाठादि से आषि- दैविक दुःखनिवृत्ति के उपाय देखे जाते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष उपायों से भी विविध दुःख-निवृत्ति देखी जाती है। इन लौकिक उपायों से ही जब वह जिज्ञासा शान्त हो सकती है तो शास्त्रज्ञानरूप अलौकिक उपाय की जिज्ञासा क्यों की जाय ? यदि ऐसा मानते हो तो ? (उत्तर-) यह ठीक नहीं, क्यों ? एकान्ता० क्योंकि एकान्ततः अवस्य और अत्यन्ततः पूर्णरूप से दृष्ट हेतु से दुःखभय की निवृत्ति नहीं होती। इसलिए ऐसे हेतुको जानने की इच्छा अवश्य करनी चाहिये जिसे दुःख दूर हो जायें और फिर उनके उत्पन्न होने की संभावना न हो ।

जीवन में दुख का कारण– जब से इंसान की उत्पति हुई हैं. तब से लेकर आज तक ऐसा को नहीं हैं जो ये कह सकता हैं की वो पूरी तरह से संतोष और संतुष्ट हैं। सभी के पास को न को दुःख होता ही हैं. अच्छा ! जीवन में दुःख का क्या कारण क्या हो सकता हैं? दुःख के कारण अनेक हो सकते हैं। प्रत्येक सजीव को जीवन जीने के लिए लेवल तीन चीजों की जरुरत पड़ती हैं. ये तीनो चीज़े – रोटी, कपड़ा, मकान। और जानवर को तो कपडा और मकान की जरुरत भी नहीं पड़ती हैं। बस इन तीन चीजो के अलावा मनुष्य जो भी सोचता हैं वो सब उसकी इच्छाए हैं. और इच्छाएं पूरी नहीं होने पर अपना आतंरिक दुःख प्रकट करता हैं।

इच्छाएँ पूरी करों, अच्छा काम करो, खूब मेहनत करो, खूब पैसा कमाओ। लेकिन सोचो उतना ही जितना हासिल कर सको। दुःख आने का एक सबसे बड़ा कारण "हम जिंदगी से जितनी आशा करते हैं , करते उससे कम है। "

तीन दुःख – तन, मन, धन से आदमी दुखी हो सकता हैं. हो सकता हैं, किसी के पास धन की कमी हो, हो सकता हैं कोई किसी बीमारी से ग्रस्त हो, या ये भी हो सकता हैं को मरने से डरता हो।

अच्छा तो मैं आपको जीवन के कुछ सत्य बताता हूँ, जिनके ऊपर तो आँख बंद करके विस्वास कर लेना चाहिए।

मिट्टी का घड़ा और मिट्टी में सत्य कौन हैं? बिलकुल! मिट्टी ही सत्य हैं। एक दिन आएगा जब मिट्टी के घड़े को टूटना हैं। और वापस मिट्टी में ही मिल जाना हैं।

ठीक उसी प्रकार, हमारा शरीर भी मिट्टी का खिलौना हैं. किसी दिन इसको भी मिट्टी में ही मिलना हैं। सत्य, तो केवल आत्मा है।

प्रेरक प्रसंग— कहानी

एक बार एक गाँव के सेठजी ने अपने घर पर विशाल जलपान का आयोजन किया था। तो सेठजी ने अपने गाँव के दो पंडितो को आमंत्रित किया। अब इतने बड़े सेठ के घर से निमंत्रण आया हैं तो कुछ दक्षिणा तो मिलेगी ही। एक पंडित सोचता हैं कि हमको दक्षिणा में अगर 10 रूपये मिल जाये तो, तो हमारा काम हो जायेगा। दूसरा पंडित सोचता हैं अगर दक्षिणा में अगर 100 रुपये मिल जाये तो कम बन जायेगा। दोनों सेठजी के घर गए और दोनों की खूब अच्छी तरह से खातिरदारी हुई। सेठजी को धन्यवाद देकर जैसे ही प्रस्थान करने वाले थे, सेठजी ने दोनों 51-51 रुपये दिये। अब पहला पंडित जिसने 10 रुपये की आस की उसको तो ज्यादा मिल गया । दूसरा पंडित जिसने 100 की आश लगायी थी, उसको तो उसकी इच्छा से कम मिले। यही तो कारण हैं जीवन में सबसे बड़े दुःख का।

एक बार की बात है, एक समय के लिए एक गांव में अत्यंत सूखा था। बारिश का कोई संकेत नहीं था और पृथ्वी तापमान के कारण शुष्क हो रही थी। इस दुःखद स्थिति में गांव के एक गरीब किसान ने अपने खेत में कुछ बीज बोने का निर्णय लिया। वह धैर्य से अपनी खेती करने लगा, खेत में पानी की कमी के बावजूद। वह रोज़ाना अपनी मेहनत जारी रखता और उम्मीद के साथ अपनी खेती को देखभाल करता था।

कुछ समय बाद, एक दिन अचानक बादल आये और गरज-चमक के साथ बरसात शुरू हो गई। उस गरीब किसान के खेत में बरसात की बूंदें गिरने लगीं और पानी खेत को सन्नाटा से भरने लगा। खेत के बीजों को अपार ऊर्जा मिली और उनकी वृद्धि शुरू हो गई। थोड़ी देर में, उस गरीब किसान की खेती आमदनी के रूप में फलने लगी। उसका खेत हरे-भरे पौधों से भर गया और उसके आसपास खुशियों की बौछार हो गई।

इस कहानी से हमें यह सबक मिलता है कि जीवन में त्रिताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप) के दौर से गुजरने के बाद भी हमें आशा और धैर्य बनाए रखना चाहिए। अकारण स्थितियों में भी हमें अपने प्रयासों में जुटना चाहिए और संघर्ष करना चाहिए। आध्यात्मिक रूप से, हमें अपने आप को स्थितियों से समर्पित करना चाहिए और निरंतर आशा और संघर्ष के माध्यम से उन्नति की ओर बढ़ना चाहिए। इस तरह, हम अपने जीवन को आनंदमय और समृद्ध बना सकते हैं।

दो० – संत कहहिं असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव ।

होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव ॥

भावार्थ— हे प्रभो! संतलोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता।

गुर के बचन प्रतीति न जेही । सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥

भावार्थ— जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होती।

सो० – बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।

गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥

भावार्थ— गुरु के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? अथवा वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्री हरि की भक्ति के बिना क्या सुख मिल सकता है।

प्रासंगिकता

गुरु वह है जो ज्ञान दे। संस्कृत भाषा के इस शब्द का अर्थ शिक्षक और उस्ताद से लगाया जाता है। इस आधार पर व्यक्ति का पहला गुरु माता-पिता को माना जाता है। दूसरा गुरु शिक्षक होता है जो अक्षर ज्ञान करवाता है। उसके बाद कई प्रकार के गुरु जीवन में आते हैं जो बुनियादी शिक्षाएं देते हैं।

प्रेरक प्रसंग –1 एकलव्य की कहानी

महाभारत में एक प्रसंग आता है कि एक बार गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ जंगल में भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते – करते उनके साथ आया हुआ एक कुत्ता जंगल में रास्ता भटककर वहाँ पहुँच गया, जहाँ एक काला सा भील बालक एकलव्य धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहा था। कुत्ता एक अजनबी काले बालक को देख उस पर भौंकने लगा। अपने अभ्यास में कुत्ते के भौंकने के कारण बाधा उत्पन्न होने से एकलव्य ने कुत्ते का मुंह तीरों से भर दिया। कुत्ता तेजी से गुरु द्रोण और उनके शिष्यों के पास पहुँचा। कुत्ते की ऐसी हालत देख सभी हंसने लगे किन्तु अर्जुन यह देख रहा था कि किस तरह चतुरता से कुत्ते का केवल मुंह भरा गया हैं बिना उसे चोंट पहुचाएं। जब अर्जुन ने यह बात गुरु द्रोण को कही तो वे उस कुशल धनुर्धर से मिलने को उत्सुक हो उठे। जब एकलव्य को ढूंढते – ढूंढते यह मंडली उसकी कुटिया पर पहुंची तो गुरु द्रोण को अपनी प्रतिमा वहाँ देख आश्चर्य हुआ। एकलव्य अपने गुरु को आया देख दौड़कर उनके चरणों में गिर पड़ा। सभी को कुटिया में ले जाकर जलपान कराया। सभी यह जानने को उत्सुक थे की आखिर उसने कुत्ते का मुंह तीरों से कैसे भर दिया। तब उसने बताना शुरू किया। बहुत पहले मैं आपके पास अपनी धनुर्विद्या सिखने की तीव्र इच्छा लेकर पहुँचा था। किन्तु आपने मुझे यह कहकर टाल दिया कि तुम्हें इसकी आवश्यकता नहीं हैं। और राज परिवार के साथ तुम्हे धनुर्विद्या सिखने का अधिकार नहीं हैं।अतः में निराश होकर चला आया किन्तु मेरे मन में धनुर्विद्या सिखने की उत्कंठ इच्छा और लगन थी। अतः मैंने आपकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर सिखना आरम्भ कर दिया। मुझे ऐसा लगता था जैसे आप स्वयं आकर मेरी गलतियाँ बताते और मुझे सिखाते हो।
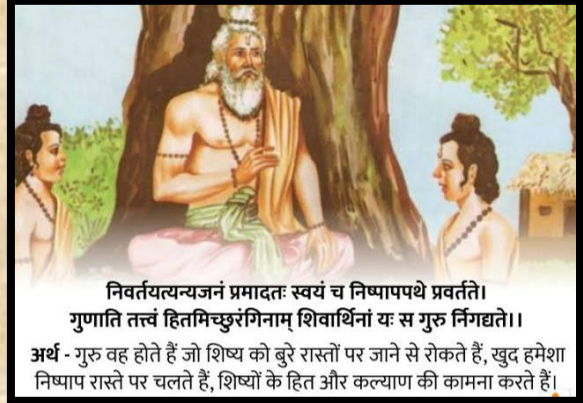
एकलव्य की गुरु द्रोण के प्रति ऐसी निष्ठा और समर्पण को देख सभी शिष्य आश्चर्य से एकटक उसके चेहरे को ताक रहे थे। साथ ही एक ओर से सभी उसकी भूरि – भूरि प्रशंसा कर रहे थे। तो दूसरी ओर उसकी धनुर्विद्या के सामने अपनी धनुर्विद्या को छोटा देख अर्जुन का दिल जल रहा था। चुपके से अर्जुन अपने गुरु से कहने लगा – “गुरुदेव आपने मुझे वचन दिया हैं कि आपके शिष्यों में मेरे समान दूसरा कोई धनुर्धर नहीं होगा” गुरु द्रोण ने इशारे से उसे समझा दिया। अपनी कहानी सुनाने के पश्चात् एकलव्य गुरु द्रोण से कहने लगा कि

"आपकी कृपा से मैं इतना श्रेष्ठ धनुर्धर बन सका हूँ। मुझे बताइए कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ" तो गुरु द्रोण ने मौका देख अपने वचन की खातिर गुरुदीक्षा का प्रश्न सामने रख दिया। और बोले – "इस ऋण से मुक्त होने के लिए अपने दाहिने हाथ का अंगूठा हमें दे दो"। एकलव्य ने बिना किसी हिचकिचाहट के अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर गुरु द्रोण के चरणों में अर्पित कर दिया। उसके इस अपूर्व त्याग और गुरु के प्रति निष्ठा के कारण आज वो इतिहास में अमर हो गया।

प्रेरक प्रसंग –2 मुझे भी गुरु बनना है

एक नवदीक्षित शिष्य ने अपने गुरु के साथ कुछ दिन व्यतीत करने के बाद एक दिन पूछा- गुरुदेव, मेरा भी मन करता है कि आपकी ही तरह मेरे भी कई शिष्य हों और सभी मुझे भी आप जैसा ही मान-सम्मान दे। गुरु ने मंद-मंद मुस्कुराते हुए कहा- कई वर्षों की लंबी साधना के पश्चात अपनी योग्यता और विद्वता के बलबूते पर तुम्हें भी एक दिन यह सब प्राप्त हो सकता है।
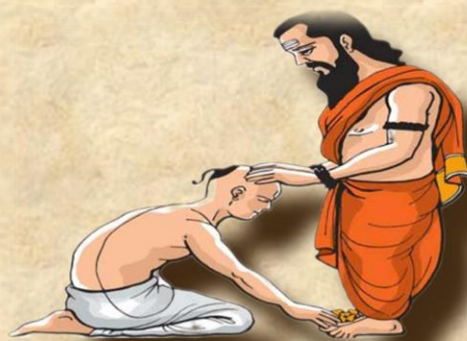
शिष्य ने कहा- इतने वर्षों बाद क्यों? मैं अभी ही अपने शिष्यों को दीक्षा क्यों नहीं दे सकता? गुरु ने अपने शिष्य को तख्त से उतरकर नीचे खड़ा होने को कहा। फिर स्वयं तख्त पर खड़े होकर कहा- जरा मुझे ऊपर वाले तख्त पर पहुंचा दो। शिष्य विचार में पड़ गया। फिर बोला- गुरुदेव! भला मैं खुद नीचे खड़ा हूं, फिर आपको ऊपर कैसे पहुंचा सकता हूं? इसके लिए तो पहले खुद मुझे ही ऊपर आना होगा। गुरु ने मुस्कुराकर कहा- ठीक इसी प्रकार यदि तुम किसी को अपना शिष्य बनाकर ऊपर उठाना चाहते हो, तो तुम्हारा उच्च स्तर पर होना भी आवश्यक है। शिष्य गुरु का आशय समझ गया। वह उनके चरणों में गिर गया।
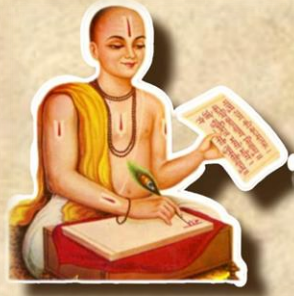
मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी ॥

माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना ही विचारे शुभ समझकर करना (मानना) चाहिए।।

दो० – मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ ।

लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ ॥

जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है; नहीं तो जगत में जन्म व्यर्थ ही है ॥

गुर पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिये।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें । चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें ॥

गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करनेसे कुमार्ग पर भी चलने से पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)।

प्रासंगिकता

व्यक्ति का विद्याध्ययन, शिक्षा-दीक्षा जब पूरी हो जाती है और वह युवावस्था को प्राप्त कर लेता है तो उसके भी कर्तव्य सेवारूप में निर्धारित हो जाते हैं। अपने कर्तव्य का निर्वाह करना और उनका पालन करना यह सेवा का प्रथम सोपान है। माता-पिता का पुत्र के प्रति, पुत्र का माता-पिता के प्रति, गुरु का शिष्य के प्रति, शिष्य का गुरु के प्रति स्वामी का सेवक के

प्रति एवं सेवक का स्वामी के प्रति जो कर्तव्य है, उसका पालन करना यह प्रथम और अनिवार्य सेवा है। माता-पिता, आचार्य, अतिथि की सेवा का निर्देश शास्त्रों ने इस रूप में स्पष्ट रूप से किया है-**'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो 'भव'** अर्थात् माता की सेवा करे, पिता की सेवा करें आचार्य गुरु की सेवा करे, आगत अतिथि की सेवा करे। कहते हैं माता की सेवा से व्यक्ति की सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। पिता की सेवा से सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं और उनके प्रसन्न होने से अलभ्य कुछ नहीं रह जाता अतिथि की सेवा साक्षात् श्रीमन्नारायणकी सेवा है।

प्रेरक प्रसंग— श्रवण कुमार की कथा

यह कहानी त्रेता युग की है। उस समय श्रवण कुमार नाम का एक बालक था। उसके माता-पिता अंधे थे और उन्होंने श्रवण को कई मुसीबतों का सामना करते हुए पाला था। श्रवण कुमार बचपन से ही अपने माता-पिता का बहुत आदर करता था। जैसे-जैसे श्रवण बड़ा होता गया, उसने घर की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली। वह रोजाना सुबह उठकर सबसे पहले अपने माता-पिता को स्नान कराने के लिए तालाब से पानी भरकर लाता था। इसके बाद वह तुरंत जंगल की ओर लकड़ियां बीनने जाता। फिर लकड़ियां लाने के बाद श्रवण चूल्हा जलाकर माता-पिता के लिए खाना बनाता था। श्रवण को इतनी मेहनत करते देख उसकी मां हमेशा उसे टोकती थी। वह कहती थी, "श्रवण बेटा तुम इतना सारा काम अकेले क्यों करते हो? खाना तुम मुझे बनाने दिया करो। मैं आसानी से बना लूंगी। इसके बदले तुम थोड़ा आराम कर लिया करो।" मां की इन बातों को सुनकर श्रवण कुमार कहता, "नहीं मां, मैं ये सारे काम आप लोगों के लिए ही तो करता हूं। भला अपने मां-बाप के लिए किए गए कामों में कैसी थकान। उल्टा मुझे तो खुशी मिलती है।"

श्रवण कुमार की इन बातों को सुनकर उसकी मां भावुक हो गई। वो रोज भगवान से प्रार्थना करती, "हे प्रभु! इतना ध्यान रखने वाला श्रवण जैसा बेटा हर माता-पिता के घर पैदा हो।" श्रवण के मां-बाप नियमित रूप से भगवान की आराधना करते थे। वह उनके लिए फूल और पूजा की अन्य सामग्री लाता। फिर खुद भी बिना देर किए माता-पिता के साथ पूजा में शामिल हो जाता था। श्रवण कुमार धीरे-धीरे बड़ा हुआ और जल्दी से घर के कार्यों को खत्म करके बाहर काम पर निकल जाता था। एक दिन श्रवण अपने माता-पिता के साथ बैठा था, तभी उन्होंने श्रवण से कहा, "बेटा तुमने हमारी हर ख्वाहिश पूरा की है। अब हमारी केवल एक ही इच्छा है, जिसे हम पूरी करना चाहते हैं।

यह सुन श्रवण ने उनसे पूछा, “ऐसी कौन-सी इच्छा बाकी है, जिसे आप पूरा करना चाहते हैं। आप केवल आदेश दें। मैं आपकी हर ख्वाहिश को पूरा करूंगा।” इस पर श्रवण के पिता ने कहा, “बेटा! अब हम बूढ़े हो चुके हैं और हम चाहते हैं कि मरने से पहले तीर्थ यात्रा के लिए जाएं। भगवान के शरण में जाकर हमें सुकून की प्राप्ति होगी।” अपने मां-बाप की बात सुनकर श्रवण कुमार सोचने लग गया कि वह उनकी इस इच्छा को कैसे पूरा करेगा। उस समय बस और ट्रेन की सुविधा नहीं थी। साथ ही उसके माता-पिता देख भी नहीं सकते थे। ऐसे में उन्हें तीर्थ यात्रा कराना भला कैसे संभव हो पाता। तभी श्रवण कुमार को एक तरकीब सूझी। वह तुरंत बाहर गया और वहां से दो बड़ी टोकरी लेकर आया। उसने उन दोनों टोकरियों को एक मजबूत डंडे में मोटी रस्सी के सहारे लटका कर एक बड़ा-सा तराजू बना लिया।

फिर श्रवण कुमार ने उस तराजू में अपने मां-बाप को बारी-बारी से गोद में उठाकर बैठा दिया। उसके बाद तराजू को अपने कंधों पर लेकर उन्हें तीर्थ यात्रा पर लेकर निकल पड़ा। वह लगातार कुछ दिनों तक अपने माता-पिता को एक के बाद एक सभी पवित्र स्थलों पर घुमाने लगा। इस दौरान श्रवण कुमार ने अपने माता-पिता को प्रयाग से लेकर काशी तक के दर्शन कराए। माता-पिता को घुमाते समय श्रवण कुमार उन्हें उन जगहों के बारे में भी बताते चलता था, क्योंकि वह आंखों से उस दृश्य को नहीं देख सकते थे। अपनी बेटे की मेहनत को देख उसके माता-पिता बहुत खुश थे। उन्होंने एक दिन श्रवण से कहा, “बेटा, हम देख नहीं सकते, लेकिन कभी भी हमें इस बात का दुख नहीं हुआ। तुम हमारे लिए हमारी आंखें हो। तुमने हमें जिस तरह सारे पवित्र स्थानों की कथा सुनाकर उनके दर्शन कराए हैं, ऐसा लगता है जैसे कि हमने सच में प्रभु के दर्शन अपनी आंखों से किया हो।” अपनी माता-पिता की बातें सुनकर श्रवण ने कहा, “आप लोग ऐसी बातें न करें। बच्चों के लिए माता-पिता कभी भी बोझ नहीं होते। यह तो बच्चों का धर्म होता है।” एक दिन श्रवण कुमार आराम करने के लिए अयोध्या के पास अपने माता-पिता के साथ रुका। तभी उसकी मां ने पानी पीने की इच्छा जताई। श्रवण को पास में ही एक नदी दिखाई दी। उसने अपने माता-पिता से कहा, “आप दोनों यहां आराम करें, मैं आप लोगों के लिए अभी पानी लेकर आता हूं।”

नदी के पास पहुंचकर श्रवण कुमार कमंडल में पानी भरने लगा। उसी जंगल में अयोध्या के राजा दशरथ भी शिकार के लिए पहुंचे थे। पानी में हलचल की आवाज सुनकर उन्हें लगा कि कोई जानवर पानी पीने आया है। उन्होंने बिना देखे केवल ध्वनि सुनकर ही अपना तीर चला दिया। दुर्भाग्य से वह सीधे श्रवण कुमार को लग गया। तीर लगते ही वह चीख पड़ा। इसके बाद राजा दशरथ जब अपने शिकार को देखने पहुंचे, तो वहां श्रवण था। वो तुरंत श्रवण कुमार के नजदीक पहुंचे और कहा, “मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई। मुझे माफ कर दीजिए। मुझे बिल्कुल नहीं पता था कि यहां कोई मानव होगा। मैं इस गलती का पश्चाताप करने के लिए क्या करूं कि तुम मुझे माफ कर दो।” थोड़ी ही दूर जंगल में मेरे माता-पिता बैठे हैं। उन्हें काफी प्यास

लगी है। आप उन तक यह पानी पहुंचा दीजिए और मेरे बारे में उन्हें कुछ भी न बताएं।" इतना कहते-कहते श्रवण कुमार की सांसें रुक गई। श्रवण कुमार की मौत से राजा दशरथ सुन्न पड़ गए। किसी तरह वो श्रवण कुमार के बताए अनुसार जल लेकर उसके माता-पिता के पास पहुंचे। श्रवण के माता-पिता अपने बेटे की आहट को बखूबी पहचानते थे। जब राजा दशरथ उनके करीब पहुंचे तो उन्होंने आश्चर्य से पूछा, "तुम कौन हो और हमारे श्रवण को क्या हुआ? वह क्यों नहीं आया?" राजा दशरथ उनके सवालों का जवाब नहीं दे पाए। उन्होंने चुपचाप पानी उनकी तरफ बढ़ा दिया। तभी श्रवण की मां ने चिंतित स्वर में जोर से कहा, "तुम कौन हो और मेरा बेटा कहां है, ये बताते क्यों नहीं हो?' श्रवण की मां की चिंता देखकर राजा दशरथ ने कहा, "मां मुझे माफ कर दीजिए। शिकार करने के लिए मैंने जो तीर चलाया था, वो सीधे आपके बेटे श्रवण को जा लगा। उसने मुझे आप लोगों के बारे में बताया, इसलिए मैं यहां पानी लेकर चला आया।" इतना कहकर राजा दशरथ चुप हो गए। राजा दशरथ की बात सुनकर श्रवण की मां जोर-जोर से रोने लगी। उन दोनों ने अपने बेटे की मौत के गम में राजा दशरथ के लाए हुए पानी को हाथ तक नहीं लगाया। श्रवण के पिता ने तभी राजा दशरथ को पुत्र वियोग का श्राप दे दिया। कुछ ही देर बाद श्रवण के माता-पिता ने अपने प्राण त्याग दिए। बताया जाता है कि श्रवण कुमार के पिता के श्राप के परिणामस्वरूप ही राजा दशरथ को अपने पुत्र राम से दूर रहने पड़ा था। राजा दशरथ के इस श्राप को पूरा करने के लिए ही भगवान राम को 14 वर्षों का वनवास हुआ, जिसका माध्यम दशरथ की पत्नी कैकेयी बनीं। श्रवण के पिता की ही तरह राजा दशरथ भी अपने बेटे से दूरी को बर्दाश्त नहीं कर पाए और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए।
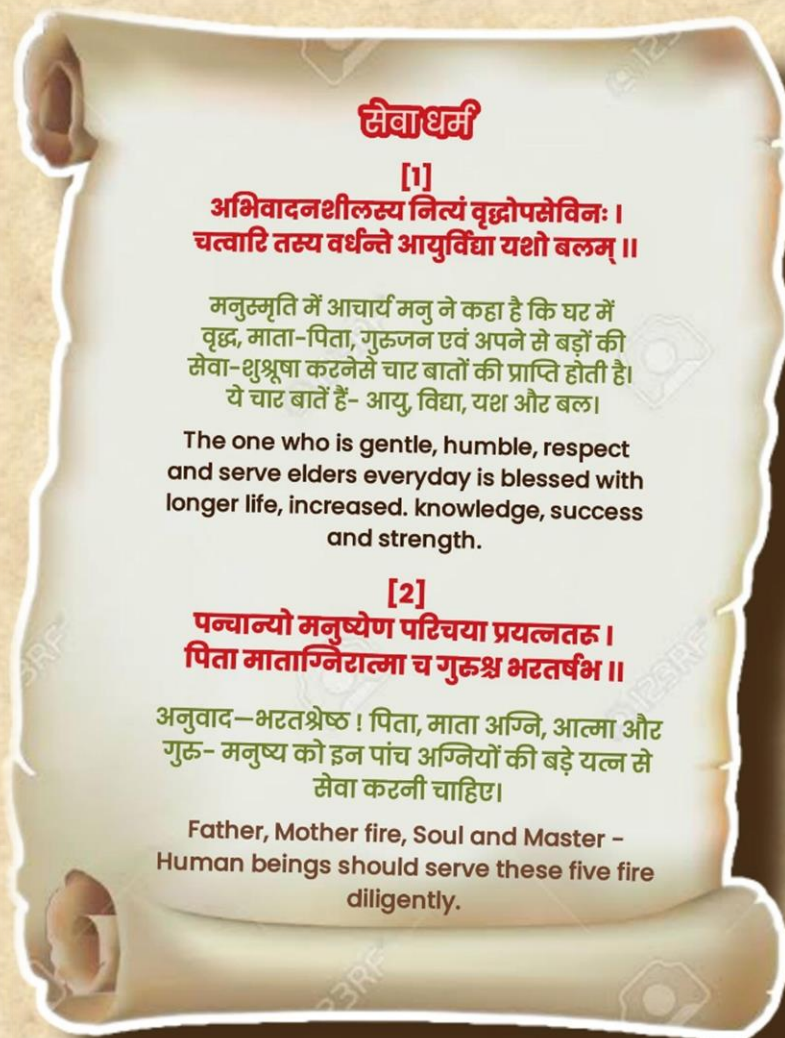
सेवा धर्म

[1]
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

मनुस्मृति में आचार्य मनु ने कहा है कि घर में वृद्ध, माता-पिता, गुरूजन एवं अपने से बड़ों की सेवा-शुश्रूषा करनेसे चार बातों की प्राप्ति होती है। ये चार बातें हैं- आयु, विद्या, यश और बल।

The one who is gentle, humble, respect and serve elders everyday is blessed with longer life, increased. knowledge, success and strength.

[2]
पन्चान्यो मनुष्येण परिचया प्रयत्नतरु ।
पिता माताग्निरात्मा च गुरूश्च भरतर्षभ ॥

अनुवाद—भरतश्रेष्ठ ! पिता, माता अग्नि, आत्मा और गुरू- मनुष्य को इन पांच अग्नियों की बड़े यत्न से सेवा करनी चाहिए।

Father, Mother fire, Soul and Master - Human beings should serve these five fire diligently.

कहानी से सीख– हर बच्चे को अपने माता-पिता की सेवा श्रवण कुमार की तरह ही निस्वार्थ भाव से करनी चाहिए। यही उनका सबसे बड़ा कर्तव्य है।

	सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥ तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥	

भावार्थ— हे माता ! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है जो पिता-माता के वचनों का अनुरागी (पालन करनेवाला) है। [आज्ञापालन के द्वारा] माता-पिता को सन्तुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी ! सारे संसार में दुर्लभ है।

	धन्य जनमु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥ चारि पदारथ करतल ताकें । प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ॥	

भावार्थ— इस पृथ्वीतल पर उसका जन्म धन्य है जिसके चरित्र सुनकर पिता को परम आनन्द हो। जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतलगत (मुट्ठी में) रहते हैं।

	एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥ कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥	

भावार्थ— एक पिता के बहुत से पुत्र पृथक्-पृथक् गुण, स्वभाव और आचरण वाले होते हैं। कोई पण्डित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी,

	कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सम होई ॥ **कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ॥**	

भावार्थ— कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। पिता का प्रेम इन सभीपर समान होता है। परन्तु इनमें से यदि कोई मन, वचन और कर्म से पिता का ही भक्त होता है, स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता,

	सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥ **एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते ॥**	

भावार्थ— वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्रिय होता है, यद्यपि (चाहे) वह सब प्रकार से अज्ञान (मूर्ख) ही हो। इसी प्रकार तिर्यक् (पशु-पक्षी), देव, मनुष्य और असुरों समेत जितने भी चेतन और जड जीव हैं।

प्रासंगिकता

हम सभी चाहते है, कि हमें पुत्र प्राप्त हो और उसके अन्दर सभी अच्छे व संस्कारी गुणों का विकास हो। वह माता-पिता की सेवा करे और आज्ञाकारी एवं चरित्रवान बने। तो इसके लिए हमारे शास्त्रों (श्रीमद्भागवत पुराण) में देवर्षि नारद चित्रकेतु को जो उपदेश देते हैं। वह इस प्रकार हैं। नारदजी बोले राजन पुत्र चार प्रकार के होते हैं– ऋणानुबन्ध पुत्र, 2- शत्रु पुत्र (Enemy son) 3- उदासीन पुत्र (Nostalgic son), 4- सेवक पुत्र (Servant son), ये चारों पुत्र हमारे कर्म के अनुसार हमें प्राप्त होते है। आप अपने पुत्र के बारे में जान सकते हैं,कि आपका पुत्र किस प्रकार(Category)का है। वह किस राह पर जायेगा, कितना विद्वान होगा,आचरण कैसा रहेगा आदी। चलिए इन चारों पुत्रों के बारे में विस्तृत से जानते है।

1- **ऋणानुबंध पुत्र**— ऋणानुबंध का अर्थ है कि जिससे आपका पिछले जन्म का ऋण(कर्जा) बंधा हो, या उससे आपका कुछ सम्बन्ध हो। हमारे पूर्व जन्मों का कर्ज हमें इस जनम में भुगतना पढता है। हम उस व्यक्ति का कर्जा उस जन्म में नहीं चुका पाते है, इसलिए हमें इस जन्म में उसकी सेवा करके उसका कर्जा उतारना होता है यानी वह आपका पुत्र नहीं बल्कि आप उसके कर्जदार हो। और यह भी सत्य है कि जब तक आपने उस पुत्र या पुत्री का कर्जा न चुकाया तब तक वह आपके धन को बर्बाद करेगा या खूब धन खर्चा करायेगा चाहे माध्यम कुछ भी हो। इसीलिए यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि आप अपने बच्चों की सेवा कर रहे हो बल्कि आप तो अपना कर्जा उतारने पर लगे हो।

2- **शत्रु पुत्र** — किसी व्यक्ति को शत्रु पुत्र प्राप्त हो जाता है। शत्रु पुत्र का अर्थ है – ऐसा पुत्र जिसे हमने जाने अनजाने में पूर्व जन्म में कोई दारूण दुख (असहनीय दुख) पहुँचाया हो, और वह बदला लेने के लिए पुत्र बनकर आपके जीवन में आया है। कर्मों की गती कभी नहीं थमती है उसकी कुछ दमित इच्छा या बदला जो उस जन्म में नहीं ले पाया हो। इसीलिए वह पुत्र बनकर आया है और अपने लक्ष्य में कामयाब ही होगा, यानी वह पुत्र आपसे बदला लेकर ही रहेगा, चाहे माध्यम कोई भी हो इसीलिए अगर आपका पुत्र आपकी बात नहीं सुन रहा है, या आपके आचरण के विरुद्ध चल रहा है तो समझो वह आपसे बला ले रहा है।

3- **उदासीन पुत्र**— उदासीन पुत्र का अर्थ है- माता-पिता के प्रति उदासीनता दिखाना, या उसका होना न होना। आप ऐसे पुत्र से कुछ आशाएँ नहीं पाल सकते ,आपकी सभी उम्मीदे धरी की धरी रह जाएगी। और यह आपको कोई नुकसान भी नहीं देते है।ऐसे पुत्र न सुख देते है न दुख । और ऐसे पुत्र तब तक साथ रहते है जब तक वह अपने कदमों पर खडा न हो जाए,उसके बाद वह आपको पूछता भी नहीं। इसीलिए उदासीन पुत्र का होना न होना बराबर है।

4- **सेवक पुत्र**— सभी प्रकार के पुत्रों में यह पुत्र सबसे अच्छा माना गया है। जो पुत्र माता-पिता कि सेवा करता है, माता-पिता का ध्यान रखते हैं, उन्हें किसी प्रकार कि कोई कमी नहीं होने देते,आपने पिछले जन्म में निस्वार्थ भाव से सेवा की हो और उसका फल आपको इस जन्म में मिल रहा है। शाब्दिक अर्थ है कि आपके पिछले अच्छे कर्मों का अच्छा फल आपको प्राप्त हो रहा है। आपने जो बोया था उसे आप इस जन्म में प्राप्त कर रहे है। और ऐसा पुत्र आपका कर्जा नहीं बल्कि वह पुत्र अपना कर्जा उताने आया है। ऐसे पुत्र सेवा पुत्र अर्थात धर्म पुत्र कहलाते हैं।
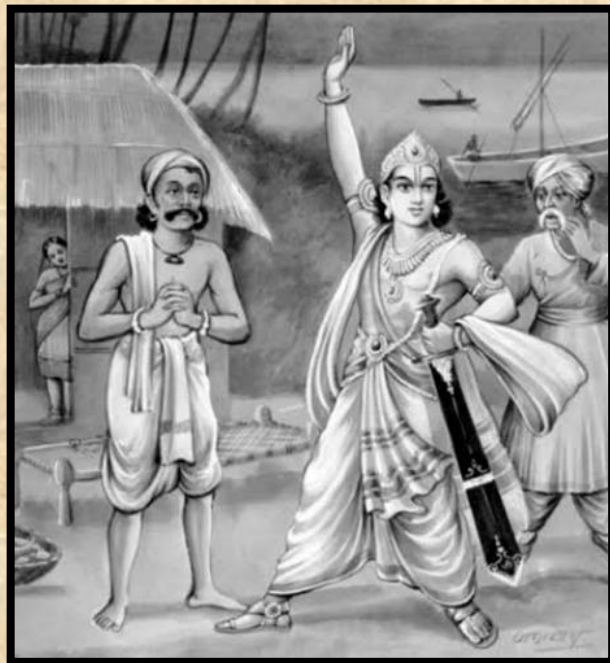
प्रेरक प्रसंग—पितृ भक्ति भीष्म कहानी

पितृ भक्ति का एक विलक्षण उदाहरण महाभारत में देवव्रत के पात्र के रूप में मिलता है। यही देवव्रत आगे चलकर भीष्म कहलाए। हस्तिनापुर नरेश शांतनु का पराक्रमी एवं विद्वान पुत्र देवव्रत उनका स्वाभाविक उत्तराधिकारी था, लेकिन एक दिन शांतनु की भेंट निषाद कन्या सत्यवती से हुई और वे उस पर मोहित हो गए। उन्होंने सत्यवती के पिता से मिलकर उसका हाथ मांगा। पिता ने शर्त रखी कि मेरी पुत्री से होने वाले पुत्र को राजसिंहासन का उत्तराधिकारी बनाएं, तो ही मैं इस विवाह की अनुमति दे सकता हूं। शांतनु देवव्रत के साथ ऐसा अन्याय नहीं कर सकते थे। वे भारी हृदय से लौट आए लेकिन सत्यवती के वियोग में व्याकुल रहने लगे। उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। जब देवव्रत को पिता के दुख का कारण पता चला, तो वह सत्यवती के पिता से मिलने जा पहुंचा और उन्हें आश्वस्त किया कि शांतनु के बाद सत्यवती का पुत्र ही सम्राट बनेगा।

निषाद ने कहा कि आप तो अपना दावा त्याग रहे हैं लेकिन भविष्य में आपकी संतानें सत्यवती की संतान के लिए परेशानी खड़ी नहीं करेंगी, इसका क्या भरोसा! तब देवव्रत ने उन्हें आश्वस्त किया कि ऐसी स्थिति उत्पन्न ही नहीं होगी और उसने वहीं प्रतिज्ञा की कि वह आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करेगा। इस पर निषाद सत्यवती का हाथ शांतनु को देने के लिए राजी हो गए। जब शांतनु को अपने पुत्र की प्रतिज्ञा का पता चला, तो उन्होंने उसे इच्छा मृत्यु का वरदान दिया और कहा कि अपनी प्रतिज्ञा के कारण अब तुम भीष्म के नाम से जाने जाओगे।

ऐसे कई उदाहरण, पिता-पुत्र के ऐसे ही अनेक किस्सों से हमारी पौराणिक कथाएं समृद्ध हैं, जो रिश्ते के विविध आयामों में पिता का महत्व बयां करते हैं।
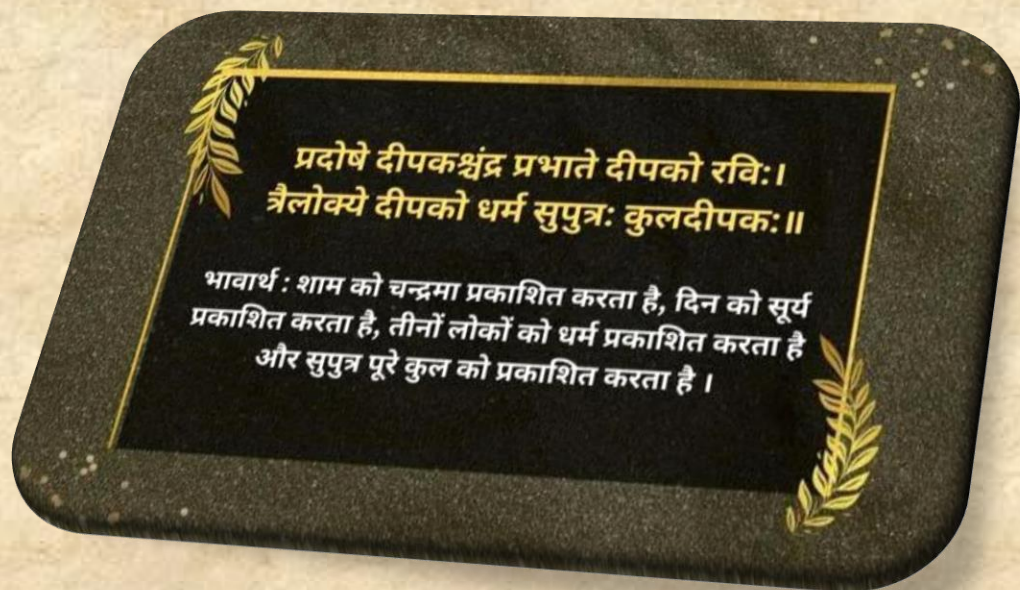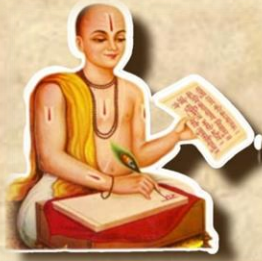
दो०- सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।

तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥

भावार्थ— सेवक हाथ, पैर और नेत्रोंके समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं।

दो० – मुखिया मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।

पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥

भावार्थ— तुलसीदासजी कहते हैं- [श्रीरामजीने कहा-] मुखिया मुख के समान होना चाहिये, जो खाने- पीने को तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।

जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

भावार्थ—जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (सत्संग) नहीं किया, वे ही राजा राजमदरूपी मदिरा का आचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण ! सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है।

दो० – सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।

श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥

पवित्र, सुशील और सुन्दर बुद्धिवाला सेवक, बता, किसको प्यारा नहीं लगता? वेद और ऐसी ही नीति कहते हैं।

प्रासंगिकता

स्वामी अथवा राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा के प्रति वह भक्तिभाव रखे और प्रजा के कल्याण हेतु कार्य करे और वह हितकारी गुरु, मंत्री या सेवक के उपदेशों को जरूर सुने। यही सेवक के लिए है की वह स्वामी के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहे।

प्रेरक प्रसंग–1 रामायण में कई ऐसे सूत्र बताए गए हैं, जिन्हें अपनाने से हमारी कई समस्याएं खत्म हो सकती हैं। स्वामी और सेवक का रिश्ता कैसा होना चाहिए, ये हम श्रीराम और हनुमानजी से सीख सकते हैं।

रामायण में रावण ने सीता का हरण कर लिया था। श्रीराम और लक्ष्मण सीता की खोज में भटक रहे थे। उस

समय हनुमानजी से उनकी भेंट हुई। हनुमानजी ने श्रीराम और सुग्रीव की मित्रता करवाई। इसके बाद पूरी वानर सेना को सीता की खोज में भेजा गया। हनुमानजी, अंगद और जामवंत अन्य वानरों के साथ दक्षिण दिशा में समुद्र किनारे पहुंच गए। अब समुद्र पार करके लंका पहुंचकर सीता की खोज करनी थी। सबसे पहले जामवंत ने कहा कि मैं वृद्ध हो गया हूं और मैं लंका नहीं जा सकता है। इसके बाद अंगद ने भी मना कर दिया, तब हनुमानजी सीता की खोज में लंका पहुंचे। हनुमानजी ने लंका में सीता को खोजने की बहुत कोशिश की। उनकी पहली कोशिश तो नाकाम हो गई थी। उन्होंने सोचा कि अगर सीता की खोज किए बिना वापस जाऊंगा तो अनर्थ हो जाएगा। उन्होंने एक फिर राम का नाम लेकर सीता की खोज शुरू की और इस बार उन्हें सफलता मिल गई। अशोक वाटिका में सीता से भेंट की और देवी को श्रीराम का संदेश दिया। उस समय सीता ने हनुमानजी को अष्टसिद्धियां और नवनिधियां दीं, उन्हें अजर-अमर रहने का वरदान दिया। इसके बाद हनुमानजी ने लंका दहन किया और फिर वे श्रीराम के पास लौट आए। सीता का पता लगाकर जब हनुमानजी श्रीराम के पास पहुंचे तो भगवान ने उन्हें गले लगा लिया। श्रीराम ने हनुमानजी से कहा था कि तुम मुझे मेरे भाई भरत के समान प्रिय हो।

सीख – श्रीराम और हनुमानजी से हम सीख सकते हैं कि अपने स्वामी के काम को पूरा के लिए सेवक को पूरी ईमानदारी से प्रयास करना चाहिए। अगर किसी काम में सफलता नहीं मिल रही है तो फिर से कोशिश करनी चाहिए। स्वामी को भी सेवक को पूरा सम्मान देना चाहिए। सेवक की सफलता पर उसे पुरस्कृत करना चाहिए।

प्रेरक प्रसंग–2 काशी के एक संत उज्जैन पहुंचे उनकी प्रशंसा सुन उज्जैन के राजा उनका आशीर्वाद लेने आए संत ने आशीर्वाद देते हुए कहा – 'सिपाही बन जाओ ।' यह बात राजा को अच्छी नहीं लगी । दूसरे दिन राज्य

के प्रधान पंडित संत के पास पहुंचे। संत ने कहा –'अज्ञानी बन जाओ।' पंडित नाराज होकर लौट आए इसी तरह जब नगर सेठ आया तो संत ने आशीर्वाद दिया –'सेवक बन जाओ।'

संत के आशीर्वाद की चर्चा राज दरबार में हुई। सभी ने कहा कि यह संत नहीं, कोई धूर्त है। राजा ने संत को पकड़ कर लाने का आदेश दिया संत को पकड़कर दरबार में लाया गया। राजा ने कहा तुमने आशीर्वाद के बहाने सभी लोगों का अपमान किया है, इसलिए तुम्हें दंड दिया जाएगा। यह सुनकर संत हंस पड़े। राजा ने इसका कारण पूछा तो संत ने कह– इस राज दरबार में क्या सभी मूर्ख हैं? ऐसे मूर्खों से राज्य को कौन बचाएगा।

राजा ने कहा' क्या बकते हो ?'

संत ने कहा 'जिन कारणों से आप मुझे दंड दे रहे हैं, उन्हें किसी ने समझा ही नहीं। राजा का कर्म है, राज्य की सुरक्षा करना। जनता के सुख दुख की हर वक्त चौकसी करना। सिपाही का काम भी रक्षा करना है, इसलिए मैंने आपको कहा था कि सिपाही बन जाओ। प्रधान पंडित ज्ञानी होता है। जिस व्यक्ति के पास ज्ञान हो, सब उसका सम्मान करते हैं जिससे वह अहंकारी हो जाता है। यदि वह ज्ञानी होने के अहसास से बचा रहे तो अहंकार से भी बचा रह सकता है। इसलिए मैंने पंडित को अज्ञानी बनने को कहा था। नगर सेठ धनवान होता है। उसका कर्म है गरीबों की सेवा, इसलिए मैंने उसे सेवक बनने का आशीर्वाद दिया था। संत की बातें सुन राजदरबार में मौजूद सभी लोगों की आंखें खुल गयीं।
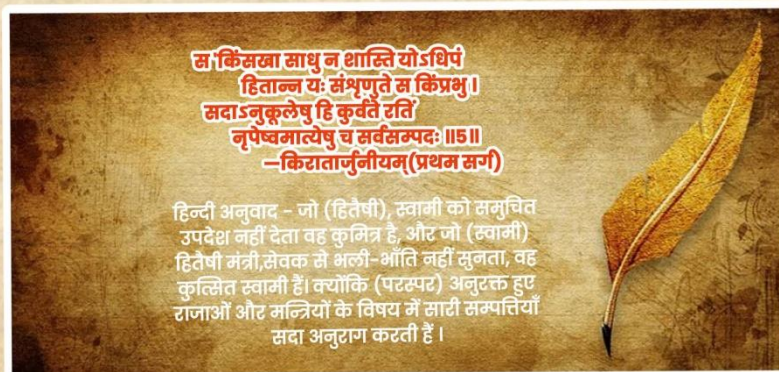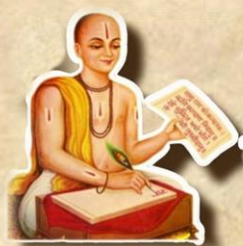
जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा॥

तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिए तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता।

प्रासंगिकता

यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर निस्संदेह बिना बुलाए भी जाना चाहिए परन्तु जानबूझकर नहीं बुलाते हैं तो इनके भी इनके भी घर जाने से कल्याण नहीं होता कि अपमान ही सहन करना पड़ेगा।

प्रेरक प्रसंग— कहानी – दक्ष प्रजापति ने एक बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया था। यज्ञ में सभी देवी-देवता, ऋषि-मुनियों को बुलाया गया था, लेकिन दक्ष ने अपने दामाद शिवजी को आमंत्रित नहीं किया। शिवजी की पत्नी सती को ये बात मालूम हुई तो उन्होंने पति से कहा, 'मेरे पिता के यहां यज्ञ हो रहा है, मैं जाना चाहती हूँ।'शिवजी ने कहा, 'हमें यज्ञ में आमंत्रित नहीं किया गया है। 'सती ने तर्क देते हुए कहा, 'कुछ स्थानों पर बिना आमंत्रण भी जा सकते हैं, माता-पिता के यहां, गुरु के यहां, मित्र के यहां और धार्मिक कार्यक्रम में। मैं अपने पिता के यहां यज्ञ में जा रही हूं तो इसमें बुराई क्या है?'

शिवजी बोले, 'देवी, बात केवल आमंत्रण या यज्ञ की नहीं है। असल बात ये है कि हमें न बुलाने के पीछे दक्ष का इरादा हमें अपमानित करने का है। वे किसी बात को लेकर मुझसे मतभेद रखते हैं, बिना बुलाए ऐसी जगहों पर जा सकते हैं, जहां हमें सम्मान मिलता है, लेकिन जहां अपमान होने की संभावनाएं हैं, वहां हमें नहीं जाना चाहिए।'

शिवजी के समझाने के बाद भी सती अपने पिता के यज्ञ में पहुंच गईं। आयोजन में देवी का अपमान हुआ, किसी ने उनसे बात नहीं की, देवी की गरिमा के विपरीत शब्द बोले गए। सती को समझ आ गया कि मेरे पति ठीक कह रहे थे। इसके बाद योग अग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया।

सीख – इस कथा का संदेश ये है कि हम जब भी किसी आयोजन में जाते हैं तो ये बात ध्यान रखें कि हमें क्यों बुलाया गया है? और, अगर आमंत्रण नहीं है तो हमें बुलाया क्यों नहीं गया है? ऐसे कई उदाहरण और तर्क दिए जाते हैं कि माता-पिता, गुरु, मित्र और धार्मिक आयोजन में बिन बुलाए जा सकते हैं, लेकिन इन तर्कों के पीछे के सत्य को समझ लेना चाहिए। केवल उदाहरण देकर अपनी बात को सच साबित करके बिन बुलाए किसी के घर जाने से बचना चाहिए। खासतौर पर ऐसी जगह न जाएं, जहां हमारा अपमान होने की आशंका है।

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

गङ्गाजी में शुभ और अशुभ सभी जल बहता है, पर कोई उन्हें अपवित्र नहीं कहता। सूर्य, अग्नि महत्वपूर्ण और गङ्गाजी की भाँति समर्थ को कुछ दोष नहीं लगता।

प्रासंगिकता

तुलसीदास जी द्वारा लिखित उक्त चौपाइयों की दो प्रकार से व्याख्या की जा सकती है–

[1] धनी,प्रतिष्ठित एवं उच्च सामाजिक पद वाले व्यक्तियों के पक्ष में:

इसके माध्यम से तुलसीदास जी कहना चाहते हैं कि सारे सामाजिक नियम, परंपरा मानने की उम्मीद केवल कमजोर आदमी से ही की जाती है। ताकतवर किसी भी परंपरा या नियम को मानने या न मानने के लिए स्वतंत्र होता है और उस पर किसी का कोई जोर नहीं चलता है। यदि किसी को तंग करता है या कोई भी गलत काम करता है तो भी समाज उसकी हां में हां मिलाता है, विरोध नहीं करता है।

कमाऊ सामर्थ्यवान पूत पे कौन ऊंगली उठाता है भले उसमें लाख दोष हों। अर्थात् घर परिवार में बड़ा व्यक्ति,,देश को चलाने वाले नेता, बड़े आदमी, धनी व्यक्ति, प्रसिद्धि से युक्त व्यक्ति, प्रतिष्ठित एवं उच्च सामाजिक पद वाले व्यक्तियों आदि इनमें यदि कोई दोष है या यह कोई अपराध करें, तो इन्हें कोई दोष नहीं लगाता है यदि वही कार्य यह करें तो कोई दोष नहीं और यदि हम करें तो अपराध है। इस प्रकार से कहा गया है कि समर्थ व्यक्ति कुछ भी ऊंच-नीच कार्य करें उसको उसके पद की आड़ में ढक दिया जाता है जिससे उनकी प्रसिद्धि बनी रहती है। आज इससंसार में यह सब देखने को मिल रहाहै।

पूरी चौपाई इस तरह से है, समरथ को नहीं दोष गुसाईं, रवि पावक सुरसरि की नायीं. इसका अर्थ ये है कि समर्थ को कोई भी दोष नहीं देता, वैसे ही जैसे सूर्य, अग्नि और गंगाजी को कोई भी दोष नहीं देता चाहे सूर्य की तीव्रता कितनी भी प्रचंड हो, वर्षा काल में गंगाजी अपने तटों को छोड़कर कितने भी क्षेत्र पर अतिक्रमण कर लें और अग्नि अपनी प्रचंड ज्वाला में कुछ भी भस्म कर दे किन्तु उसे दोषी नहीं ठहराया जाता है। नदी में शुभ और अशुभ मतलब मैल और फूल दोनों बहते हैं पर कोई नदी को अपवित्र या अपुनीत नहीं कहता है।

आज के परिपेक्ष्य मे भी सत्य है, गरीब आदमी को कोई नहीं पूछता, कोर्ट मे भी समर्थ लोंगो, जैसे नेताजी लोग को तुरंत जमानत मिल जाती है, आज पूरा परिवार भी जमानत पर है, एक महानुभाव आधी सजा काटकर ही उन्हें जमानत मिल गई और जो आधी सजा भी काटी वो भी पांच सितारा श्रेणी की ही थी, कोई गरीब को इस तरह की सुबिधाएँ मिल सकती हैं, तो निष्कर्ष है कि समर्थ को सभी लोग दोष मुक्त करते हैं

समाज में जो सामर्थ्यवान, शक्तिशाली और सुविधा सम्पन्न व्यक्ति होते हैं, उनसे यदि कोई ऊंच-नीच भी हो जाये तो समाज उन्हें दोष नहीं देता, बल्कि बलि का बकरा बनाने के लिए किसी गरीब की गर्दन ढूंढ़ने लगता है। मतलब कि ताकतवर आदमी कुछ भी करे समाज उसका विरोध नहीं करता है, उसे स्वीकार कर ही लेता है। अर्थात सामर्थ्यवान व्यक्ति (साधन सम्पन्न, बलशाली, प्रभावशाली) का आचरण सुनिश्चित सामाजिक मर्यादाओं के विपरीत होने पर भी उसे नियम विरुद्ध आचरण का दोषी नहीं माना जाता है।

[2] सर्व संपन्न सद्गुणों से युक्त व्यक्तियों के पक्ष में:

समर्थ कौन है? जो हर गुण से परिपूर्ण है, दया, क्षमा, वीरता, शीलता, मर्यादा. तुलसीदास जी ने इसे मर्यादा पुरोषोत्तम श्री राम के गुणों का बखान करते हुए लिखा है। "समरथ को नहीं दोष गुसाईं।रवि पावक सुरसरि की नाई।।"

उक्त पंक्तियों में 'समरथ को नहीं दोष गुसाई' का वास्तविक अर्थ न जानते हुए अथवा जानबूझकर समाज के सबल व निर्बल अपने-अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए इन पंक्तियों का उपयोग करते चले आ रहे हैं.

साधारणतः समाज में इसका यह अर्थ लगाया जाता है कि समर्थवान के दोष को नहीं देखना चाहिए अथवा समर्थवान त्रुटि करने पर भी निर्दोष है अथवा समर्थवान दोष रहित होता है . दोषी सदैव कमजोर ही होता है ।

वास्तविक अर्थ पर एक द्रष्टि का प्रयास....'समरथ को नहीं दोष गुसाई'...समरथ(सम् +अर्थ) में पशुबल अथवा बाहुबल

का भाव नहीं। उसमें भाव आत्मबल का है, जो कर्मो व विचारों से दोष रहित हो ।जिसके कर्म भेद- भाव वाली बुद्धि से प्रेरित नहीं होते .इसीलिए उन्होने आगे कहा कि 'रवि पावक सुरसरि की नाई' इनके कार्य भी भेदभाव रहित ही हैं.जो दोष रहित वही समर्थवान है. ईश्वर के अलावा दोषरहित दूसरा नहीं .इसीलिए समर्थवान और सर्वशक्तिमान सिर्फ एक वही है जो दोष रहित है .गीता में भी कहा गया है 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'. अतः इस भौतिक जगत में यदि कोई वास्तव में दोष रहित है तो उसे भी समर्थवान समझा जा सकता है जैसे हिमालय से अनन्त रत्न,औषधि उत्पन्न होते हैं इसलिए हिमं रूप दोष होते हुए भी उनके सौभाग्य में कोई हानि नहीं पहुँचाता। जैसे चन्द्रमा में यद्यपि कालिमा है तथापि यह दोष और गुणों के समूह में दब जाता है। उसी प्रकार व्यक्ति में अनेक अच्छाइयां हो और उसमें एक बुराई प्रकट हो जाती है तो उसको उसी प्रकार नहीं देखते हैं जैसे हिमालय में बर्फ और चंद्रमा में कलंक और ऑल सर्वगुण संपन्न शिवजी में कुछ गुण दोष को नहीं देखा जाता है।

कुमारसम्भव में हिमालय के
वर्णन में श्लोक–

दोष होते हुए भी पवित्र है ये चीजें–
अनन्तरत्नप्रभवस्य तस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् । एकोऽपि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः ॥

अर्थात् हिमालय से अनन्त रत्न उत्पन्न होते हैं इसलिए हिमं रूप दोष होते हुए भी उनके सौभाग्य में कोई हानि नहीं पहुँचाता । जैसे चन्द्रमा में यद्यपि कालिमा है तथापि यह दोष और गुणों के समूह में दब जाता है ।

इसके विपरीत नवीन कवि की उक्ति है–
एकोपि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो बभावे । तेनैव मूनं कविना न दृष्टं दारिद्यूदोषो गुणराशिनाशी ॥

'एक दोष गुण समूह में दब जाता है यह कहनेवाले ने यह नहीं देखा कि दरिद्रता एक ऐसा दोष है जो अनेक गुण समूह को नष्ट कर देता है।'
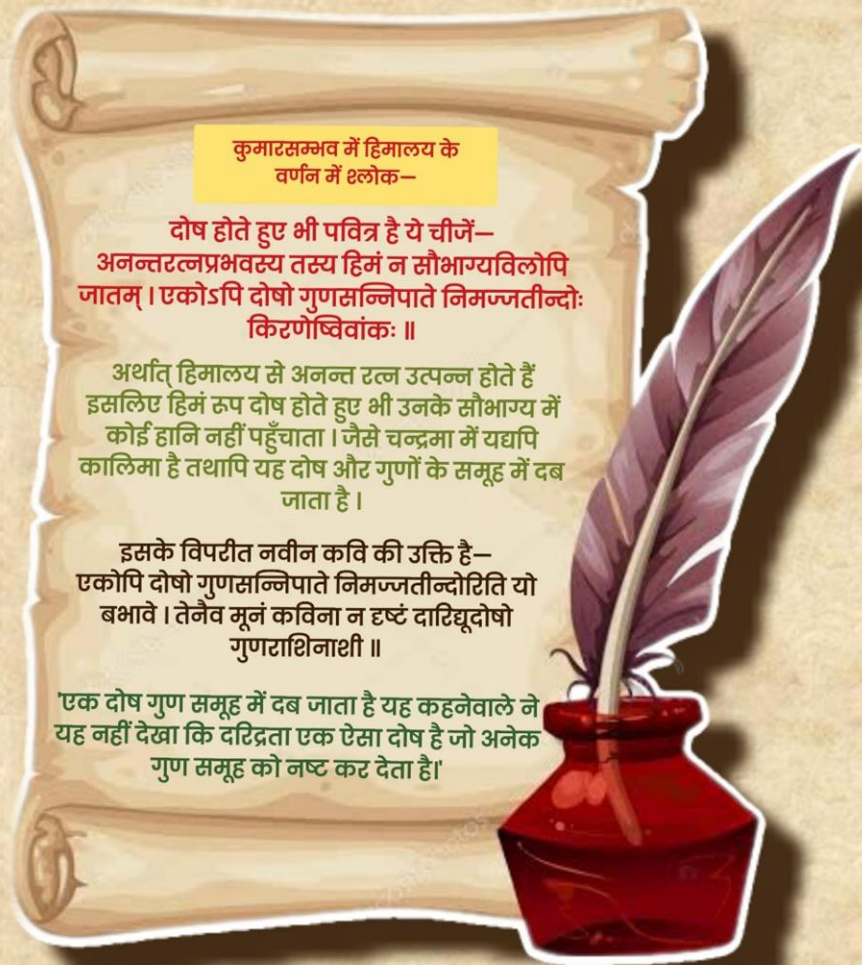
	तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा। **भावार्थ**—तप सुख देनेवाला और दुःख-दोष का नाश करनेवाला है। **तप अधार सब सृष्टि भवानी ।** **भावार्थ**—सारी सृष्टि तपके ही आधार पर है।	

प्रासंगिकता

तप का अर्थ है-पीड़ा सहना, घोर कड़ी साधना करना और मन का संयम रखना आदि। महर्षि दयानंद के अनुसार 'जिस प्रकार सोने को अग्नि में डालकर इसके मैल को दूर किया जाता है, उसी प्रकार सद्गुणों और उत्तम आचरणों से अपने हृदय, मन और आत्मा के मैल को दूर किया जाना तप है।

गीता में तप तीन प्रकार के बताए गए हैं-शारीरिक, जो शरीर से किया जाए। वाचिक, जो वाणी से किया जाए और मानसिक, जो मन से किया जाए। देवताओं, गुरुओं और विद्वानों की पूजा और इन लोगों की यथायोग्य सेवा-सुश्रषा करना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप हैं। ब्रह्मचर्य का अर्थ है- शरीर के बीजभूत तत्व की रक्षा करना और ब्रह्म में विचरना या अपने को सदा परमात्मा की गोद में महसूस करना। किसी को मन, वाणी और शरीर से हानि न पहुंचाना अहिंसा है। हिंसा और अहिंसा केवल शारीरिक ही नहीं, बल्कि वाचिक और मानसिक भी होती हैं।
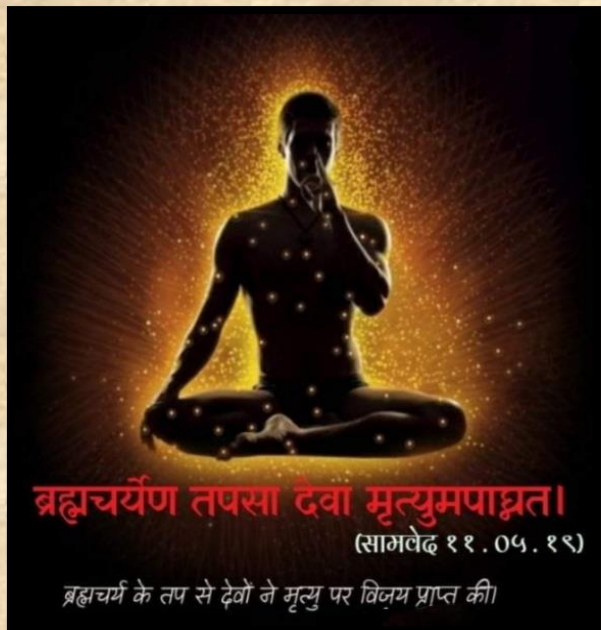
वाणी के तप से अभिप्राय है ऐसी वाणी बोलना जिससे किसी को हानि न पहुंचे। सत्य, प्रिय और हितकारक वाणी का प्रयोग करना चाहिए। वाणी के तप के साथ ही स्वाध्याय की बात भी कही गयी है। वेद, उपनिषद आदि सद्ग्रंथों का नित्य पाठ करना और अपने द्वारा किए जा रहे नित्य कर्मो पर भी विचार करना स्वाध्याय है। मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन, आत्मसंयम और चित्त की शुद्ध भावना ये सब मन के तप हैं। गुणवत्ता के आधार पर तप तीन प्रकार के होते हैं- सात्विक तप यानी जो परम श्रद्धा से किया जाता है, जिसमें फल के भोग की आकांक्षा नहीं होती है और सबके हित के लिए किया जाता है।

अपना सत्कार चारों ओर बढ़ाने की इच्छा से किया जाने वाला तप राजस तप कहलाता है। तामस तप का अर्थ है पंचाग्नियों के बीच शरीर को कष्ट देना। शरीर के किसी अंग को वर्षो निष्क्रिय करके रखना आदि कर्म जिनसे करने वालों और देखने वालों दोनों को कष्ट हो और किसी का भी कोई हित न हो उन्हें तामस तप कहा जाता है। मनु कहते हैं कि तप से मन का मैल दूर होता है और पाप का नाश होता है। शास्त्र कहते हैं कि अपने व्यक्तित्व को ऊपर उठाना है, तो तपस्वी बनें।

प्रेरक प्रसंग—तपस्वी जाजलि श्रद्धापूर्वक वानप्रस्थ धर्म का पालन करने के बाद खड़े होकर कठोर तपस्या करने लगे। उन्हें गतिहीन देखकर पक्षियों ने उन्हें कोई वृक्ष समझ लिया और उनकी जटाओं में घोंसले बनाकर अंडे दे दिए। अंडे बढ़े और फूटे, उनसे बच्चे निकले। बच्चे बड़े हुए और उड़ने भी लगे। एक बार जब बच्चे उड़कर पूरे एक महीने तक अपने घोंसले में नहीं लौटे, तब जाजलि हिले। वह स्वयं अपनी तपस्या पर आश्चर्य करने लगे और अपने को सिद्ध समझने लगे। उसी समय आकाशवाणी हुई, 'जाजलि, गर्व मत करो। काशी में रहने वाले व्यापारी तुलाधार के समान तुम धार्मिक नहीं हो।'

आकाशवाणी सुनकर जाजलि को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उसी समय काशी चल पड़े। उन्होंने देखा कि तुलाधार तो एक अत्यंत साधारण दुकानदार हैं। वह अपनी दुकान पर बैठकर ग्राहकों को तौल-तौलकर सौदा दे रहे थे। जाजलि को तब और भी आश्चर्य हुआ जब तुलाधार ने उन्हें उठकर प्रणाम किया, उनकी तपस्या, उनके गर्व तथा आकाशवाणी की बात भी बता दी। जाजलि ने पूछा, 'तुम्हें यह सब कैसे मालूम?' तुलाधार ने विनम्रतापूर्वक कहा, 'सब प्रभु की कृपा है। मैं अपने कर्त्तव्य का सावधानी से पालन करता हूं। न मद्य बेचता हूं, न और कोई निंदित पदार्थ। अपने ग्राहकों को मैं तौल में कभी ठगता नहीं।

ग्राहक बूढ़ा हो या बच्चा, वह भाव जानता हो या न जानता हो, मैं उसे उचित मूल्य पर उचित वस्तु ही देता हूं। किसी पदार्थ में दूसरा कोई दूषित पदार्थ नहीं मिलाता। ग्राहक की कठिनाई का लाभ उठाकर मैं अनुचित लाभ भी उससे नहीं लेता हूं। ग्राहक की सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है, यह बात मैं सदा स्मरण रखता हूं। मैं राग-द्वेष और लोभ से दूर रहता हूं। यथाशक्ति दान करता हूं और अतिथियों की सेवा करता हूं। हिंसारहित कर्म ही मुझे प्रिय है। कामना का त्याग करके संतोषपूर्वक जीता हूं।'

जाजलि समझ गए कि आखिर क्यों उन्हें तुलाधार के पास भेजा गया। उन्होंने तुलाधार की बातों को अपने जीवन में उतारने का संकल्प किया।

भगवद्गीता: अध्याय–17 के अनुसार तीन प्रकार की तपस्या

**देवद्विज्गुरुप्रज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शरीरं तप उच्यते || 14 ||**

हिंदी अनुवाद—जब परम भगवान, ब्राह्मणों, आध्यात्मिक गुरु, बुद्धिमानों और बुजुर्गों की पूजा स्वच्छता, सादगी, ब्रह्मचर्य और अहिंसा के पालन के साथ की जाती है तो यह पूजा शरीर की तपस्या के रूप में घोषित की जाती है ।

**अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते || 15 ||**

हिन्दी अनुवाद— जो शब्द कष्ट का कारण नहीं बनते, सत्य, निरापद और लाभकारी होते हैं, साथ ही वैदिक शास्त्रों का नियमित पाठ - इन्हें वाणी की तपस्या के रूप में घोषित किया जाता है।

**मनः प्रसादःसौम्यत्वं मौनमात्म विनिगृहः।
भावसंशुद्धिरितयेत्तपो मानसमुच्यते ।। 16 ।।**

हिंदी अनुवाद— विचार की शांति, सौम्यता, मौन, आत्म–नियंत्रण और उद्देश्य की पवित्रता— ये सभी मन की तपस्या के रूप में घोषित किए गए।

धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥

तनु तिय तनय धामु धनु धरनी । सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी ॥

वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। सत्यव्रती के लिये तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी सब तिनके के बराबर कहे गये हैं।

प्रासंगिकता

संसार में अगर कोई चीज शाश्वत(eternal) है, तो वह केवल परम सत्य है. यह एक ऐसी शक्ति है जो किसी भी कालखंड में नष्ट नहीं होती है। ब्रह्मांड का प्रत्येक नियम सत्य की बुनियाद पर टिका हुआ. ईश्वर द्वारा बनाया गया कोई भी नियम कभी भी विपरीत कार्य नहीं करता है। सूर्य पूर्व दिशा में निकलता है तो, वह सदैव पूर्व में ही निकलेगा। आप सभी ने एक बात नोट की होगी कि कोई भी प्राकृतिक नियम(गुरुत्वाकर्षण, घर्षण, ग्रह गति, आदि विज्ञान के नियम) कभी विकृत नहीं होते, ये नियम जैसे भूतकाल में व्यवहार करते थे, वर्तमान में भी ठीक उसी प्रकार कार्य करते है। विज्ञान की ये क्रियाएँ परमात्मा द्वारा बनाये गये नियमों का पूर्णता से पालन करती है और जब तक सृष्टि रहती है सदैव एक समान व्यवहार करती है। सभी ईश्वरकृत चीजें व नियम प्रत्येक युग में एक जैसी बनी रही यही संसार की शाश्वता है। सत्य शाश्वत है इसलिए इसे मिटाया नहीं जा सकता है, उपनिषद कहता है- सत्यमेव जयते(सत्य की सदैव
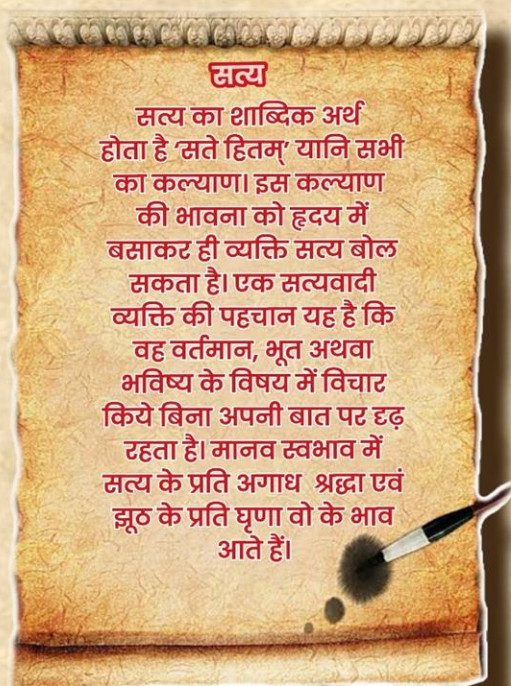
सत्य

सत्य का शाब्दिक अर्थ होता है 'सते हितम्' यानि सभी का कल्याण। इस कल्याण की भावना को हृदय में बसाकर ही व्यक्ति सत्य बोल सकता है। एक सत्यवादी व्यक्ति की पहचान यह है कि वह वर्तमान, भूत अथवा भविष्य के विषय में विचार किये बिना अपनी बात पर दृढ़ रहता है। मानव स्वभाव में सत्य के प्रति अगाध श्रद्धा एवं झूठ के प्रति घृणा वो के भाव आते हैं।

विजय होती है)। सत्य इस संसार में बड़ी शक्ति है. सत्य के बारे में व्यवहारिक बात यह है कि सत्य परेशान हो सकता है किन्तु पराजित नहीं. भारत में कई सत्यवादी विभूतियाँ हुई जिनकी दुहाई आज भी दी जाती हैं जैसे राजा हरिश्चन्द्र, धर्मराज युधिष्ठिर, सत्यवीर तेजाजी महाराज आदि. इन्होने अपने जीवन में यह संकल्प कर लिया था कि भले ही जो कुछ हो जाए वे सत्य की राह को नहीं छोड़ेंगे।

प्रेरक प्रसंग — राजा हरिश्चंद्र की कहानी

सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र को एक दिन सपना आया। वह सपना था कि उन्होंने पूरा राजमहल महर्षि विश्वामित्र को दान दे दिया। राजा हरिश्चंद्र ने जो वचन स्वप्न में दिया था वह वचन का उन्होंने पालन किया। पूरा राज दरबार महर्षि विश्वामित्र को सौप दिया।

महर्षि विश्वामित्र ने कहा, “मुझे आप राज दरबार के साथ-साथ खूब सारी अशरफियाँ भी चाहिए।”

राजा हरिश्चंद्र ने कहा ऋषिवर, ” मैंने आपको सब कुछ सौंप दिया है अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।” महर्षि विश्वामित्र ने फिर से कहा, ” राजा हरिश्चंद्र अब आप क्या करोगे?

राजा हरिश्चंद्र ने जवाब दिया कि मेरे बीवी और बच्चों को आप के हवाले रख देता हूं। इससे ज्यादा ऋषिवर में कुछ नहीं कर सकता।

विश्वामित्र ने कहा, मुझे और भी भेंट की आवश्यकता है सिर्फ इतने भेटों से प्रसन्न नहीं हूँ। राजा हरिश्चंद्र ने कहा माननीय विश्वामित्र जी “अपने स्वयं को आपके समर्पित करता हूँ।” आज से मैं आपका सेवक हूं। आपके हर एक कार्य को मैं पूरी निष्ठा और वचन के साथ पूरा करूँगा।

राजा हरिश्चंद्र आप अपना सब कुछ गवा चुके। परिस्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि उनका स्वयं पर भी अधिकार नहीं था। राजा हरिश्चंद्र को एक मरघट शाला में कार्य दिया गया। मृत व्यक्ति हो उनका क्रिया कर्म करना उन्हें क्रिया कर्म करने के बदले कुछ पैसे मिलते थे। जैसे कि आप सब जानते हैं कि राजा हरिश्चंद्र अपने वचनों के पाबंद थे। एक दिन एक स्त्री एक मृत बालक को हरिश्चंद्र के सामने लाया। हाथ जोड़कर विनती की आप कृपया मेरे बच्चे का क्रिया कर अच्छे से पूर्ण कीजिए। गिड़गिड़ा कर कहा, मेरे पास बिल्कुल भी पैसा नहीं है। आप मेरे बच्चे का अंतिम संस्कार करके उसे मुक्ति दिलाए।

राजा हरिश्चंद्र ने कहा, "मैं अपने वचनों को निष्ठा से पालन करता हूं। बिना मूल्य मैं अंतिम संस्कार नहीं कर सकता।

स्त्री बिलख बिलख कर रोने लगी राजा हरिश्चंद्र की नजर उस स्त्री और बालक पर पड़ी। वह इससे बालक और कोई नहीं बल्कि स्वयं राजा हरिश्चंद्र की पत्नी और पुत्र था। देखकर राजा हरिश्चंद्र को बहुत दुख हुआ। उनके पैरो तले जमीन खिसक गई। राजा हरिश्चंद्र के सामने धर्म संकट छा गया। राजा हरिश्चंद्र ने जोर जोर से रोते-रोते कहा कि, "सत्य निष्ठा का पालन करना मेरा धर्म है।"मैं आपकी कोई सहायता नहीं कर सकता। ऐसे दुखद परिस्थिति को जब भगवान ने देखा तो उनके भी आंखों से अश्रु बहने लगे। राजा हरिश्चंद्र की सत्य निष्ठा के कारण भगवान को स्वयं प्रकट होना पडा।

भगवान ने कहा, "मैं आपकी सत्य निष्ठा से खुश हु, आप जो भी वरदान मांगो।" उसको मैं अवश्य पूर्ण करूंगा। राजा हरिश्चंद्र ने प्रणाम करते हुए कहा कि आप मेरे पुत्र को जीवित कर दीजिए। भगवान ने उनके पुत्र को जीवित कर लिया। साथ ही साथ उनकी सारी संपत्ति राजमहल, उनकी पत्नी उनका पद प्रतिष्ठा हर एक चीज उनको वापस दिला दी। इसप्रकार से कहा गया है— *"चंद टरे सूरज टरे टरे जगत व्यवहार। पै दृढ़ हरिश्चंद्र को टरे न सत्य विचार।।"*
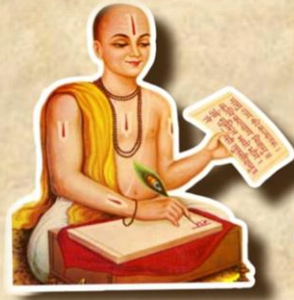
चौ०—अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता ॥

काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई ॥

भावार्थ—विधाता जब इस प्रकार का (हंसका-सा) विवेक देते हैं, तब दोषों को छोड़कर मन गुणोंमें अनुरक्त होता है। काल, स्वभाव और कर्म की प्रबलता से भले लोग (साधु) भी माया के वशमें होकर कभी- कभी भलाईसे चूक जाते हैं ॥

सो०— तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।

सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि ॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं— सुन्दर वेष देखकर मूढ़ नहीं, [मूढ़ तो मूढ़ ही हैं] चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं। सुन्दर मोर को देखो, उसका वचन तो अमृतके समान है और आहार साँपका है।

प्रासंगिकता

दुनिया में भांति-भांति के लोग हैं। उनमें से कुछ लोगों की पहचान करके हमें उनसे बचकर रहना चाहिए। महाभारत में सभी तरह के लोगों की चर्चा की गई है। चाणक्य ने भी कुछ लोगों से बचकर रहने की हिदायत दी है।

आप जहां काम करते और आप जहां रहते हैं उसके अलावा आपके रिश्तेदार, परिचित आदि सभी से आपका नाता है। इसके अलावा यात्रा एवं किसी समारोह आदि में भी आपके बहुत से लोगों से संबंध बनते हैं। बहुत से लोग आपकी जिंदगी में कुछ समय के लिए आते हैं और चले जाते हैं। कुछ आपकी जिंदगी में आकर तूफान खड़ा कर देते हैं, तो कुछ आपकी जिंदगी को फिर से संवार देते हैं। ऐसे भी होते हैं कि कुछ आपका सबकुछ लूटकर चले जाते हैं।

यदि आप लोगों की पहचान करना सीखेंगे नहीं तो धोखे खाते रहेंगे और यदि आप लोगों से जुड़ना नहीं जानते तो आगे बढ़ भी नहीं सकते। जो व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है उसकी जिंदगी में हजारों तरह के लोगों की एंट्री होती है। ऐसा व्यक्ति उनमें से कुछ से बचना भी जानता है। आओ जानते हैं कि हमें किन-किन लोगों से जिंदगी में बचकर रहना चाहिए। ऐसे लोगों के बारे में कुछ प्रेरक कहानियों के माध्यम से जानेंगे।

प्रेरक प्रसंग—1 (साधु और ठग की कहानी)

बहुत पुरानी बात है। एक गांव में एक साधु रहा करते थे। वह गांव के ही मंदिर पर पूजा अर्चना किया करते थे। मंदिर पर खूब चढ़ावा आता था। चढ़ावे के रूप में अनाज, इत्यादि कई वस्तुएं आती थी। जेवर, रुपए उन सारी वस्तुओं को बेचकर साधु सारे पैसे अपने पास ही रखते थे क्युकी साधु को किसी अन्य व्यक्ति पर भरोसा ही नहीं था। वे एक झोली में सारे पैसे रखकर अपने पास ही रखा करते थे और जहां जाते झोली को अपने साथ ही लेकर जाते। बगल के एक गांव में एक ठग रहा करता था। वह साधु को ठगना चाहता था। उसने कई प्रयास किए मगर सफल नहीं रहा हुआ। एक बार उसके मन में एक विचार आया। वह ठ एक विद्यार्थी का वेश बनाकर साधु के पास पहुंचा और साधु से अपना शिष्य बनाने के लिए विनती करने लगा। बार-बार कहने पर साधु उसे अपना शिष्य बनाने के लिए सहमत हो गए। वह ठग रोज मंदिर की सफाई करता और साधु के साथ-साथ हर काम में सहयोग करता। धीरे-धीरे उसने साधु का विश्वास जीत लिया। एक दिन जब साधु निमंत्रण खाने एक सेठ के यहां जा रहे थे तो रास्ते में एक नदी पड़ी। साधु ने स्नान करने की इच्छा जताई और सारे सारे कपड़े और पैसों से भरी झोली अपने शिष्य को रखवाली करने के लिए देकर नहाने चले गए। शिष्य के रूप में ठग इसी पल के इंतजार में था, जैसे ही साधु नदी में स्नान करने गए वह ठग पैसों से भरी झोली को लेकर नौ दो ग्यारह हो गया।

इसलिए दोस्तों कहा जाता है कि किसी अनजान व्यक्ति के ऊपर भरोसा बहुत ही सोच समझ कर करना चाहिए।

प्रेरक प्रसंग—2 (मूर्ख बगुला और नेवला की कहानी)

एक घने जंगल में एक तालाब के किनारे बरगद के पेड़ों के तनों में बहुत से बगुले रहते थे। उसी पेड़ के नीचे एक दुष्ट सांप भी रहता था। वह सर्प उन बगुलों के अंडे और बच्चों को खाकर आसानी से अपना जीवन यापन करता था। एक बगुला तालाब के किनारे गया और सांप के द्वारा बार-बार अपने बच्चों को खाने के कारण विलाप करने लगा। उसका विलाप सुनकर तालाब से एक केकड़ा बाहर आया और बोला, “मामा, क्या हुआ, आज रो क्यों रहे हो?”

बगुले ने कहा, “मित्र, वह सांप मेरे बच्चों को हर बार खा जाता है, इस कारण मैं दुखी हूं और मेरे पास इसे यहां से भगाने का कोई उपाय नहीं है। यदि तुम्हारे पास कोई उपाय हो तो बताओ।”

केकड़े ने सोचा कि यह तो मेरा जन्म शत्रु है, क्यों न इसे ऐसा उपाय बताऊं कि सांप भी मर जाए और इसका भी अंत हो जाए। यह सोचकर केकड़े ने कहा, “मामा, आप ऐसा करें कि आप मांस के कुछ टुकड़े नेवले के बिल के बाहर रख दें और वहां से मांस के टुकड़े सांप के बिल तक डाल दें। जिससे नेवला मांस के टुकड़ों को खाते हुए सांप के बिल तक पहुंच जाएगा और सांप को मारकर खा जाएगा।”

केकड़े के कहे अनुसार बगुलेने योजना पूरी की। नेवले ने सांप को तो खा लिया लेकिन सांप के बिल को भी अपना घर बना लिया और उसमें रहने लगा। फिर धीरे-धीरे सारे बुगलों को भी खा लिया।

कहानी का भाव: दोस्तों इस कहानी से हमें सीख मिलती है कि हमें किसी की बात पर आंख मूंदकर विश्वास नहीं करना चाहिए। कोई भी उपाय करने से पहले हमें उसके दुष्प्रभाव के बारे में भी पता कर लेना चाहिए।

चाणक्य नीति दसवें अध्याय के नौवें श्लोक में बुद्धिहीन व्यक्ति के बारे में कहा गया है—
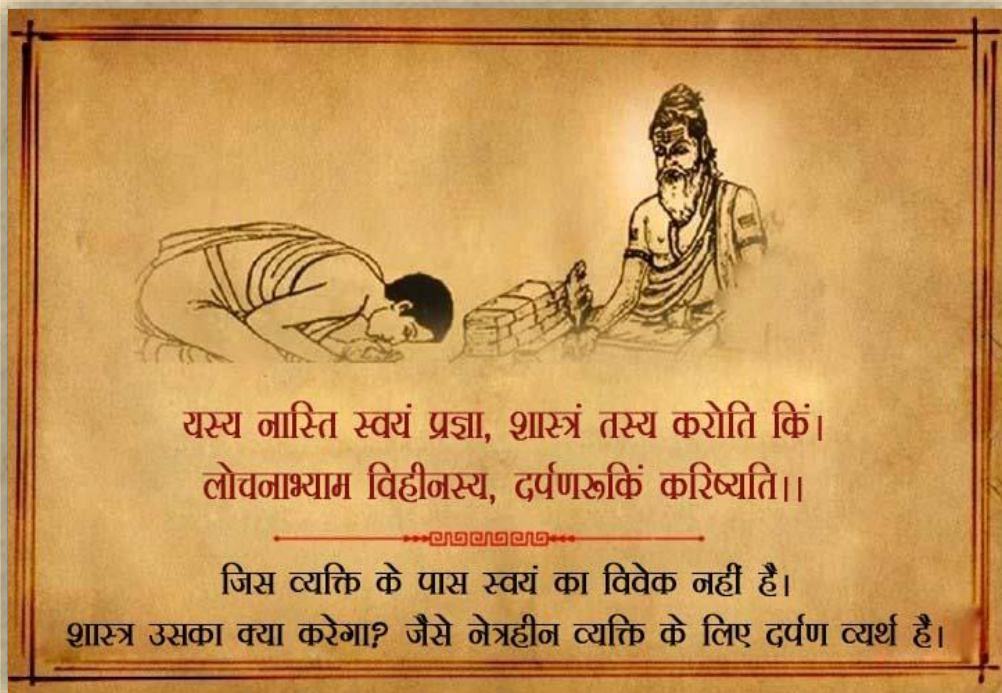
	रागु रोषु इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥ सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥	

भावार्थ— राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह-इनके वश स्वप्नमें भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग. कर मन, वचन और कर्म से श्रीसीतारामजी की सेवा करना।

	दो०- लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल। जेहि बस जन अनुचित करहिंचरहिंबिस्व प्रतिकूल ॥	

भावार्थ— लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा- हे मुनि ! सुनिये, क्रोध पापका मूल है, जिसके वश में होकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विश्वभर के प्रतिकूल चलते (सबका अहित करते) हैं।

	दो० – तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ। मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥	

भावार्थ—हे तात! काम, क्रोध और लोभ- ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञानके धाम मुनियों के भी मनोंको पलभर में क्षुब्ध कर देते हैं।

	दो० – लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि। क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥	

भावार्थ—लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है, काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनों का बल है; श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं।

	दो० – काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ। **सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत॥**	

भावार्थ—हे नाथ! काम, क्रोध, मद और लोभ-ये सब नरकके रास्ते हैं। इन सबको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजी को भजिये, जिन्हें संत (सत्पुरुष) भजते हैं।

	दो० – ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम। **भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥**	

भावार्थ—जो जीवों के द्रोह में रत है, मोह के वश हो रहा है, रामविमुख है और कामासक्त है, उसको क्या कभी स्वप्न में भी सम्पत्ति, शुभ शकुन और चित्तकी शान्ति हो सकती है ?

प्रासंगिकता

रजस्तमश्च मानसौ दोषौ तयोविकारा काम, क्रोध, लोभ, मोहेष्यार्मानमद शोक चिन्तास्तोद्वेगभय हर्षादयः ||

रज और तम ये दो मानस रोग हैं इनकी विकृति से होने वाले विकार मानस रोग कहलाते हैं।

मानस रोग— काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग,भय, हर्ष, विषाद, अभ्यसूया, दैन्य, मार्त्सय और दम्भ ये मानस रोग हैं।

- **काम**—इन्द्रियों के विषय में अधिक आसक्ति रखना 'काम'कहलाता है।
- **क्रोध**—दूसरे के अहित की प्रवृत्ति जिसके द्वारा मन और शरीर भी पीड़ित हो उसे क्रोध कहते हैं।
- **लोभ**—दूसरे के धन, स्त्री आदि के ग्रहण की अभिलाषा को लोभ कहते हैं।
- **ईर्ष्या**—दूसरे की सम्पत्ति- समृद्धि को सहन न कर सकने को ईर्ष्या कहते हैं।
- **अभ्यसूया**— छिद्रान्वेषण के स्वभाव के कारण दूसरे के गुणो के दोष बताना अभ्यसूया या असूया कहते हैं।
- **मात्सर्य**—दूसरे के गुणों को प्रकट न करना अथवा कूरता दिखाना 'मात्सर्य' कहलाता है।
- **मोह**—अज्ञान या मिथ्या ज्ञान (विपरीत ज्ञान) को मोह कहते हैं।

- **मान**—अपने गुणों को अधिक मानना और दूसरे के गुणों का हीन दृष्टि से देखना 'मान' कहलाता है।
- **मद**—मान की बढ़ी हुई अवस्था 'मद' कहलाती है।
- **दम्भ**—जो गुण, कर्म और स्वभाव अपने में विद्यमान न हों, उन्हें उजागर कर दूसरों को ठगना 'दम्भ' कहलाता है।
- **शोक**—पुत्र आदि इष्ट वस्तुओं के वियोग होने से चित्त में जो उद्वेग होता है, उसे शोक कहते हैं।
- **चिन्ता**—किसी वस्तु का अत्यधिक ध्यान करना 'चिन्ता' कहलाता है।
- **उद्वेग**—समय पर उचित उपाय न सूझने से जो घबराहट होती है उसे 'उद्वेग' कहते हैं।
- **भय**—अन्य आपत्ति जनक वस्तुओं से डरना 'भय' कहलाता है।
- **हर्ष**—प्रसन्नता या बिना किसी कारण अन्य व्यक्ति की हानि किए बिना अथवा सत्कर्म करके मन में प्रसन्नता का अनुभव करना हर्ष कहलाता है।
- **विषाद**—कार्य में सफलता न मिलने के भय से कार्य के प्रतिसाद या अवसाद अप्रवृत्ति की भावना 'विषाद' कहलाता है।
- **दैन्य**—मन का दब जाना – अर्थात् साहस और धैर्य खो बैठना दैन्य कहलाता है।

ये सब मानस रोग 'इच्छा' और 'द्वेष' के भेद से दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। किसी वस्तु (अथर्व) के प्रति अत्यधिक अभिलाषा का नाम 'इच्छा' या 'राग' है। यह नाना वस्तुओं और न्यूनाधिकता के आधार पर भिन्न-भिन्न होती है। हर्ष, शोक, दैन्य, काम, लोभ आदि इच्छा के ही दो भेद हैं। अनिच्छित वस्तु के प्रति अप्रीति या अरुचि को द्वेष कहते हैं। वह नाना वस्तुओं पर आश्रत और नाना प्रकार का होता है। क्रोध, भय, विषाद, ईर्ष्या, असूया मात्सर्य आदि द्वेष के ही भेद हैं।

प्रेरक प्रसंग—विभीषणजी रावण को पाप के रास्ते पर आगे बढने से रोकने के लिए समझाते हैं कि काम, क्रोध, अहंकार, लोभ आदि नरक के रास्ते पर ले जाने वाले हैं। काम के वश होकर आपने जो देवी सीता का हरण किया है और आपको जो बल का अहंकार हो रहा है, वह आपके विनाश का रास्ता है। जिस प्रकार साधु लोग सब कुछ त्यागकर भगवान का नाम जपते हैं आप भी राम के हो जाएं। मनुष्य को भी इस लोक में और परलोक में सुख, शांति और उन्नति के लिए इन पाप की ओर ले जाने वाले तत्वों से बचना चाहिए।

क्रोध में दिए गए घाव कभी नहीं भरते ,आइए एक कथा के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

बहुत समय पहले की बात है, एक गाँव में एक लड़का रहता था. वह बहुत ही गुस्सैल था,छोटी-छोटी बात पर अपना आप खो बैठता और लोगों को भला-बुरा कह देता. उसकी इस आदत से परेशान होकर एक दिन उसके

पिता ने उसे कीलों से भरा हुआ एक थैला दिया और कहा कि, "अब जब भी तुम्हे गुस्सा आये तो तुम इस थैले में से एक कील निकालना और बाड़े में ठोक देना।

पहले दिन उस लड़के को चालीस बार गुस्सा किया और इतनी ही कीलें बाड़े में ठोंक दी.पर धीरे-धीरे कीलों की संख्या घटने लगी,उसे लगने लगा की कीलें ठोंकने में इतनी मेहनत करने से अच्छा है कि अपने क्रोध पर काबू किया जाए और अगले कुछ हफ्तों में उसने अपने गुस्से पर बहुत हद तक काबू करना सीख लिया. और फिर एक दिन ऐसा आया कि उस लड़के ने पूरे दिन में एक बार भी अपना आपा नही खोया। जब उसने अपने पिता को ये बात बताई तो उन्होंने ने फिर उसे एक काम दे दिया, उन्होंने कहा कि, "अब हर उस दिन जिस दिन तुम एक बार भी गुस्सा ना करो इस बाड़े से एक कील निकाल निकाल देना।" लड़के ने ऐसा ही किया, और बहुत समय बाद वो दिन भी आ गया जब लड़के ने बाड़े में लगी आखिरी कील भी निकाल दी, और अपने पिता को ख़ुशी से ये बात बतायी। तब पिताजी उसका हाथ पकड़कर उस बाड़े के पास ले गए, और बोले, " बेटे तुमने बहुत अच्छा काम किया है, लेकिन क्या तुम बाड़े में हुए छेदों को देख पा रहे हो। अब वो बाड़ा कभी भी वैसा नहीं बन सकता जैसा वो पहले था। जब तुम क्रोध में कुछ कहते हो तो वो शब्द भी इसी तरह सामने वाले व्यक्ति पर गहरे घाव छोड़ जाते हैं।

इसलिए अगली बार अपना आपा खोने से से पहले आप भी ये जरूर सोच लें कि ये सामने वाले पर कितना गहरा घाव छोड़ सकता है, हो सकता है उस समय आपका गुस्सा आपको जायज लगे लेकिन ये भी हो सकता है की बाद में आपको अत्यधिक पश्चाताप बावजूद भी सुकून न मिले।
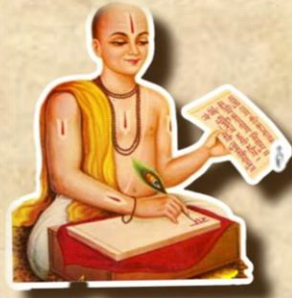
सो० – रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।

अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन।

भावार्थ— शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा करके नहीं समझना चाहिए। ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगी।

दो० – रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअन ताहु।

अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥

भावार्थ—तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिये। जिसका सिरमात्र बचा था, वह राहु आज तक सूर्य-चन्द्रमाको दुःख देता है।

प्रासंगिकता

निम्नलिखित चीजों को कभी छोटा नहीं समझना चाहिए।

शत्रु—दुश्मन भले ही कितना भी छोटा क्यों न हो, लेकिन उससे हमेशा सावधान रहना चाहिए। कई बार छोटे दुश्मन भी इतना बड़ा नुकसान कर देते हैं, जिसके कारण बाद में पछताना पड़ता है।

रोग—छोटी से छोटी बीमारी को भी कभी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। सर्दी, जुकाम या बुखार आदि भले ही साधारण लगते हो, लेकिन जब यह बढ़ जाते हैं तो शरीर को खोखला कर देते हैं।

अग्नि—आग का सबसे (छोटा रूप एक चिंगारी होती है, लेकिन जब यह विकराल रूप ले लेती है तो इस पर नियंत्रण पाना किसी के बस में नहीं होता। ये कभी भी बड़ी दुर्घटना का कारण बन सकता है।

पाप—कई बार मनुष्य सब कुछ जानकर भी छोटे-छोटे गलत काम करते हैं। इन कामों से प्राप्त होने वाला पाप भी कम ही होता है, लेकिन जब इन छोटे-छोटे पाप कर्मों का फल एकत्रित हो जाता है तो इसकी भयानक सजा मिलती है। इसलिए पाप कर्म भले ही छोटा है, लेकिन करने से बचना चाहिए।

स्वामी—मालिक को कभी भी छोटा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि अगर मालिक नाराज हो जाए तो वह आपका बड़ा नुकसान कर सकता है। मालिक को जब भी मौका मिलेगा, वह आपका नुकसान करने से नहीं चूकेगा। इसलिए मालिक को कभी छोटा यानी कमजोर नहीं समझना चाहिए।

सांप—सांप दिखने में भले ही कितना भी छोटा क्यों न हो, लेकिन यदि वह एक बार काट ले तो किसी की भी मृत्यु का कारण बन सकता है। इसलिए सांप को कभी छोटा (कमजोर) नहीं समझना चाहिए।

इसी संदर्भ में आचार्य चाणक्य जी ने भी कहा है—
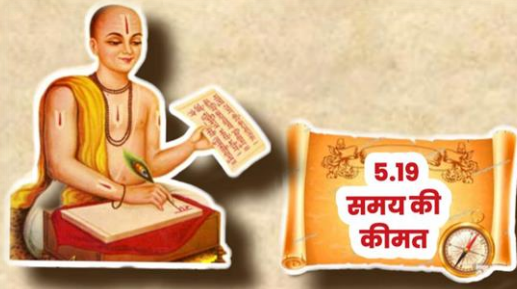
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा ॥

का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें ॥

भावार्थ—यदि प्यासा आदमी पानीके बिना शरीर छोड़ दे तो उसके मर जाने पर अमृत का तालाब भी क्या करेगा? सारी खेतीके सूख जाने पर वर्षा किस काम की? समय बीत जानेपर फिर पछताने से क्या लाभ? ।

प्रासंगिकता

मनुष्य के जीवन में समय सबसे बड़ा बलवान है यदि आप समय का सही उपयोग करते है तो आप अपने जीवन की हर राह में सफल हो सकते है। लेकिन यदि आप अपने समय का सही तरीके से सदुपयोग नहीं करते है तो इससे आपकी जीवन की गति एक अलग ही दिशा में जा सकती है। समय का ना कोई आदि है और ना ही अंत यह सभी मानव जीवन के लिए एक अद्भुत भूमिका अदा करता है। जैसे की आप सभी लोग जानते है की समय के साथ ही किसी व्यक्ति का जन्म एवं मृत्यु निश्चित है, समय पर किसी भी व्यक्ति का कोई पाबंद नहीं हो सकता है। दुनिया में हर एक व्यक्ति के लिए समय सबसे कीमती है इसका कोई मूल्य नहीं है जो व्यक्ति अपने जीवन में समय के महत्व को समझते है वह जीवन की हर राह पर सफल होते चले जाते है। अगर आप अपने जीवन में अपनी गलतियों से समय का सदुपयोग करना सीखते है तो यह ज्ञान आपको जीवन में और अधिक कुशल बनने में मदद करता है।

प्रेरक प्रसंग — समय अमूल्य चीज़ है| दुनिया में अधिकतर लोग तो इसका मूल्य जीवन भर जान ही नहीं पाते और पूरा जीवन बस इधर–उधर भटकने में निकाल देते हैं| समय एक ऐसी चीज़ है जो कभी किसी के लिए नहीं रुकता वो बस चलता जाता है| जो लोग इसका सही उपयोग करते है वो life मे कुछकर जाते हैं और बाकी लोगों को सिर्फ़ पछताना पड़ता है|

एक उदाहरण के लिए, सोचो अगर आपका किसी बैंक में कोई अकाउंट है और रोज सुबह उसमें कोई 86,400 रुपये जमा करा देता है| आप उन रुपयों को use करने के लिए फ्री हैं लेकिन condition ये है कि आपका दिनका बचा बेलेन्स अगले दिन उपलब्ध नहीं होगा मतलब अगर आप पूरे पैसे use नहीं करोगे तो वो शाम तक आपके अकाउंट से वापस निकाललिए जाएँगे| आप क्या करोगे? सीधी सी बातहै कि हर कोई एक एक पैसा बैंक से निकाल लेगा| हमारे real life में भी एक ऐसा ही बैंक है उसका नाम है "समय" रोज सुबह हमारे अकाउंट मे 86,400 सेकेंड्स जमाहो जाते हैं और हर शाम को हमारे उनबचे हुए सेकेंड को समय वापस ले लेता है जिन्हें हमने किसी बहुत अच्छे काम के लिए use नहीं किया है| और अगली सुबह फिर से यही प्रक्रिया चलती है| हमारा वो समय जिसे हम ठीक से इस्तेमाल नहीं कर पाए वो छीन लिया जाता है|
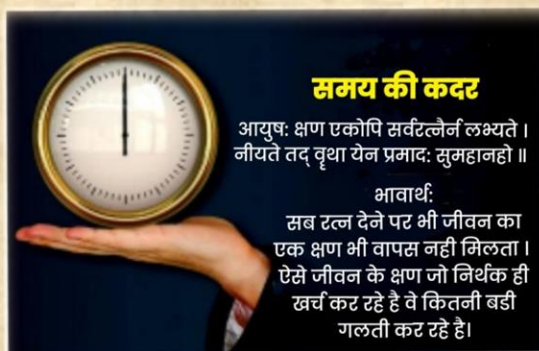
तो मित्रों, फ़ैसला अब आपके हाथ में है कि आप कैसे अपने 86,400 सेकेंड्स use करते हो या फिर इन्हे गँवाना चाहते हो| समय की कीमत का अहसास व्यक्ति को उस समय होता है जब वो बीत जाता है| ये समय आपके जीवन का वो पल है जो कभी वापस नहीं आएगा...यह लेख इसलिए है कि आज के युवा लोग समय का महत्त्व नहीं समझते और अपने समय को व्यर्थ के कामों में गँवा बैठते हैं और जब समय निकल चुका होता है तब लोगों की आँखे खुलती हैं|

प्रेरक प्रसंग—2 ये कहानी है महाभारत के समय की. महाभारत के युद्ध के बाद, युधिष्ठिर ने राजा के रूप में शासन करना शुरू किया। युधिष्ठिर अपनी दानवीरता और उदारता के लिए प्रसिद्ध था। जो कोई भी दान पाने की इच्छा से युधिष्ठिर के पास आता, वह कभी खाली हाथ नहीं लौटता । एक बार, देर रात को, एक भिखारी महल के दरवाजे पर आया और दान मांगने लगा। उस समय राजा युधिष्ठिर सो रहे थे। रानी द्रौपदी ने उन्हें जगाया,
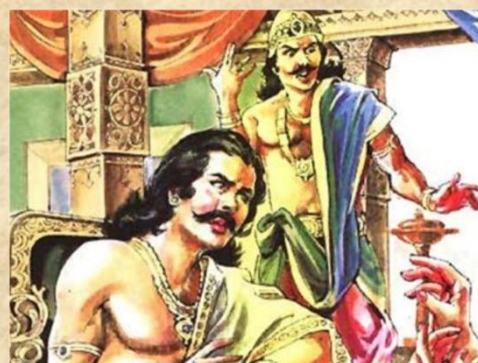
लेकिन युधिष्ठिरने कहा, "मैं बहुत थक गया हूँ। भिखारी को सुबह तक इंतजार करने के लिए कहें। कल सुबह उठने के बाद मैं उसे उसके वजन के बराबर सोने के सिक्के दूँगा। " द्रौपदी ने यह बात भीम को बताई, भीम ने जब ये बात सुनी तो वह तेजी से उस बड़ी घंटी के पास गया जो महल की छत पर थी और वो घंटी सिर्फ तब बजायी जाती थी जब राजा युधिष्ठिर कोई बड़ा युद्ध जीतकर वापस आते थे। भीम बिना रुके उस घंटी को जोर-जोर से बजाने लगा! घंटी की आवाज़ सुनकर, हर किसी को लगा की राजा युधिष्ठिर किसी महान युद्ध को जीतकर वापिस आये हैं और यह देखने के लिए सभी पांडव और राज्य के लोग वहाँ एकत्रित हो गए। काफी देर तक घंटी बजती रही। अंत में, राजा युधिष्ठिर को भी उठना पड़ा। गुस्से में उन्होंने भीम से पूछा, "तुम इतनी रात को घंटी क्यों बजा रहे हो?" भीम ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "ऐसा इसलिए है क्योंकि आज आपने बहुत बड़ी जीत हासिल कर ली है।" यह सुनकर राजा युधिष्ठिर चौंक गए और पूछा, "ये तुम क्या कह रहे हो, भला इतनी रात को मैंने कौन-सा युद्ध जीत लिया है?" भीम ने उत्तर दिया, "बड़े भाई, आज आपने समय को ही जीत लिया है। आपने महारानी से कहा कि भिखारी को दान कल सुबह मिलेगा। अब यह घोषणा तो कोई तभी कर सकता है जब वह समय के साथ जीत हासिल कर ले। क्या आप को यकीन हैं कि कल सुबह तक आप दान देने के लिए जीवित रहेंगे और या फिर ये भिखारी इसे प्राप्त करने के लिए जीवित रहेगा ?" यह सुनकर, युद्धिष्ठर को भीम की बात का एहसास हुवा और उन्होंने तुरंत उस भिखारी को अंदर बुलाया और उसे दान दे दिया।

समय-प्रेरक श्लोक

निश्चित्वा यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥

—महाभारत उद्योगपर्व अध्याय 33 (विदुर नीति)

हिंदी अनुवाद—जो व्यक्ति किसी भी कार्य-व्यवहार को निश्चयपूर्वक आरंभ करता है, उसे बीच में नहीं रोकता, समय को बरबाद नहीं करता तथा अपने मन को नियंत्रण में रखता है, वही ज्ञानी है।

He who striveth, having commenced anything, till it is completed, who never wasteth his time, and who hath his soul under control, is regarded wise.

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम् ॥

—महाभारत (शान्तिपर्व, अध्याय 277)

जो कार्य कल किया जाना है उसे पुरुष आज ही संपन्न कर ले, और जो अपराह्नमें किया जाना हो उसे पूर्वाह्न में पूरा कर ले, क्योंकि मृत्यु किसी के लिए प्रतीक्षा नहीं करती है, भले ही कार्य संपन्न कर लिया गया हो या नहीं।

कबीर के एक दोहे से—

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करेगा कब ॥

जो कल करना है वह आज ही कर ले और जिसे आज किया जाना है उसे अविलंब अभी पूरा कर ले। कभी भी प्रलय क पल आ जायेगा, तब फिर वह कार्य कब कर पाओगे?

दो० – सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।

बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु ॥

भावार्थ— शूरवीर तो युद्धमें करनी (शूरवीरताका कार्य) करते हैं, कहकर अपने को नहीं जनाते। शत्रुको युद्ध में उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रताप की डींग मारा करते हैं।

प्रासंगिकता

एक शूरवीर मनुष्य के होंसले बुलंद होते है। एक शूरवीर मनुष्य जब दृढ़ निश्चय कर लेता है तो उसे पूरा ही करके मानता है। वह आदर्श और सिद्धांतों का पालन करने वाला होता है। और इसके लिए अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े करा देने पर भी अपने पथ से विचलित नहीं होता। वह दूसरों के प्राणों की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की बाजी तक लगा डालता है, उस उदार चित्त सैनिक का जीवन किसी संत से कम नहीं है। तीर-तलवारों की वर्षा जिसके विश्वास को डगमगा नहीं सकती, जो अपने प्राण से बढ़कर राष्ट्र के गौरव और सम्मान को समझता है, वही शूरवीर इस धरती पर धन्य होता है। जिसने अपने शरीर को तिनके के समान माना और सोने को पत्थर की तरह देखा, विषय-सुखों को जिसने दुत्कार कर भगा दिया, वह गृहस्थ हो या विरक्त, सच्चा संत ही कहा जाएगा। हे मनुष्यों मरना सभी को है, पर जो आदर्श के लिए मरता है, मरना उसी का सफल है। इस संसार में जिंदगी जीते तो सभी हैं, पर जो सिद्धांत के लिए जीवित हैं, जीवन जीना उन्हीं का सार्थक है। यह जीवन चारों ओर पाप और कुमार्गों के शत्रुओं से घिरा है। जो कभी हताश नहीं होता, जो कभी निराश नहीं होता, जो कभी आशाहीन नहीं होता, जो कभी शत्रुओं के सामने आत्मसमर्पण नहीं करता, जो कभी शत्रुओं के सामने कभी हथियार नहीं डालता, वही सच्चा शूरवीर मनुष्य है। इस दुनिया में कष्ट उठाते हुए भी जिसने धर्म नहीं छोड़ा, उसी का जन्म सार्थक हुआ कहा जाएगा, उसी का जन्म सफल माना जाएगा। ।

प्रेरक प्रसंग—अश्वपति ने राज्य विस्तार तो नहीं किया पर समर्थ नागरिक तैयार करने के लिये जो भी उपाय सम्भव थे, उसने किये। यही कारण था कि उसके राज्य में सब स्वस्थ, वीर, और बहादुर नागरिक थे। काना, कुबड़ा, दीन-हीन और आलसी उनमें से एक भी न था। अश्वपति के राज्य में जन्म लेते ही बच्चे राज्याधिकारियों के नियन्त्रण में सौंप दिये जाते थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध अश्वपति स्वयं करता था। उसका हर नवयुवक चरित्र बल, दृढ़ता, शौर्य और संयम की प्रतिमूर्ति था। यही कारण था कि उस छोटे-से राज्य से भी कोई टक्कर नहीं ले पाता था।

प्रतापी सम्राट पोरस से युद्ध करने के बाद सिकन्दर की सेना ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया, उस समय सिकन्दर ने सोचा

आस-पास के छोटे राज्य ही हस्तगत क्यों न कर लिये जायें? उसको एक वक्र दृष्टि अमृतसर के समीप रावी नदी के तट पर बसे अश्वपति के राज्य पर पड़ी। सिकन्दर ने अश्वपति की वीरता की गाथाएँ पहले ही सुन रखीं थीं, उसके सिपाही भी हिम्मत हार चुके थे, इसलिये उसने मुकाबले की अपेक्षा छल से रात में अश्वपति पर आक्रमण कर दिया। युद्ध के लिये अनिश्चित अश्वपति के सैनिकों को सिकन्दर के सिपाहियों ने छल पूर्वक काटा और इस तरह यह युद्ध भी यूनानियों के हाथ रहा। महाराज अश्वपति बन्दी बना लिये गये। सिकन्दर ने अश्वपति के शौर्य की परीक्षा लेने के इरादे से उसे बन्धन मुक्त कर दिया और सन्धि कर ली। इस खुशी में दोनों नरेशों का एक सम्मिलित दरबार आयोजित किया गया। अश्वपति अपने खूँखार लड़ाका कुत्तों के लिये विश्व-विख्यात था, चार कुत्ते हमेशा अश्वपति के साथ रहते थे। जब वह दरबार में पहुँचे तब वह कुत्ते भी उनके साथ थे। सिकन्दर ने उनके पहुंचने ही व्यंग किया- "महाराज यह भारतीय कुत्ते है?"

अश्वपति ने तुरन्त उत्तर दिया- "हाँ यह छिपकर आक्रमण नहीं करते, शेरों से भी मैदान में लड़ते हैं"। यह सुनकर सिकंदर ने शेर और कुत्तों की लड़ाई का आयोजन कराने का निर्देश दिया।

प्रबंध होते ही शेर और दो कुत्तों की लड़ाई छिड़ गई। शेर ने कुत्तों को लहू लुहान कर दिया पर कुत्तों ने भी शेर के छक्के छुड़ा दिए। शेष दो कुत्ते भी छोड़ दिये गये और तब शेर को भागते ही बना। पर कुत्तों ने उसके शरीर में ऐसे दाँत चुभाये कि शेर आहत! होकर वही गिर पड़ा। अश्वपति ने ललकार कर कहा-"महाराज! आपकी सेना में कोई वीर है जो कुत्ते के दाँत शेर के माँस से अलग कर दे?" बारी- बारी से कई योद्धा उठे और कुत्तों की टाँगे पकड़ कर खींचने लगे, कुत्तों की टाँगे टूट गई पर वे उनके दाँत छुड़ा न सके। सात फुट लम्बे अश्वपति ने अपने अंग रक्षक को संकेत किया। वह उठकर शेर के पास पहुँचा और कुत्ते को पकड़ कर एक ही झटका लगाया कि शेर की हड्डी और माँस सहित कुत्ता भी खिंच गया।

सिकन्दर ने युद्ध जीत लिया था पर इस यथार्थ के आगे वह अपना सिर झुकाये बैठा था। ऐसे थे भारतीय वीर अश्वपति जिन्होंने अपने आन – बान और शान को कभी झुकने न दिया और महान योद्धा सिकंदर तक को सर झुकाने पर मजबूर कर दिया।

करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी॥

ब्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुन रासी॥

भावार्थ—योगी लोग जिनके लिए क्रोध, मोह, ममता और मद को त्यागकर योगसाधन करते हैं; जो सर्वव्यापक ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानन्द, निर्गुण और गुणों की राशि हैं।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥

महिमा निगम नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥

भावार्थ—जिनको मनसहित वाणी नहीं जानती और सब जिनका अनुमान ही करते हैं, कोई तर्कना नहीं कर सकते; जिनकी महिमा को वेद, 'नेति' कहकर वर्णन करता है और जो [सच्चिदानन्द] तीनों कालों में एकरस (सर्वदा और सर्वथा निर्विकार) रहते हैं।

प्रासंगिकता

भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य कब योग में स्थित है, यह जानना हो तो यह देखना होगा कि वशीभूत चित्त परमात्मा में लगा हुआ है या नहीं एवं उसके मन में भोगों के प्रति निर्लिप्तता का भाव पैदा
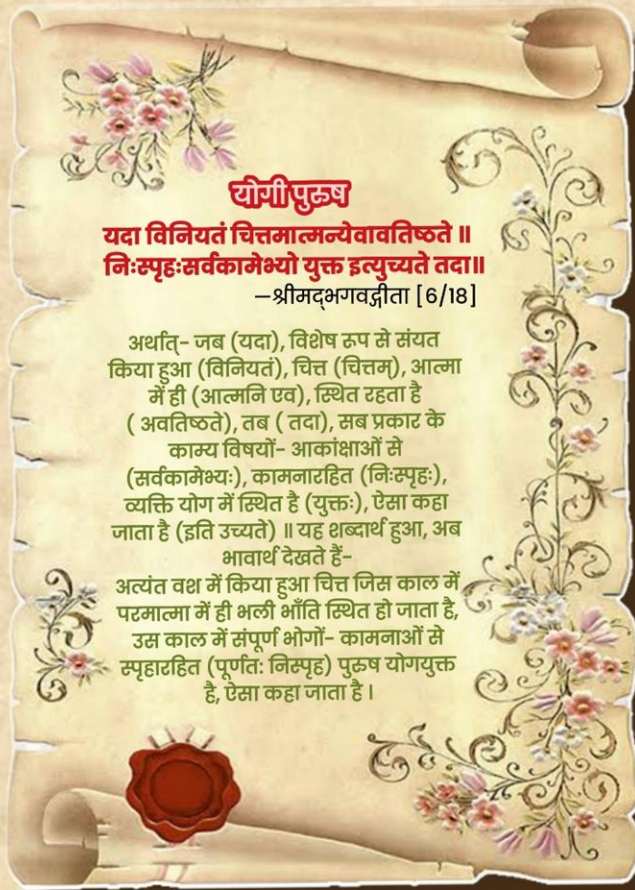
हुआ या नहीं ॥ जब- जब, जिन-जिन क्षणों में, जिस-जिस अवधि में मनुष्य इस स्थिति को प्राप्त होता है, वह युक्तः- सही अर्थों में एक योगी- एक दिव्यकर्मी कहा जाता है ॥ आहार-विहार की अति से बचने की बात कहने के तुरंत बाद वे ध्यानयोग की अति महत्वपूर्ण शर्तें बताते हैं- विनियतं चित्तं- विशेष रूप से संयत किया हुआ चित्त- सारी वृत्तियों को सिकोड़कर एकाग्र किया गया मन तथा फिर कहते हैं- च्चूआत्मनि अवतिष्ठतेज्ज् अर्थात् ऐसा चित्त फिर परमात्मा में स्थित हो, इधर-उधर नहीं तथा इसके बाद कहते हैं- निरपट: सर्वकामेभ्यः- समस्त कामनाओं की, भोग की कल्पना या इच्छा- आकांक्षा से मुक्त एवं पूर्णतः निस्पृह (कोई भी लगाव न रखने वाला, किसी भी प्रकार की रुचि न रखने वाला) व्यक्ति ही सही मायने में योगी कहलाता है।

प्राचीन भारत के योग-पुरुष:

7000 ईसा पूर्व से 800 ईसवी के बीच, भारत में हजारों तेजस्वी योगियों, सिद्धों, साधु-संतों का जन्म स्थल बना। उनमें से कुछ प्रमुख योगी थे: वशिष्ठ, भगवान कृष्ण, पाराशर ऋषि, व्यास ऋषि, अष्टावक्र, पतंजलिमानव-तंत्र को समझने और इसकी संभावनाओं को खोजने में आदियोगी जैसी कोशिश और काम उनसे पहले किसी ने नहीं किया था। उनके बाद भी हमें कोई ऐसा नहीं
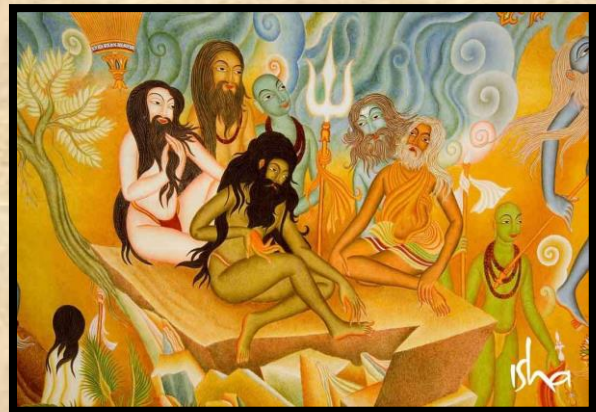
मिलता जिसका काम या योगदान उनके समान हो। उनके बाद भारत हजारों तेजस्वी योगियों, सिद्धों, साधु-संतों का जन्म स्थल बना। उनमें से कुछ प्रमुख योगी थे: वशिष्ठ, भगवान कृष्ण, पाराशर ऋषि, व्यास ऋषि, अष्टावक्र, पतंजलि आदि। योग के इतिहास में यह ऐसा युग था, जब योग की शिक्षाओं को लिखा जाने लगा और इस तरह योग की मौखिक परंपरा का असर अंत हो गया। इस अवधि में योग से संबंधित उत्कृष्ट साहित्य की एक समृद्ध परंपरा देखने को मिलती है, जैसे उपनिषद्, योग वशिष्ठ, योग सूत्र, भगवदगीता

प्रेरक प्रसंग—एक बार ऋषियों और मुनियों में विवाद छिड़ा कि किस प्रकार अल्पकाल में ही थोड़े से परिश्रम से महान् पुण्य अर्जित किया जा सकता है ? जब किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे तो
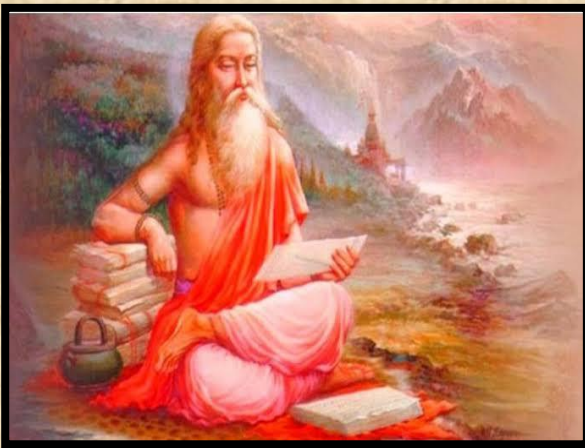
वे मुनि वेद व्यास के पास गए। व्यास ऋषि उस समय गंगा नदी पर स्नान के लिए गए हुए थे। ऋषि – मुनि भी व्यासजी के जल से बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगे। व्यासजी ने योग की शक्ति से जल के भीतर ही मुनियों के आने का उद्देश्य जान लिया। कुछ देर पश्चात् उन्होंने नदी के बाहर अपना सिर निकाला और जोर से कहा ‘कलियुग ही सबसे श्रेष्ठ है।’ यह कहकर व्यासजी ने पुनः डुबकी लगा ली। कुछ देर बाद उन्होंने अपना सिर बाहर निकाला और जोर से कहा – ‘शूद्र ही सर्वश्रेष्ठ है- शूद्रस्साधुः कलिस्साधुरित्येवं ... ‘ और फिर डुबकी लगा ली। तीसरी बार उन्होंने पानी से अपना सिर बाहर निकाला और कहा – ‘स्त्रियां ही धन्य है, वे ही साधु हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन हैं- योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरो अस्ति कः। ‘ व्यासजी कुछ देर बाद जल से बाहर निकल आए। पूजा से निवृत्त हुए तो उनका ध्यान ऋषियों की ओर गया।

व्यासजी ने उनसे पूछा – ‘साधुजनों ! मैं आप लोगों के आगमन का कारण जान सकता हूं? ऋषि बोले – ‘आप यह बताने की कृपा करें कि आपने यह क्यों कहा कलियुग ही सबसे श्रेष्ठ है, शूद्र ही सर्वश्रेष्ठ है और स्त्रियां ही धन्य हैं?

कलिस्साध्विति यत्प्रोक्तं शूद्रः साध्विति योषितः।

यदाह भगवान् साधु धन्याश्चेति पुनः पुनः।।

इस पर व्यास जी ने कहा – 'हजारों वर्ष पहले तप करने से ही पुण्य प्राप्त होता था, वह कलियुग में केवल भगवान् का नाम लेने से ही प्राप्त हो जाता है। शूद्र सफाई का काम करते हैं और मल-मूत्र तक साफ करते हैं। इसी प्रकार स्त्रियां कुटुंब की सेवा में दिन-रात लगी रहती हैं। वे अपने सेवा कार्यों से ही महान् पुण्यों का अर्जन करती हैं। इसीलिए मैंने कहा था कि कलियुग और शूद्र सर्वश्रेष्ठ धन्य हैं। ऋषियों ने कहा 'महानुभाव हम जिस काम के लिए आए थे, वह अपने आप पूरा हो गया।

योगी पुरुष के गुण

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता(6.46)

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ होता है, ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ होता है, और कर्म करने वाले व्यक्तियों से भी योगी श्रेष्ठ होता है-यह मेरा अभिमत है, इसलिये हे अर्जुन ! योगी बनो।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।। 12.14।।

—श्रीमद्भगवद्गीता(12.14)

सब प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित, सबका मित्र (प्रेमी) और दयालु, ममतारहित, अहंकाररहित, सुखदुःखकी प्राप्तिमें सम, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट, योगी, शरीरको वशमें किये हुए, दृढ़ निश्चयवाला, मेरे में अर्पित मन-बुद्धिवाला जो मेरा भक्त है, वह मेरेको प्रिय है।
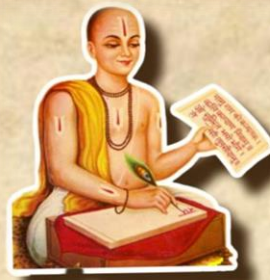
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥ करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥

भावार्थ—शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देता है। जो कर्म करता है वही फल पाता है। ऐसी वेद की नीति है, यह सब कोई कहते हैं।

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥ काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं॥

भावार्थ—जन्म-मरण, सुख-दुःख के भोग, हानि-लाभ, प्यारों का मिलना-बिछुड़ना, ये सब हे स्वामी! काल और कर्म के अधीन रात और दिन की तरह बरबस होते रहते हैं

।

छं०-जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा। संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥ एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं। एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

भावार्थ—व्यर्थ बकवास करके अपने सुन्दर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो! संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं-पाटल (गुलाब), आम और कटहल के समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं, और एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं। इसी प्रकार [पुरुषों में] एक कहते हैं [करते नहीं]; दूसरे कहते और करते भी हैं और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणी से कहते नहीं।

तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥ पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

भावार्थ—हे तात! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्य कर्म में त्रुटि) करने से जगत में यश जाता रहेगा और निन्दा होगी। दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं। पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं।

प्रासंगिकता

जीवन में मनुष्य के कर्म ही उसके भाग्य का निर्माण करते हैं। दुनिया में जो भी लोग हैं वो अपना कर्म करते हैं लेकिन किसी को इसका अच्छा परिणाम मिलता है तो कोई अपने नतीजों से खुश नहीं हो पाता। दरअसल मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। वस्तुत: मनुष्य के द्वारा किया गया कर्म ही प्रारब्ध बनता है। इसे यूं समझें कि किसान जो बीज खेत में बोता है, उसे ही फसल के रूप में वह बाद में काटता है।

गीता में कहा गया है कि मनुष्य फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करे। मनुष्य के लिए सबसे अनिवार्य है कर्म। विभिन्न पुस्तकों के माध्यम से मनीषियों द्वारा इस संसार सागर को पार करने अथवा मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग बतलाए गए हैं-भक्ति, ज्ञान और कर्म। जो व्यक्ति नियमित रूप से कर्म करता हुआ व्यस्त रहता है उसे बाकी चीजों के लिए न तो समय ही मिल पाता है और न उसे बाकी चीजों की जरूरत ही रह जाती है।

भारतीय मनीषियों में स्वामी विवेकानंद ने तो कर्म को ही सबसे अधिक महत्व दिया है। उनका विचार है कि एक बंद कमरे में बैठकर धर्मग्रंथ पढ़ने से मैदान में जाकर फुटबॉल खेलना श्रेयस्कर है। उनके लिए मानव मात्र की सेवा ही सबसे बड़ी आध्यात्मिकता है जो सात्विक और निष्काम कर्म का ही एक उत्तम रूप है। कुछ लोग अच्छे साधक भी होते हैं इसमें संदेह नहीं, लेकिन थोड़ी सफलता प्राप्त कर लेने के बाद प्राय: अहंकारी हो जाते हैं। भक्ति और ज्ञान की तरह कर्म

के मार्ग में ये खतरे नहीं हैं। निरंहकार रहकर अपने कर्म, सेवा अथवा मजदूरी द्वारा दूसरों की मदद करने वाला किसी भी प्रकार से एक योगी से कम नहीं। एक किसान अथवा मजदूर सबसे बड़ा योगी है, क्योंकि पूरे संसार के लोगों का पेट भरने की खातिर वह चुपचाप कर्म रूपी मौन साधना में रत रहता है।

प्लेटो के विख्यात ग्रंथ 'दि रिपब्लिक'के अत्यंत दीर्घ व्याख्यान का सार भी यही है कि हर मनुष्य को अपना काम करना चाहिये। पंच तंत्र की कथाओं में भी अपने काम के महत्व को बताया गया है। उपनिषदों में तो सत्कर्म की शिक्षा दी गयी है। परन्तु क्या आज हम अपने देश में इन शिक्षाओं को लोगों को अपनाते या पालन करते हुये पाते हैं. प्लेटो अपने काम को करने को ही न्याय(धर्म) बताता है. हमारे यहाँ इसी को जीवन का लक्ष्य माना गया है।

प्रेरक प्रसंग —

गुरुकुल में अपनी शिक्षा पूरी करके एक शिष्य अपने गुरु से विदा लेने आया। गुरु ने कहा- वत्स, यहां रहकर तुमने शास्त्रों का समुचित ज्ञान प्राप्त कर लिया, किंतु कुछ उपयोगी शिक्षा शेष रह गई है। इसके लिए तुम मेरे साथ चलो।

शिष्य गुरु के साथ चल पड़ा। गुरु उसे गुरुकुल से दूर एक खेत के पास ले गए। वहां एक किसान खेतों को पानी दे रहा था।

गुरु और शिष्य उसे गौर से देखते रहे। पर किसान ने एक बार भी उनकी ओर आंख उठाकर नहीं देखा। जैसे उसे इस बात का अहसास ही न हुआ हो कि पास में कोई खड़ा भी है।

वहां से आगे बढ़ते हुए उन्होंने देखा कि एक लुहार भट्ठी में कोयला डाले उसमें लोहे को गर्म कर रहा था। लोहा लाल होता जा रहा था। लुहार अपने काम में इस कदर मगन था कि उसने गुरु-शिष्य की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया।
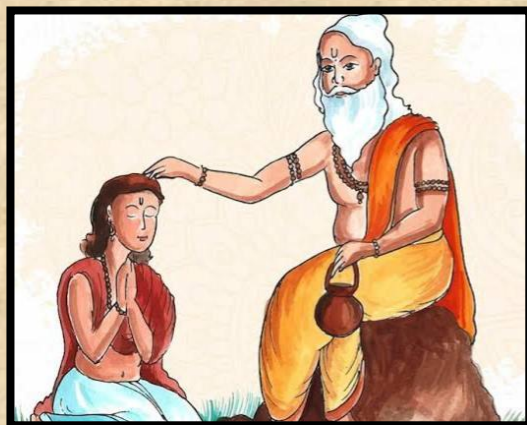
गुरु ने शिष्य को चलने का इशारा किया। फिर दोनों आगे बढ़े। आगे थोड़ी दूर पर एक व्यक्ति जूता बना रहा था। चमड़े को काटने, छीलने और सिलने में उसके हाथ काफी सफाई के साथ चल रहे थे। गुरु ने शिष्य को वापस चलने को कहा।

शिष्य समझ नहीं सका कि आखिर गुरु का इरादा क्या है? रास्ते में चलते हुए गुरु ने शिष्य से कहा- वत्स, मेरे पास रहकर तुमने शास्त्रों का अध्ययन किया लेकिन व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा बाकी थी। तुमने इन तीनों को देखा। ये अपने काम में संलग्न थे। अपने काम में ऐसी ही तल्लीनता आवश्यक है, तभी व्यक्ति को सफलता मिलेगी।

इस दुनिया में बहुत से ऐसे लोग है जो अपने काम करने के तरीके को अलग से करते है| कुछ लोग है जो मेहनत को काम वैल्यू देते है और कुछ लोग है जो भाग्य को ही सबकुछ समझते है |

एक बहुत ही घना जंगल था उसमे एक महात्मा जी रहते थे , जंगल एक नदी के बीच में था और नदी के दोनों किनारो पर दो राजा रहते थे | दोनों राजा एक दूसरे के दुसमन थे , दोनों एक दूसरे को देखना पसंद नहीं करते थे | लेकिन एक बात दोनों के लिए एक ही था की कोई भी काम के लिए वो एक बार महात्मा जी के पास जरूर आते थे। दोनों राजावो में गुस्सा बढ़ गया और दोनों ने सोच लिया अब युद्ध से ही निपटारा होगा। सबसे पहले जो राजा महात्मा जी के पास पंहुचा और सारी बात को बताया तो महात्मा जी ने बोला – राजन आप के भाग्य में यह युद्ध हारना लिखा है । राजा बहुत हे उदाश हो गया और आशिर्बाद लेकर अपने महल में आ गया और सब से बोला कफ़न बाँध कर ही निकलो जो होगा देखा जायेगा , या तो मर जायेंगे या मार कर आएंगे ।दूसरी तरफ दूसरा राजा आया और बोला महात्मा जी मेरा क्या होगा। महात्मा जी ने मुस्कुरा कर बोला राजन यह युद्ध जीतना आप के भाग्य में लिखा है। राजा बहुत ही खुश हो गया और अपने राज्य में आकर सबको यह बात बता दिया। फिर क्या था अगले दिन जब दूसरा राजा युद्ध के लिए जा रहा था , तभी उसक घोड़े कीएक नाल टूट गया।| मंत्री ने बोला राजन बदल लो , लेकिन राजा को बहुत ही घमंड था। उसने बोला हम तो युद्ध जीत रहे है , फिर चलो कोई बात नहीं। राजा युद्ध में पहुंच गया और दोनों तरफ की सेना एक दूसरे पर टूट गयी। थोड़ी देर बाद दोनों राजा एक दूसरे के सामने आ गए और दूसरे राजा के घोड़े का नाल टूट गया और पहले राजा जो की हारने वाला था। दूसरे राजा को बंदी बना लिया । जीत के बाद पहला राजा महात्मा जी के पास गया और बोला आप ने तो बोला था मैं हार जाऊंगा , लेकिन मैं तो जीत गया | फिर महात्मा जी ने बोला , राजन आप के भाग्य में यही लिखा था। लेकिन आप ने अपने मेहनत से अपने भाग्य को भी बदल दिया।

कर्म पद्धति

(भर्तहरि लिखित नीतिशतकम् से)

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं ।
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ॥
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु संचितानि ।
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥

मनुष्य को सुन्दर आकृति, उत्तम कुल, शील, विद्या और खूब अच्छी तरह की हुई सेवा – ये सब कुछ फल नहीं देते; किन्तु पूर्व के किए हुए कर्म ही, समय पर, वृक्ष की तरह फल देते हैं ।

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा ।
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ॥
फलं कर्मायत्तं किमरगणैः किं च विधिना ।
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥

देवताओं को प्रणाम करता हूँ, पर वे भी दुष्ट विधि के वस में हैं। तब वह विधि वंदनीय है, पर वह भी कर्म के अनुसार निश्चित फल देता है। यदि फल कर्म ही पर निर्भर है, तब दूसरों की क्या जरूरत? विधि से भी क्या प्रयोजन? इसलिए कर्म को ही प्रणाम जिस पर विधि का भी कुछ भी वस नहीं चलता।

तो दोस्तों इस कहानी से हम लोगो को यही सीख मिलता है की , भाग्य भी उनके साथ होती है जो लोग मेहनत से काम करते है |

दो० – सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।

हानि लाभ जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥

भावार्थ—मुनिनाथने विलखकर (दुःखी होकर) कहा- हे भरत ! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान् है । हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश ये सब विधाता के हाथ हैं॥

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥

तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृप नाहीं॥

भावार्थ— ऐसा विचारकर किसे दोष दिया जाय? और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाय? हे तात! मन में विचार करो। राजा दशरथ सोच करने योग्य नहीं हैं।

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना

भावार्थ— सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिये जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय- भोग में ही लीन रहता है। उस राजा का सोच करना चाहिए जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्यारी नहीं हैं।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥

सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥

भावार्थ— उस वैश्य का सोच करना चाहिए जो धनवान होकर भी कंजूस है और जो अतिथि सत्कार तथा शिवजी की भक्ति करने में कुशल नहीं है। उस शूद्रका सोच करना चाहिए जो ब्राह्मणों (आज का अर्थ गुरुजनों) का अपमान करने वाला, बहुत बोलने वाला, मान-बड़ाई चाहने वाला और ज्ञान का घमंड रखने वाला है।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥

सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥

भावार्थ— पुनः उस स्त्री का सोच करना चाहिये जो पति को छलने वाली, कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारिणी है। उस ब्रह्मचारी का सोच करना चाहिए जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत को छोड़ देता है और गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता।

दो० – सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।

सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥

भावार्थ— उस गृहस्थ का सोच करना चाहिये जो मोहवश कर्ममार्ग का त्याग कर देता है; उस संन्यासी का सोच करना चाहिए जो दुनिया के प्रपञ्च में फँसा हुआ है और ज्ञान-वैराग्य से हीन है।

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥

सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥

भावार्थ— वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है जिसको तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं। सोच उसका करना चाहिए जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करनेवाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई- बन्धुओं के साथ विरोध रखने वाला है।

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥

सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जन होई॥

भावार्थ— सब प्रकार से उसका सोच करना चाहिए जो दूसरों का अनिष्ट करता हैं, अपने ही शरीर का पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है। और वह तो सभी प्रकार से सोच करने योग्य है जो छल छोड़कर हरि का भक्त नहीं होता।

प्रासंगिकता

उपर्युक्त चौपाइयों में अयोध्या के कुल गुरु वशिष्ट मुनि भरत जी यह समझा रहे हैं कि विधाता द्वारा निर्मित इस संसार में द्वन्दता फैली हुई है जैसे– जन्मा है तो उसका मरण निश्चित है, इसी प्रकार हानि–लाभ, सुख-दुख यश और अपयश आदि। जैसे कि गीता में भी यह सब बातें दूसरे अध्याय में वर्णित है– **सुख दु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।** अतः राजा दशरथ अर्थात आपके पिता इस समय सोच करने योग्य नहीं है। सोच तो इस बात का करना चाहिए कि संसार में लोग अपने अपने धर्म और कर्म को भूले बैठे हैं। ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं रहा, राजा राजा नहीं, मंत्री, सेवक ,समृद्ध व्यक्ति, विद्यार्थी, गुरु, वैद्य आदि इनकी जो कर्म है वास्तव में वह कर्तव्यनिष्ठा से नहीं कर रहे हैं। अतः कौशल राज दशरथ जी सोच करने योग्य कदापि नहीं है, जिनका प्रभाव चौदह लोकों में प्रगट है हे भरत तुम्हारे पिता जैसा राजा तो न हुआ न है और न अब
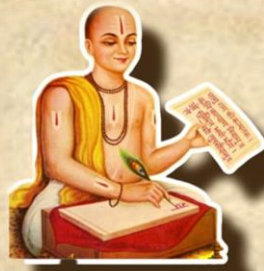
भावार्थ — परन्तु कोई भी काम हो, उसे अनुचित उचित खूब समझ-बूझकर किया जाय तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान् कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी कामको करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं।

प्रासंगिकता

बिना विचारे, करो न कोई काम लघुकथा—एक बार एक औरत ने अपने घर में एक नेवला पाल रखा था, उस औरत का एक छोटा-सा बालक भी था। औरत जब भी बाहर जाती बालक को घर पर ही छोड़ जाती। उसे विश्वास था कि नेवला उसके बालक का बहुत ध्यान रखता है। एक दिन औरत जब बाज़ार से वापस आ रही थी, तो उसने देखा की नेवला बाहर था और उसके मुहँ पर बहुत सारा खून लगा था औरत बहुत डर गई और उसे लगा कि नेवला उसके बालक को खा गया और उसने बिना सोचे नेवले को मार दिया। बाद में पता चला है कि नेवले ने साँप को मारकर उसके बालक की जान बचाई। बाद में औरत को बहुत पछतावा हुआ। इसलिए हमें बिना विचारे,कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

जो करो सोच समझ कर करो – आइए एक शिक्षाप्रद कहानी के माध्यम से जानते हैं, एक बार एक विषैला सांप नदी के किनारे लेटा धूप का आनन्द ले रहा था कि तभी न जाने कहां से एक काला कौआ उसके ऊपर झपटा और अपने पंजों में दबाकर आकाश में उड़ गया। सांप बुरी तरह ऐंठ कर खुद को कौए के पंजों से छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा, मगर लाख प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं हुआ। यह देखकर सांप ने गुस्से से फुंफकराते हुए कौए के शरीर में अपने जहरीले दांत गाड़ दिए। कुछ ही क्षणों में जहर का प्रभाव दिखने लगा। काला कौआ दर्द से फड़फड़ाता हुआ आकाश से धरती पर आ गिरा। सांप मरते हुए कौए के पंजों से निकल कर भाग गया। कौआ अब मौत के दरवाजे पर खड़ा था। सांप का जहर उसके शरीर में पूरी तरह से फैल चुका था। मरने से कुछ क्षण पहले उसने सोचा- 'आह! क्या मुझे पहले नहीं सोचना चाहिए था? यह मेरी भूल थी कि मैंने बिना सोचे-विचारे एक जहरीले सांप को उठा लिया। वही सांप आखिर मेरी मौत का कारण बना।

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥

अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥

भावार्थ— पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार-ये जगत में बार-बार होते और जाते हैं। परन्तु जगत में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदयमें ऐसा विचारकर हे तात! जागो।

प्रासंगिकता

भगवान् राम और उनके भाइयों का भ्रातृ प्रेम अतुलनीय एवं अत्यंत प्रेरणाप्रद है। राम को अपने तीनों भाई प्राणों से भी अधिक प्रिय थे। लक्ष्मण के बिना तो उन्हें नींद भी नहीं आती थी। तो लक्ष्मण भी राम को अपने शरीर से बढ़कर मानते थे। भरत ने अपने बड़े भाई राम के लिए राज्य को ठोकर मार दी। शत्रुघ्न अपने तीनों बड़े भाइयों का अनुकरण करने वाले थे। भगवान् राम अपने भाइयों से कैसे प्रेम था इसे एक उद्धरण से समझिये। लक्ष्मण

के भरत से कुपित होने पर राम लक्ष्मण से कहते हैं –"हे लक्ष्मण ! मैं सत्य कहता हूँ कि मैं राज्य की कामना भी भाइयों के

पालन और सुख के लिए ही करता हूँ। और मानद ! तुम्हारे, भरत और शत्रुघ्न के बिना मुझे जिस किसी वस्तु से सुख मिलता हो अग्नि उसे भस्म कर डालें।"

आज जहां वर्तमान समय में थोड़ी सी सम्पदा के लिए भाई- भाई के खून का प्यासा है वहीं राम और उनके भाइयों का प्रेम इतिहास का ऐसा अद्वितीय उदाहरण है जिसमें राज्य व सत्ता के चार-चार दावेदार होते हुए भी चौदह वर्ष तक राज सिंहासन खाली पड़ा रहा। कोई भाई राजा बनने को राजी नहीं था। ऐसा दृश्य संसार में अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रेरक प्रसंग: रामायण से भ्रातृ-प्रेम: भोग नहीं त्याग सर्वोपरि!

भरतजी तो नंदिग्राम में रहते हैं, शत्रुघ्नलालजी महाराज उनके आदेश से राज्य संचालन करते हैं।

एक एक दिन रात करते करते, भगवान को वनवास हुए तेरह वर्ष बीत गए। एक रात की बात है, कौशल्या जी को सोते में अपने महल की छत पर किसी के चलने की आहट सुनाई दी। नींद खुल गई। पूछा कौन है ? मालूम पड़ा श्रुतिकीर्तिजी हैं।

नीचे बुलाया गया श्रुति, जो सबसे छोटी हैं, आईं, चरणों में प्रणाम कर खड़ी रह गईं।

राममाता ने पूछा, श्रुति ! इतनी रात को अकेली छत पर क्या कर रही हो बिटिया ? क्या नींद नहीं आ रही ? शत्रुघ्न कहाँ है ?

श्रुति की आँखें भर आईं, माँ की छाती से चिपटी, गोद में सिमट गईं, बोलीं, माँ उन्हें तो देखे हुए तेरहवर्ष हो गए।

उफ ! कौशल्या जी का कलेजा काँप गया। तुरंत आवाज लगी, सेवक दौड़े आए। आधी रात ही पालकी तैयार हुई, आज शत्रुघ्नजी की खोज होगी, माँ चलीं।

आपको मालूम है शत्रुघ्नजी कहाँ मिले ?

अयोध्या के जिस दरवाजे के बाहर भरतजी नंदिग्राम में तपस्वी होकर रहते हैं, उसी दरवाजे के भीतर एक पत्थर की शिला है, उसी शिला पर, अपनी बाँह का तकिया बनाकर लेटे मिले।

माँ सिराहने बैठ गईं, बालों में हाथ फिराया तो शत्रुघ्नजी ने आँखें खोलीं, माँ !

उठे, चरणों में गिरे, माँ ! आपने क्यों कष्ट किया ? मुझे बुलवा लिया होता।

माँ ने कहा, शत्रुघ्न ! यहाँ क्यों ? शत्रुघ्नजी की रुलाई फूट पड़ी, बोले- माँ ! भैया राम पिताजी की आज्ञा से वन चले गए, भैया लक्षमण भगवान के पीछे चले गए, भैया भरत भी नंदिग्राम में हैं, क्या ये महल, ये रथ, ये राजसी वस्त्र, विधाता ने मेरे ही लिए बनाए हैं ? कौशल्याजी निरुत्तर रह गईं।

देखो यह रामकथा है... यह भोग की नहीं त्याग की कथा है, यहाँ त्याग की प्रतियोगिता चल रही है, और सभी प्रथम हैं, कोई पीछे नहीं रहा। चारो भाइयो का प्रेम और त्याग एक दूसरे के प्रति अलौकिक है।

प्रेरक प्रसंग: 2 एक शहर में रमेश और महेश नाम के दो सगे भाई रहते थे। उनके बीच में संपत्ति के बँटवारे को लेकर मतभेद थे जो कि इतने बढ़ गये थे कि उनमें आपस में बातचीत भी बंद हो गई थी।

एक दिन महेश एक दुर्घटना में गंभीर रूप से घायल हो गया और उसे अस्पताल ले जाया गया। वहाँ पर चिकित्सकों ने उसका तुरंत आपरेशन करने का निर्णय लिया और इसके लिए रक्त की आवश्यकता थी। महेश का ब्लड ग्रुप बहुत ही दुर्लभ था जो कि बहुत तलाश करने पर भी उपलब्ध नहीं हो पा रहा था। जब इस बात की जानकारी रमेश को लगी तो वह तुरंत भागा भागा अस्पताल आया और अपना खून देने की पेशकश की क्योंकि उसका ब्लड ग्रुप भी महेश के ब्लड ग्रुप से मेल खाता था।

यह जानकर रमेश के पहचान वालों ने उसे समझाना शुरू किया कि तुम रक्तदान मत करो। यह तुम्हारा सगा भाई होते हुए भी तुम्हारे हिस्से की भी संपत्ति हडपने की फिराक में था। ऐसे व्यक्ति से इतनी सहानुभूति क्यों घ् वहाँ पर महेश के हितैषियों ने भी उसके परिजनों को कहने लगे कि रमेश भाई होते हुए भी किसी दुश्मन से कम नहीं है। वह महेश के हिस्से की संपत्ति को भी हड़पना चाहता है। ऐसे व्यक्ति से कोई भी सहयोग लेना उचित नहीं है।

इतना बोलने के बाद भी रमेश ने अपना खून दिया और महेश ने उसे स्वीकार कर लिया और आपरेशन सफलतापूर्वक संपन्न हो गया। अपने भाई को मुसीबत में देखकर उसके प्रति उमड़े प्रेम ने दोनों के बीच के संपत्ति के बँटवारे के विवाद को सुलझा दिया और वे पुनः एक हो कर रहने लगे।

वेद में बड़े सुन्दर शब्दों में कहा गया है-

मा भ्राता भ्रातरं द्विन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥
(अथर्व वेद 3.30.3)

"भाई-भाई से कभी द्वेष न करें। बहन-बहन से कभी द्वेष न करें। अपितु सभी सम्यक प्रकार से एक दूसरे का सम्मान करते हुए, परस्पर मिलकर एक मन व व्रत वाले होकर एक दूसरे से प्रेमपूर्वक मधुर शब्दों में सम्भाषण, बातचीत किया करें।"

बहुबिधि संभु सासु समुझाई। गवनी भवन चरन सिरु नाई।
जननीं उमा बोलि तब लीन्ही। लै उछंग सुंदर सिख दीन्ही॥

भावार्थ— शिवजी ने बहुत तरह से अपनी सास को समझाया। तब वे शिवजी के चरणों में सिर नवाकर घर गयीं। फिर माताने पार्वती को बुला लिया और गोद में बैठाकर यह सुन्दर सीख दी—

करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥
बचन कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी॥

भावार्थ—हे पार्वती ! तू सदा शिवजी के चरण की पूजा करना, नारियों का यही धर्म। उनके लिये पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है। इस प्रकार की बातें कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आये और उन्होंने कन्या को छाती से चिपटा लिया।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥

भावार्थ—माता, पिता, बहन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन (बन्धु- बान्धव), सहायक और सुन्दर, सुशील और सुख देनेवाला पुत्र–

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥

भावार्थ—हे नाथ! जहाँ तक, स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सभी सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पति के बिना स्त्री के लिये यह सब शोक का समाज है।

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहूँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥

भावार्थ—भोग रोग के समान हैं, गहने भार रूप हैं और संसार यम यातना (नरक की

पीड़ा) के समान है। हे प्राणनाथ! आपके बिना जगत में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है।

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

भावार्थ—जैसे बिना जीव के देह और बिना जलके नदी, वैसे ही हे नाथ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ! आपके साथ रहकर आपका शरद् [पूर्णिमा] के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे।

दो० – खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।

नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल॥

भावार्थ—हे नाथ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोंपड़ी) ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी।

चौ० – बनदेवीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥

कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥

भावार्थ—उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुर के समान मेरी सार-सँभार करेंगे; और कुशा और पत्तों की सुन्दर साथरी (बिछौना) ही प्रभु के साथ कामदेव की मनोहर तोशकके समान होगी।

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी

भावार्थ—कन्द, मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और [वनके] पहाड़ ही अयोध्याके सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे। क्षण-क्षण में प्रभु के चरण कमलों को देख-देखकर मैं ऐसी आनन्दित रहूँगी जैसी दिन में चकवी रहती है।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥

प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥

भावार्थ—हे नाथ! आपने वनके बहुत-से दुःख और बहुत-से भय, विषाद और सन्ताप कहे। परन्तु हे कृपानिधान! वे सब मिलकर भी प्रभु (आप) के वियोग [से होनेवाले दुःख] के लवलेश के समान भी नहीं हो सकते।

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥

बिनती बहुत करों का स्वामी करुनामय उर अंतरजामी॥

भावार्थ—ऐसा जीमें जानकर, हे सुजान शिरोमणि! आप मुझे साथ ले लीजिये, यहाँ न छोड़िये। हे स्वामी!

तुलसीदास जी द्वारा वर्णित पतिव्रत धर्म:- श्रीराम बन गमन के समय श्रीराम अत्रि मुनि के आश्रम जाते हैं तब श्री सीता-अनसूया मिलन भी हुआ है और श्री सीताजी को अनसूया जी के द्वारा पतिव्रत धर्म बतलाया गया है जो कुछ इसप्रकार है—

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥

बिनती बहुत करों का स्वामी करुनामय उर अंतरजामी॥

भावार्थ—और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाए, जो नित्य-नये, निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषिपत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणी से स्त्रियों के कुछ धर्म बखानकर कहने लगीं।

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥

अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

भावार्थ—हे राजकुमारी! सुनिये -माता, पिता, भाई सभी हित करने वाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमा तक ही [सुख] देनेवाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो [मोक्षरूप] असीम [सुख] देनेवाला है।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥

भावार्थ—वह स्त्री अधम है जो ऐसे पति की सेवा नहीं करती।धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन-

ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥ ५॥

भावार्थ—ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति-भाँति के दुःख पाती है। शरीर, वचन और मनसे पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिए बस, यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

प्रासंगिकता

शास्त्रों में पतिव्रत धर्म की महिमा को मुक्त कण्ठ से वर्णन किया गया है और बताया गया है कि पतिपरायणा नारी वह सद्गति सहज में प्राप्त कर लेती है। योगी ती एवं ज्ञान-ध्यानी बड़ी कठिनाइयाँ सहते हुए प्राप्त करते हैं। पतिव्रता नारियों के गौरवमय चरित्रों से भारतीय इतिहास का पन्ना – पन्ना भरा पड़ा है।

अन्धे पति से अपनी स्थिति अच्छी रहने देने की अनिच्छुक धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने आँखों में आजीवन पट्टी बाँधे रहने का व्रत लिया और उसे आजीवन निभाया। शैव्या ने हरिश्चन्द्र के साथ, दमयन्ती ने नल के साथ, सीता ने राम के साथ कठिन समय आने पर अपने त्याग और प्रेम का अद्भुत परिचय दिया। सत्यवती ने सत्यवान के साथ, सुकन्या ने वृद्ध च्यवन के साथ कितना उत्कृष्ट सम्बन्ध निवाहा ? अरुन्धती, अनुसूया, बेहुला, शकुन्तला, भारती, आदि कितनी ही नारियों के ऐसे दिव्य चरित्र मिलते हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि पतिपरायणता को इस देश का नारी समाज अत्यन्त उच्च भावनाओं के साथ निबाहता रहा है।

पतियों के साथ परलोक में भी रहने की भावना से प्रेरित होकर उनके मृत शरीरों के साथ जलकर कितनी ही नारियाँ इस बात का परिचय देती रही हैं कि उनने आदर्श के लिए चिता में जीवित जलने का मर्मान्तक कष्ट सहकर भी भावनाओं को ऊँचा उठाये रहना उचित समझा। पतियों की शान पर रत्ती भर भी आँच न आने देने और पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए चित्तौड़ की रानियों ने जो अपूर्व बलिदान का परिचय दिया उसकी महिमा किन शब्दों में कही जाय? अभी भी स्थान-स्थान पर सतियों के मन्दिर और स्मारक जहाँ-तहाँ देखने को मिलते है, इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में भारतीय नारी ने अपने आदर्शवाद की कितने कष्ट सहकर भी रक्षा की है।

पतिव्रत धर्म को एक योग साधन माना गया है। उसका अवलम्बन करने से नारी को आध्यात्मिक उत्कर्ष श्रेष्ठ सद्गति का प्राप्त होना स्वाभाविक है। आत्मसमर्पण एक उच्च स्तरीय साधना है। भगवान को भक्त जब अपना समर्पण करता है तो वह अपने 'अहम्' को समाप्त कर देता है और स्वतन्त्र इच्छाओं का परित्याग कर भगवान की इच्छा को अपनी इच्छा बना लेता है। इस प्रकार द्वैत को मिटाने और अद्वैत को प्राप्त करने का साधन बन जाता है। 'तृष्णा, अहंता, कामना, लोभ, मोह, मान और स्वार्थ की समाप्ति आत्म-समर्पण के साथ ही होती है और साधक को वह मनोभूमि प्राप्त होती है जिसमें भक्ति-मार्ग की सारी कठिनाइयों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है। गीता में आत्म-समर्पण योग को साधना मार्ग का मुकुट-मणि कहा है। योगी अरविंद तथा अन्य अनेक तत्व- दर्शियों ने इसी माध्यम से आत्मोत्कर्ष का प्रयास किया और उसे उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही उसको पाया भी जैसा कि शास्त्रकारों ने वर्णन किया है।

पर-पुरुष से कुकर्म न करने का नाम ही पतिव्रत नहीं है। यह तो उसका एक छोटा सा अंग मात्र है। वस्तुतः आत्म-समर्पण की भावना का नाम ही पतिव्रत धर्म है। उसका स्तर ईश्वर भक्ति जैसा होता है। इस आध्यात्मिक साधना को अपनाने वाली नारी अहंताजन्य अगणित पापदोषों से मुक्त होकर द्वैत की मंजिल पार करती हुई अद्वैत की ब्रह्म निर्वाण की जीवन स्थिति प्राप्त करती है। और अपने सद्गुणों के कारण जिस घर में रहती है वहाँ स्वर्गीय सुख-शांति का वातावरण प्रस्तुत कर देती है। पतिव्रत का यह एक ही लाभ भौतिक दृष्टि से इतना बड़ा है कि उसे अन्य सफलताओं एवं सम्पन्नताओं से कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर माना जायगा। दो आत्माएँ एक बनकर जब जीवन यापन करती हैं तो उनका बल साहस एवं अन्तस्तल इतना अधिक विकसित होने लगता है। जिसके माध्यम से अनेक कठिनाइयों से लड़ते हुए प्रगति पथ पर बढ़ते चलना और शक्तिमय सार्थक जीवनयापन कर सकना सहज ही संभव हो जाता है। प्रगतिशील लोगों के जीवन में उनकी धर्मपत्नियों का भारी सहयोग रहा है। यदि उन्हें ऐसी नारी न मिली होती जो मनोबल बढ़ाने और जीवन को व्यवस्थित रखने में सहायता कर सके तो सम्भवतः वे गिरी स्थिति में ही गुजर करते और महापुरुष एवं प्रगतिशील बनने के लाभ से वंचित हो रह जाते । पतिव्रता नारी किसी पति के लिए एक दैवी वरदान ही कही जा सकती है।

प्रेरक प्रसंग — महाभारत अनुशासन पर्व के दानधर्म पर्व के अंतर्गत अध्याय 123 में पतिव्रता स्त्रियों के कर्तव्य का वर्णन हुआ है। युधिष्ठिर का प्रश्न: वैशम्पायन जी कहते हैं- जनमेजय! युधिष्ठिर ने पूछा- सम्पूर्ण धर्मज्ञों में श्रेष्ठ पितामह! साध्वी स्त्रियों के सदाचार का क्या स्वरूप है? यह मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूँ। उसे मुझे बताइये।

भीष्म द्वारा शाण्डिली और सुमना का संवाद का वर्णन करना। भीष्म जी कहते हैं- राजन! देवलोक की बात है- सम्पूर्ण तत्त्वों को जानने वाली सर्वज्ञा एवं मनस्विनी शाण्डिली देवी से केकयराज की पुत्री सुमना ने इस प्रकार प्रश्न किया-'कल्याणि! तुमने किस बर्ताव अथवा किस सदाचार के प्रभाव से समस्त पापों का नाश करके देवलोक में पदार्पण किया है? 'तुम अपने तेज से अग्नि की ज्वाला के समान प्रज्वलित होे रही हो और चन्द्रमा की पुत्री के समान अपनी उज्ज्वल प्रभा से प्रकाशित होती हुई स्वर्ग-लोक में आयी हो। निर्मल वस्त्र धारण किये थकावट और परिश्रम से रहित होकर विमान पर बैठी हो। तुम्हारी मंगलमयी आकृति है, तुम अपने तेज से सहस्रगुनी शोभा पा रही हो। 'थोड़ी- सी तपस्या थोड़े-से दान या छोटे-मोटे नियमों का पालन करके तुम इस लोक में नहीं आयी हो। अतः अपनी साधना के सम्बन्ध में सच्ची-सच्ची बात बताओ'।

सुमना के इस प्रकार मधुर वाणी में पूछने पर मनोहर मुस्कान वाली शाण्डिली ने उससे नम्रतापूर्ण शब्दों में इस प्रकार कहा। देवि! मैंने गेरूआ वस्त्र नहीं धारण किया वल्कलवस्त्र नहीं पहना, मूँड़ नहीं मुड़ाया और बड़ी.बड़ी जटाएँ नहीं रखायी। वह सब करके मैं देवलोक में नहीं आयी हूँ। मैंने सदा सावधान रहकर अपने पतिदेव के प्रति मुँह से कभी अहित कर और कठोर वचन नहीं निकाले हैं। मैं सदा सास-ससुर की आज्ञा में रहती और देवता पितर तथा ब्राह्मणों की पूजा में सदा सावधान होकर संलग्न रहती थी। किसी की चुगली नहीं खाती थी। चुगली करना मेरे मन को बिलकुल नहीं भाता था। मैं घर का दरवाजा छोड़कर अन्यत्र नहीं खड़ी होती और देर तक किसी से बात नहीं करती थी। मैंने कभी एकान्त में या सबके साकने किसी के साथ अश्लील परिहास नहीं किया तथा मेरी किसी क्रिया द्वारा किसी का अहित भी नहीं हुआ। मैं ऐसे कार्यों में कभी प्रवृत नहीं होती थी। यदि मेरे स्वामी किसी कार्य से बाहर जाकर फिर घर को लौटते तो मैं उठकर उन्हें बैठने के लिये आसन देती और एकाग्रचित्त हो उनकी पूजा करती थी। मेरे स्वामी जिस अन्न को ग्रहण करने योग्य नहीं समझते थे तथा जिस भक्ष्य भोज्य या लेह्य आदि को वे नहीं पसंद करते थे उन सबको मैं भी त्याग देती थी। सारे कुटुम्ब के लिये जो कुछ कार्य आ पड़ता, वह सब मैं सबेरे ही उठकर कर लेती थी।

पतिव्रता स्त्रियों के कर्तव्य का वर्णन: मैं अग्निहोत्र की रक्षा करती और घर को लीप पोतकर शुद्ध रखती थी। बच्चों का प्रतिदिन पालन करती और कन्याओं को नारी धर्म की शिक्षा देती थी। अपने को प्रिय लगने वाली खाद्य वस्तुएँ त्यागकर भी गर्भ की रक्षा में ही सदा संलग्न रहती थी। बच्चों को शाप गाली देना उन पर क्रोध करना अथवा उन्हें सताना आदि मैं सदा के लिये त्याग चुकी थी। मेरे घर में कभी अनाज छीटे नहीं जाते थे। किसी भी अन्न को विखेरा नहीं जाता था। मैं अपने घर में गौओं को घास-भूसा खिलाकर पानी पिलाकर तृप्त करती थी और रत्न की भाँति उन्हें सुरक्षित रखने की इच्छा करती थी तथा शुद्ध अवस्था में आगे बढ़कर ब्राह्मणों को भिक्षा देती थी। यदि मेरे पति किसी आवश्यक कार्यवश कभी परदेश

जाते तो मैं नियम से रहकर उनके कल्याण के लिये नाना प्रकार के मांगलिक कार्य किया करती थी। स्वामी के बाहर चले जाने पर मैं आँखों में आँजन लगाना ललाट में गोरोचन का तिलक करना तैलाभ्यंगपूर्वक स्नान करना फूलों की माला पहनना अंगों में अंगराग लगाना तथा श्रृंगार करना पंसद नहीं करती थी। जब स्वामी सुखपूर्वक सो जाते उस समय आवश्यक कार्य आ जाने पर भी मैं उन्हें कभी नहीं जगाती थी। इससे मेरे मन को विशेष संतोष प्राप्त होता था। परिवार के पालन-पोषण के कार्य के लिये भी मैं उन्हें कभी नहीं तंग करती थी। घर की गुप्त बातों को सदा छिपाये रखती और घर-आँगन को सदा झड़ बुहारकर साफ रखती थी। जो स्त्री सदा सावधान रहकर इस धर्म मार्ग का पालन करती है वह नारियों में अरुन्धती के समान आदणीय होती है और स्वर्गलोक में भी उसकी विशेष प्रतिष्ठा होती है।

भीष्म जी कहते हैं युधिष्ठिर! सुमना को इस प्रकार पातिव्रत्य धर्म का उपदेश देकर तपस्विनी महाभागा शाण्डिली देवी तत्काल वहाँ अदृश्य हो गयीं। पाण्डुनन्दन! जो प्रत्येक पर्व के दिन इस आख्यान का पाठ करता है वह देवलोक में पहुँचकर नन्दनवन में सुखपूर्वक निवास करता है। निम्नलिखित वेद पुराणों से उद्धृत कुछ पतिव्रत धर्म के सूत्र बताए गए हैं—

स्त्री धर्म के कुछ सूत्र

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥
—भागवत पुराण (7.11.25)

अनुवाद—पति की सेवा करना, अपने पति के अनुकूल रहना, पति के सम्बन्धियों तथा मित्रों के प्रति भी समान रूप से अनुकूल रहना तथा पति के व्रतों का पालन करना - ये चार नियम पतिव्रता स्त्री के लिए पालनीय हैं।

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रियंवदा।
सभार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥
—गरुण पुराण

अर्थात— जो पत्नी गृहकार्य में दक्ष है, जो प्रियवादिनी है, जिसके पति ही प्राण हैं और जो पतिपरायणा है, वास्तव में वही पत्नी है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥
—मनुस्मृति (3.46)

अर्थात - जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नही होती, उनका सम्मान नही होता, वहाँ किए गए समस्त अच्छे कर्म भी निष्फल हो जाते हैं।
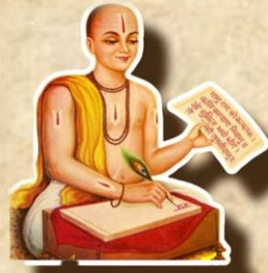
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥

भावार्थ— जगत में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं, वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत में [मेरे पति को छोड़कर] दूसरा पुरुष स्वप्न में भी नहीं है।

मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ॥

धर्म बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥

भावार्थ— मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो। (अर्थात् समान अवस्था वोले को वह भाई के रूप में देखती है, बड़े को पिता के रूप में और छोटे को पुत्र के रूप में देखती है।) जो धर्म को विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है वह निकृष्ट (निम्न श्रेणीकी) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं।

बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई ॥

पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥

भावार्थ— और जो स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत्में उसे अधम स्त्री जानना । पति को धोखा देने वाली जो स्त्री पराये पति से रति करती है, वह तो सौ कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥

बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥

भावार्थ— क्षण भर के सुख के लिए जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मों के दुःख को नहीं समझती, उसके समान

दुष्टा कौन होगी! जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रत धर्म को ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति को प्राप्त करती है।

पतिप्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

भावार्थ—किन्तु जो पति के प्रतिकूल चलती है वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानी में) विधवा हो जाती है।

प्रासंगिकता

शिव पुराण के रुद्र संहिता तृतीय पार्वती खण्ड के अध्याय 54 में राजा हिमवान की पत्नी मेना की इच्छा के अनुसार एक ब्राह्मण-पत्नी द्वारा शिव पार्वती विवाह के उपरान्त पार्वती जी को पतिव्रत धर्म का उपदेश दिलाया गया है। इसी को बाद में तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में माता अनसूया द्वारा सीता जी को भी सुनाया गया है जो उपरोक्त चौपाइयों में वर्णित है। यहां शिव पुराण के वर्णन को आधार बनाया गया है। वर्तमान समय के माताए और बहन बेटियां यदि इसका अनुसरण करेंगी तो उनका लौकिक और पारलौकिक दोनों जीवन में पूर्णता आएगी।
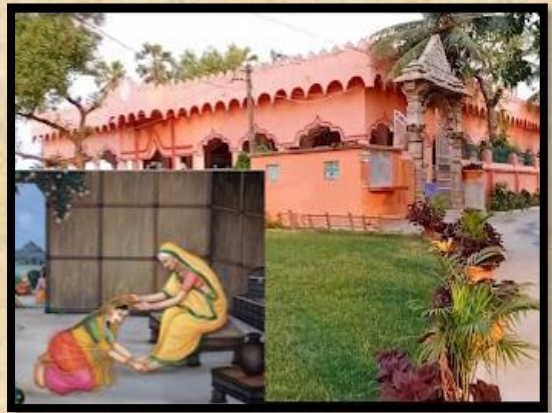
शिव पार्वती विवाह के उपरान्त ब्रह्मा जी कहते हैं-

नारद ! तदनन्तर सप्तर्षियों ने हिमालय से कहा-'गिरिराज ! अब आप अपनी पुत्री पार्वती देवी की यात्रा का उचित प्रबन्ध करें।' मुनीश्वर! यह सुनकर पार्वती के भावी विरह का अनुभव करके गिरिराज कुछ काल तक अधिक प्रेम के कारण विषाद में डूबे रह गये। कुछ देर बाद सचेत हो शैलराज ने 'तथास्तु' कहकर मेना को संदेश दिया। मुने! हिमवान् का संदेश पाकर हर्ष और शोक के वशीभूत हुई मेना पार्वती को विदा करने के लिये उद्यत हुई।

शैलराज की प्यारी पत्नी मेनाने विधिपूर्वक वैदिक एवं लौकिक कुलाचार का पालन किया और उस समय नाना प्रकार के उत्सव मनाये। फिर उन्होंने नाना प्रकार के रत्नजटित सुन्दर वस्त्रों और बारह आभूषणों द्वारा राजोचित श्रृंगार करके पार्वती को विभूषित किया। तत्पश्चात् मेना के मनोभाव को जानकर एक सती-साध्वी ब्राह्मण पत्नी ने गिरिजा को उत्तम पातिव्रत्य की शिक्षा दी।

ब्राह्मण पत्नी बोली-गिरिराज किशोरी! तुम प्रेमपूर्वक मेरा यह वचन सुनो। यह धर्म को बढ़ानेवाला, इहलोक और परलोक में भी आनन्द देने वाला तथा श्रोताओं को भी सुख की प्राप्ति कराने वाला है। संसार में पतिव्रता नारी ही धन्य है, दूसरी नहीं। वही विशेष रूसे पूजनीय है। पतिव्रता सब लोगों को पवित्र करने वाली और समस्त पाप राशि को नष्ट कर देने वाली है। शिवे! जो पति को परमेश्वर के समान मानकर प्रेम से उसकी सेवा करती है, वह इस लोक में सम्पूर्ण भोगों का उपभोग करके अन्त में कल्याणमयी गतिको पाती है। सावित्री,लोपामुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिली, शतरूपा,अनसूया, लक्ष्मी, स्वाद, सती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा-ये तथा और भी बहुत-सी स्त्रियाँ साध्वी कही गयी हैं। यहाँ विस्तार भय से उनका नाम नहीं लिया गया। वे अपने पातिव्रत्य के बलसे ही सब लोगों की पूजनीया तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं मुनीश्वरों की भी माननीया हो गयी हैं। इसलिये तुम्हें अपने पति भगवान् शंकरकी सदा सेवा करनी चाहिये। वे दीनदयालु, सबके सेवनीय और सत्पुरुषों के आश्रय हैं। श्रुतियों और स्मृतियोंमें पातिव्रत्यधर्मको महान् बताया गया है। इसको जैसा श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसा दूसरा धर्म नहीं है-यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है। पातिव्रत्य-धर्ममें तत्पर रहने वाली स्त्री अपने प्रिय पति के भोजन कर लेने पर ही भोजन करे। शिवे! जब पति खड़ा हो, तब साध्वी स्त्री को भी खड़ी ही रहनी चाहिये। शुद्धबुद्धि वाली साध्वी स्त्री प्रतिदिन अपने पति के सो जाने पर सोये और उसके जागने से पहले ही जग जाय। वह छल-कपट छोड़ कर सदा उसके लिये हितकर कार्य ही करे। शिवे! साध्वी स्त्री को चाहिये कि जबतक वस्त्रा भूषणोंसे विभूषित न होले तब तक वह अपने को पति की दृष्टि के सम्मुख न लाये। यदि पति किसी कार्य से परदेश में गया हो तो उन दिनों उसे कदापि श्रृंगार नहीं करना चाहिये। पतिव्रता स्त्री कभी पतिका नाम न ले। पति के कटु वचन कहने पर भी वह बदले में कड़ी बात न कहे। पति के बुलाने पर वह घर के सारे कार्य छोड़कर तुरंत उसके पास चली जाय और हाथ जोड़ प्रेम से मस्तक झुकाकर पूछे-'नाथ! किसलिये इस दासी को बुलाया है? मुझे सेवाके लिये आदेश देकर अपनी कृपा से अनुगृहीत कीजिये।' फिर पति जो आदेश दे, उसका वह प्रसन्न हृदय से पालन करे। वह घरके दरवाजे पर देरतक खड़ी न रहे। दूसरेके घर न जाय। कोई गोपनीय बात जानकर हर एक के सामने उसे प्रकाशित न करे पति के बिना कहे ही उनके लिये पूजन-सामग्री स्वयं जुटा दे तथा उनके हितसाधन के यथोचित अवसर की प्रतीक्षा करती रहे। पति की आज्ञा लिये बिना कहीं तीर्थयात्रा के लिये भी न जाय। लोगों की भीड़ से भरी हुई सभा या मेले आदिके उत्सवों का देखना वह दूरसे ही त्याग दे। जिस नारी को तीर्थ यात्रा का फल पानेकी इच्छा हो, उसे अपने पति का चरणोदक पीना चाहिये। उसके लिये उसीमें सारे तीर्थ और क्षेत्र हैं, इसमें संशय नहीं है। पतिव्रता नारी पतिके उच्छिष्ट अन्न आदिको परम प्रिय भोजन मानकर ग्रहण करे और पति जो कुछ दे, उसे महाप्रसाद मानकर शिरोधार्य करे। देवता, पितर, अतिथि, सेवकवर्ग, गौ तथा भिक्षु समुदाय के लिये अन्नका भाग दिये बिना कदापि भोजन न करे।

पातिव्रत- धर्म में तत्पर रहनेवाली गृहदेवी को चाहिये कि वह घर की सामग्रीको संयत एवं सुरक्षित रखे। गृहकार्यमें कुशल हो, सदा प्रसन्न रहे। और खर्चकी ओरसे हाथ खींचे रहे। पति कीआज्ञा लिये बिना उपवासव्रत आदि न करे, अन्यथा उसे उसका कोई फल नहीं मिलता और वह परलोकमें नरकगामिनी होती है।पति सुखपूर्वक बैठा हो या इच्छानुसार क्रीडा विनोद अथवा मनोरंजन में लगा हो, उस अवस्थामें कोई आन्तरिक कार्य आ पड़े तो भी पतिव्रता स्त्री अपने पतिको कदापि न उठाये। पति नपुंसक हो गया हो, दुर्गति में पड़ा हो, रोगी हो, बूढ़ा हो, सुखी हो अथवा दुःखी हो, किसी भी दशामें नारी अपने उस एकमात्र पतिका उल्लंघन न करे। रजस्वला होनेपर वह तीन रात्रि तक पति को अपना मुँह न दिखाये अर्थात् उससे अलग रहे। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जाय, तब तक अपनी कोई बात भी वह पति के कानों में न पड़ने दे। अच्छी तरह स्नान करने के पश्चात् सबसे पहले वह अपने पतिके मुख का दर्शन करे, दूसरे किसी का मुँह कदापि न देखे अथवा मन-ही-मन पतिका चिन्तन करके सूर्य का दर्शन करे। पति की आयु बढ़ने की अभिलाषा रखने वाली पतिव्रता नारी हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल आदि;चोली, पान, मांगलिक आभूषण आदि; केशों का सँवारना, चोटी गूँथना तथा हाथ-कान के आभूषण-इन सबको अपने शरीर से दूर न करे। धोबिन, छिनाल या कुलटा, संन्यासिनी और भाग्यहीना स्त्रियोंको वह कभी अपनी सखी न बनाये। पति से द्वेष रखने वाली स्त्री का वह कभी आदर न करे। कहीं अकेली न खड़ी हो। कभी नंगी होकर न नहाये। सती स्त्री ओखली, मूसल, झाड़ू, सिल, जाँत और द्वारके चौखट के नीचे वाली लकड़ी पर कभी न बैठे। मैथुनकाल के सिवा और किसी समय में वह पति के सामने धृष्टता न करे जिस-जिस वस्तुमें पति की रुचि हो, उससे वह स्वयं भी प्रेम करे। पतिव्रता देवी सदा पतिका हित चाहने वाली होती है। वह पति के हर्षमें हर्ष माने। पति के मुख पर विषाद की छाया देख स्वयं भी विषाद में डूब जाय तथा वह प्रियतम पति के प्रति ऐसा बर्ताव करे, जिससे वह उन्हें प्यारी लगे। पुण्यात्मा पतिव्रता स्त्री सम्पत्ति और विपत्ति में भी पतिके लिये एक-सी रहे। अपने मन में कभी विकार न आने दे और सदा धैर्य धारण किये रहे। घी, नमक, तेल आदिके समाप्त हो जाने पर भी पतिव्रता स्त्री पति से सहसा यह न कहे कि अमुक वस्तु नहीं है। वह पति को कष्ट या चिन्ता में न डाले। देवेश्वरि! पतिव्रता नारीके लिये एकमात्र पति ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी अधिक माना गया है। उसके लिये अपना पति शिवरूप ही है। जो पति की आज्ञाका उल्लंघन करके व्रत और उपवास आदिके नियम का पालन करती है , वह पति की आयु हर लेती है और मरने पर नरक में जाती है। जो स्त्री पति के कुछ कहने पर क्रोध पूर्वक कठोर उत्तर देती है वह गाँव में कुतिया और निर्जन वन में सियारिन होती है। नारी पतिसे ऊँचे आसन पर न बैठे, दुष्ट पुरुष के निकट न जाय और पति से कभी कातर वचन न बोले किसी की निन्दा न करे। कलह को दूरसे ही त्याग दे। गुरुजनों के निकट न तो उच्चस्वरसे बोले और न हँसे। जो बाहर से पतिको आते देख तुरंत अन्न, जल, भोज्य वस्तु, पान और वस्त्र आदि से उनकी सेवा करती है, उनके दोनों चरण दबाती है, उनसे मीठे वचन बोलती है तथा प्रियतम के खेद को दूर करने वाले अन्यान्य उपायों से प्रसन्नता पूर्वक उन्हें संतुष्ट करती है, उसने मानो तीनों लोकों को तृप्त एवं संतुष्ट कर दिया। पिता, भाई और पुत्र सुख देते हैं, परंतु पति असीम सुख देता है। अत: नारी को सदा अपने पति का पूजन- आदर-सत्कार करना चाहिये। पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है; इसलिये सबको छोड़ कर एकमात्र पति की ही आराधना करनी चाहिये जो दुर्बुद्धि नारी अपने पतिको त्याग कर एकान्त में विचरती है (या

व्यभिचार करती है), वह वृक्ष के खोखले में शयन करने वाली क्रूर उलूकी होती है। जो पराये पुरुष को कटाक्ष पूर्ण दृष्टिसे देखती है, वह ऐंचातानी देखने वाली होती है। जो पति को छोड़कर अकेले मिठाई खाती है, वह गाँव में सूअरी होती है अथवा बकरी होकर अपनी ही विष्ठा खाती है। जो पति को तू कहकर बोलती है, वह गूँगी होती है। जो सौतसे सदा ईष्र्या रखती है, वह दुर्भाग्यवती होती है। जो पतिकी आँख बचाकर किसी दूसरे पुरुष पर दृष्टि डालती है , वह कानी, टेढ़े मुँह वाली तथा कुरूपा होती है। जैसे निर्जीव शरीर तत्काल अपवित्र हो जाता है, उसी तरह पतिहीना नारी भलीभाँति स्नान करनेपर भी सदा अपवित्र ही रहती है। लोकमें वह माता धन्य है, वह जन्मदाता पिता धन्य है तथा वह पति भी धन्य है, जिसके घरमें पतिव्रता देवी वास करती है। पतिव्रताके पुण्यसे पिता, माता और पति के कुलों की तीन-तीन पीढ़ियों के लोग स्वर्गलोक में सुख भोगते हैं। जो दुराचारिणी स्त्रियाँ अपना शील भंग कर देती हैं, वे अपने माता-पिता और पति तीनों के कुलोंको नीचे गिराती हैं तथा इस लोक और परलोकमें भी दुःख भोगती हैं। पतिव्रता का पैर जहाँ-जहाँ पृथ्वीका स्पर्श करता है, वहाँ-वहाँ की भूमि पाप हारिणी तथा परम पावन बन जाती है। भगवान् सूर्य, चन्द्रमा तथा वायुदेव भी अपने-आपको पवित्र करनेके लिये ही पतिव्रता का स्पर्श करते हैं और किसी दृष्टिसे नहीं। जल भी सदा पतिव्रता का स्पर्श करना चाहता है। और उसका स्पर्श करके वह अनुभव करता है कि आज मेरी जडताका नाश हो गया तथा आज मैं दूसरों को पवित्र करने वाला बन गया।

भार्या ही गृहस्थ आश्रमकी जड़ है , भार्या ही सुखका मूल है, भार्यासे ही धर्मके फल की प्राप्ति होती है तथा भार्या ही संतानकी वृद्धिमें कारण है। क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्य- पर गर्व करनेवाली स्त्रियाँ नहीं हैं? परंतु पतिव्रता स्त्री तो विश्वनाथ शिवके प्रति भक्ति होने से ही प्राप्त होती है। भार्या से इस लोक और परलोक दोनों पर विजय पाई जा सकती है। भार्या हीन पुरुष देवयज्ञ, पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ करनेका अधिकारी नहीं होता। वास्तवमें गृहस्थ वही है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। दूसरी स्त्री तो पुरुषको उसी तरह अपना ग्रास (भोग्य) बनाती है, जैसे जरावस्था एवं राक्षसी।

जैसे गंगास्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर सब कुछ पावन हो जाता है।पति को ही इष्टदेव मानने वाली सती नारी और गंगामें कोई भेद नहीं है। पतिव्रता और उसके पतिदेव उमा और महेश्वर के समान हैं, अत: विद्वान् मनुष्य उन दोनों का पूजन करे। पति प्रणव है और नारी वेद की ऋचा; पति तप है और स्त्री क्षमा; नारी सत्कर्म है और पति उसका फल। शिवे! सती नारी और उसके पति-दोनों दम्पती धन्य हैं।

गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मैंने तुमसे पतिव्रताधर्मका वर्णन किया है।अब तुम सावधान हो आज मुझसे प्रसन्नता-पूर्वक पतिव्रताके भेदोंका वर्णन सुनो। देवि ! पतिव्रता नारियाँ उत्तमा आदि भेदसे चार प्रकारकी बतायी गयी हैं, जो अपना स्मरण करनेवाले पुरुषोंका सारा पाप हर लेती हैं। उत्तमा, मध्यमा, निकृष्टा और अतिनिकृष्टा-ये पतिव्रताके चार भेद हैं। अब मैं इनके लक्षण बताती हूँ। ध्यान देकर सुनो। भद्रे! जिसका मन सदा स्वप्नमें भी अपने पतिको ही देखता है, दूसरे किसी पर पुरुषको नहीं, वह स्त्री उत्तमा या उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता कही गयी है।

शैलजे! जो दूसरे पुरुषको उत्तम बुद्धिसे पिता, भाई एवं पुत्रके समान देखती है, उसे मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता कहा गया है।

पार्वती! जो मनसे अपने धर्म का विचार करके व्यभिचार नहीं करती, सदाचार में ही स्थित रहती है, उसे निकृष्टा अथवा निम्न श्रेणी की पतिव्रता कहा गया है जो पतिके भयसे तथा कुल में कलंक लगने के डरसे व्यभिचार से बचने का प्रयत्न करती है,उसे पूर्वकालके विद्वानोंने अतिनिकृष्टा अथवा निम्नतम कोटिकी पतिव्रता बताया है।

शिवे! ये चारों प्रकारकी पतिव्रताएँ समस्त लोकोंका पाप नाश करनेवाली और उन्हें पवित्र बनानेवाली हैं। अत्रिवीकी स्त्री अनसूया ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव-इन तीनों देवताओंकी प्रार्थना से पातिव्रत्य के प्रभावका उपभोग करके वाराह के शाप

से मरे हुए एक ब्राह्मणको जीवित कर दिया था। शैलकुमारी शिवे ! ऐसा जानकर तुम्हें नित्य प्रसन्नतापूर्वक पति की सेवा करनी चाहिये। पति सेवन सदा समस्त अभीष्ट फलों को देने वाला है। तुम साक्षात् जगदम्बा महेश्वरी हो और तुम्हारे पति साक्षात् भगवान् शिव हैं। तुम्हारा तो चिन्तन-मात्र करनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायँगी। देवि! यद्यपि तुम्हारे आगे यह सब कहने का कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि आज लोकाचार का आश्रय ले मैंने तुम्हें सती-धर्मका उपदेश दिया है।

ब्रह्माजी कहते हैं-नारद! ऐसा कहकर वह ब्राह्मण-पत्नी शिवा देवी को मस्तक झुका चुप हो गयी। इस उपदेश को सुनकर शंकर प्रिया पार्वती देवी को बड़ा हर्ष हुआ।

महाकवि कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञान शाकुंतलम् नाटक के चतुर्थ अंक में ऋषि कश्यप द्वारा शकुंतला के लिए पतिव्रत धर्म हेतु कुछ सूत्र बताए हैं जुने निम्नलिखित श्लोक वर्णित है—

जननी सम जानहिं पर नारी। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

भावार्थ— जो पुरुष अपनी पत्नी के अलावा किसी और स्त्री को अपनी मां के सामान समझता है, उसी के हृदय में ईश्वर का वास होता है। जबकि इसके विपरीत जो पुरुष दूसरी स्त्रियों के संग संबंध बनाता है वह पापी होता है और वह ईश्वर से हमेशा दूर रहता है। जो व्यक्ति अपना अपना कल्याण, सुंदर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह उसी प्रकार परस्त्री का मुख न देखें जैसे लोग चौथ के चंद्रमा को नहीं देखते। तुलसीदास जी ने लोगों को इस चौपाई के जरिए स्त्री के सम्मान को सुरक्षित करते हुए मनुष्य को कुदृष्टि से बचने को कहा है।

जननी सम जानहिं पर नारी। धन पराय विष ते विषकारी॥

जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे। तिन्ह कै मन सुभ सदन तुम्हारे॥

नारी के प्रति पवित्र दृष्टिकोण को मानस में बहुत महत्व दिया गया है। अरण्यकांड में महर्षि वाल्मीकि श्रीराम से कहते हैं कि जो पराई नारी को माता के समान और पराये धन को विष के समान समझते हैं उनका मन ही तुम्हारा घर है।

जानि प्रिया आदर अति कीन्हा। बाम भाग आसन हर दीन्हा॥

बालकांड का प्रसंग है कि शिवजी के पास जब पार्वतीजी अपनी जिज्ञासा लेकर पहुँची तो वे उन्हें विशेष सम्मान प्रदान करते हैं।

प्रासंगिकता

रामायण के अनुसार सीता से विवाह कर के भगवान श्रीराम ने सफल वैवाहिक जीवन की नींव रखी। सीता को भगवान राम ने विवाह के बाद उपहार के रुप में वचन दिया कि जिस तरह से दूसरे राजा कई रानियां रखते हैं, कई विवाह करते हैं, वे ऐसा कभी नहीं करेंगे। हमेशा सीता के प्रति ही निष्ठा रखेंगे। विवाह के पहले ही दिन एक दिव्य विचार आया। रिश्ते में भरोसे और आस्था का संचार हो गया। सफल गृहस्थी की नींव पड़ गई। श्रीराम ने अपना यह वचन निभाया भी। सीता को ही सारे अधिकार प्राप्त थे। श्रीराम ने उन्हें कभी कमतर नहीं आंका।

रामायण कहती है कि पत्नी से ही सारी अपेक्षाएं करना और पति को सारी मर्यादाओं एवं नियम-कायदों से छूट देना बिल्कुल भी निष्पक्ष और न्यायसंगत नहीं है। पति-पत्नी का संबंध तभी सार्थक है जबकि उनके बीच का प्रेम सदा तरोताजा बना रहे। तभी तो पति-पत्नी को दो शरीर एक प्राण कहा जाता है। दोनों की अपूर्णता जब पूर्णता में बदल जाती है तो अध्यात्म के मार्ग पर बढ़ना आसान और आंनदपूर्ण हो जाता है। स्त्री में ऐसे कई श्रेष्ठ गुण होते हैं जो पुरुष को अपना लेना चाहिए। प्रेम, सेवा, उदारता, समर्पण और क्षमा की भावना स्त्रियों में ऐसे गुण हैं, जो उन्हें देवी के समान सम्मान और गौरव प्रदान करते हैं।

रामायण में जिस प्रकार पतिव्रत की बात हर कहीं की जाती है, उसी प्रकार पत्नीव्रत भी उतना ही आवश्यक और महत्वपूर्ण है। जबकि गहराई से सोचें तो यही बात जाहिर होती है कि पत्नी के लिये पति व्रत का पालन करना जितना जरूरी है उससे ज्यादा आवश्यक है पति का पत्नी व्रत का पालन करना। दोनों का महत्व समान है। कर्तव्य और अधिकारों की दृष्टि से भी दोनों से एक समान ही हैं।जो नियम और कायदे-कानून पत्नी पर लागू होते हैं वही पति पर भी लागू होते हैं। ईमानदारी और निष्पक्ष होकर यदि सोचें तो यही साबित होता है कि स्त्री पुरुष की बजाय अधिक महत्वपूर्ण और सम्मान की हकदार है।

भारतीय संस्कृति में पतिव्रत धर्म नारियों की सर्वोच्च उत्कृष्टता का प्रमाण है। उनके लिये शास्त्रकार ने बताया है कि वे ईश्वर की विधिवत उपासना भले ही न करें पर यदि वे अपने पतियों के प्रति निष्ठावान हैं तो सहज सद्गति प्राप्त कर सकती हैं। परिवार को स्वर्ग बनाकर रखना, सुसन्तति को जन्म देना भी इस व्रत के अंतर्गत हैं। जिस समाज में ऐसी पति पारायण नारियों की कमी नहीं रहती वे समाज, वे जातियाँ निश्चय ही श्री, समृद्धि और सफलता प्राप्त करती हैं।

जो लाभ स्त्रियों को और समाज को शीलवान बनाने से हो सकते हैं, पत्नीव्रत का पालन करने वाले पुरुषों को भी वही लाभ होते हैं। नर-नारी जीवन विकास के समान उत्तरदायित्व लेकर धरती में आते हैं। अलग- अलग दोनों अपूर्ण हैं। दोनों

का युग्म ही पूर्णता की स्थिति उत्पन्न कर सकने में समर्थ होता है। स्त्री भावना है, पुरुष कर्त्तव्य, स्त्री शक्ति, पुरुष पौरुष। दोनों एक दूसरे के अविभाज्य अंग हैं। एक के बिना दूसरा जीवित नहीं रह सकता। संसार में न केवल स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ रह सकती हैं और न पुरुष ही पुरुष। प्रकृति और प्राण की तरह स्त्री और पुरुष दोनों के सम्मिलन से ही सृष्टि का आविर्भाव हुआ है और अन्त तक वे साथ ही बने रहेंगे। स्त्रियों की सद्गति पुरुष को आत्मसमर्पण कर देने से आसान हो जाती है। उसी तरह पुरुष के आत्म-विकास में स्त्रियों का भी योगदान कम महत्व का नहीं। जिन ऋषियों ने शोध कार्यों के लिये अत्यधिक एकान्त वास की आवश्यकता समझी उन्हें छोड़कर प्रायः सभी ऋषि गृहस्थ थे। गृहस्थ में रहकर ही उन्होंने आत्म-कल्याण की साधनायें की थीं। वशिष्ठ के सौ पुत्र थे, उनकी पत्नी न रही होती तो ये बच्चे कहाँ से आते। महर्षि जमदग्नि की पत्नी रेणुका थी, गौतम की अहिल्या, अत्रि की अनुसुइया आदि अधिकाँश ऋषि पत्नीव्रत पालन करने वाले हुये हैं। बीच में जब बुद्ध धर्म का प्रभाव इस देश में बढ़ा उस समय कुछ भ्रान्त धारणायें समाज में फैलीं और नारी को अभिशाप समझा जाने लगा। यह कहना वस्तुतः अपने कर्त्तव्य से विमुख होना ही था। स्त्री बच्चों को त्याग कर आत्म- कल्याण के लिये जंगल भाग जाना त्याग नहीं। पलायनवाद धर्म नहीं, अकर्मण्यता ही कही जा सकती है।

पुरुष सदाचारपूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ आत्म-कल्याण की स्थिति प्राप्त कर सकता है। यहाँ जो बात स्त्री के लिये कर्त्तव्य होती है, वही बात पुरुष के लिए भी। चारित्रिक पवित्रता स्त्री में और पुरुष में नहीं होती तो पारस्परिक सम्बन्ध मधुर रह सकेंगे, यह अनिश्चित माना जाता है। स्त्री का कलंक पुरुष को असह्य हो सकता पुरुष का प्रेम कोई अन्य स्त्री प्राप्त करे, यह उसकी धर्म पत्नी ही कैसे देख सकती है ? मानवीय कमजोरियाँ स्त्री-पुरुष दोनों में समान रूप से होती हैं। पुरुष की दुश्चरित्रता से कितनी ही पति-परायण स्त्री हो उसे है। दुःख, • क्षेत्र और बोझ अनुभव न हो, यह असंभव ही अकेली धर्मपत्नी शील और सदाचार का पालन पारिवारिक जीवन को सुव्यवस्थित नहीं रख सकती पुरुष का समान सहयोग भी आवश्यक है। दोनों गाड़ी के दो पहियों के समान है। एक पहिया लुढ़कता जाए और दूसरा तनिक भी जोर न देता हो, तो गाड़ी जहाँ की तहाँ रहेगी और जीवन की यात्रा पूरी न हो सकेगी। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर जोर लगाते हैं तो जीवन की यात्रा खुशी और प्रसन्नता पूर्वक तय हो सकती है।

प्रेरक प्रसंग—राजा हरिशचंद्र के वैवाहिक जीवन में ये पांचों तत्व काम कर रहे थे। पहला तत्व प्रेम, हरिश्चंद्र और तारामति के दांपत्य का पहला आधार प्रेम था। हरिश्चंद्र, तारामति से इतना प्रेम करते थे कि उन्होंने अपने समकालीन राजाओं की तरह कभी कोई दूसरा विवाह नहीं किया। एक पत्नीव्रत का पालन किया। तारामति के लिए पति ही सबकुछ थे, पति के

कहने पर तारामति ने सारे सुख और राजमहल छोड़ दिया और एक दासी के रूप में रहने लगी। ये उनके बीच समर्पण और त्याग की भावना थी। दोनों ने एक दूसरे से कभी किसी बात को लेकर शिकायत नहीं की। जीवन में जो मिला उसे भाग्य समझकर स्वीकार किया और जीवन से संतुष्टी बनाए रखी। दोनों ने यही संस्कार अपने पुत्र को भी दिए। प्रेम, समर्पण, त्याग, संतुष्टि और संस्कार पांचों बातें उनके जीवन में थी। इसी वजह से राज-पाठ खोने के बाद भी वे अपना धर्म निभाते रहे। राजा हरिशचंद्र ने अपने व्यवहार और सत्य व्रत से पुनः अपना राज-पाठ प्राप्त कर लिया था।

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई ॥

मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

भावार्थ— (श्रीरामजीने कहा-) हे तात! मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो। मैं और मेरा, तू और तेरा-यही माया है, जिसने समस्त जीवों को वश में कर रखा है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । बिद्या अपर अविद्या दोऊ ॥

भावार्थ—इन्द्रियों के विषयों को और जहाँ तक मन जाता है, है भाई। उस सबको माया जानना। उसके भी एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदोंको तुम सुनो—

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भव कूपा ॥

एक रचइ जग गुन बस जायें। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताकें ॥

भावार्थ—एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यन्त दुःखरूप है, जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कुएँ में पड़ा हुआ है और एक (विद्या) जिसके वश में गुण है और जो जगत की रचना करती है, वह प्रभु से ही प्रेरित होती है, उसके अपना बल कुछ भी नहीं है।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥

कहिअ तातसो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी।।

भावार्थ— ज्ञान वह है जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी [दोष] नहीं है और जो सबमें समान रूप से ब्रह्म को देखता है। हे तात! उसीको परम वैराग्यवान् कहना चाहिए जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका हो।

[जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्य सेवा का अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मन का निगृहीत न होना, इन्द्रियों के विषय में आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत में सुखबुद्धि, स्त्री-पुत्र घर आदि में आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में हर्ष – शोक, भक्ति का अभाव, एकान्त में मन न लगना, विषयी मनुष्यों के संग में प्रेम। ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) में स्थिति तथा तत्त्वज्ञानके अर्थ (तत्त्वज्ञानके द्वारा जाननेयोग्य) परमात्मा का नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है। [देखिये गीता अ० १३ । ७ से ११]

दो० – माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।

बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव ॥

भावार्थ—जो माया को, ईश्वरको और अपने स्वरूप को नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये। जो (कर्मानुसार) बन्धन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे और माया का प्रेरक है वह ईश्वर है।

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई । सो मम भगति भगत सुखदाई ॥

भावार्थ—धर्म (के आचरण) से वैराग्य और योग से ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्ष का देनेवाला है-ऐसा वेदों ने वर्णन किया है। और हे भाई! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तों को सुख देनेवाली है।

सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥

भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ सो संत होइँ अनुकूला ॥

भावार्थ—वह भक्ति स्वतन्त्र है, उसको (ज्ञान-विज्ञान आदि किसी दूसरे साधन का सहारा (अपेक्षा) नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं। तात! भक्ति अनुपम एवं सुखकी मूल है और वह तभी मिलती है जब संत अनुकूल (प्रसन्न होते हैं।

गुन कृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥

जोबन वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जसन नसावा ॥

भावार्थ—हे तात! सुनो, माया से रचे हुए ही अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है)। गुण (विवेक) इसी में है कि दोनों ही न देखे जायँ; इन्हें देखना ही अविवेक है ।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥

तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥

भावार्थ—उनमें से भी किस-किसको मोह ने अंधा (विवेकशून्य) नहीं किया? जगत में ऐसा कौन है जिसे काम ने न नचाया हो? तृष्णाने किसको मतवाला नहीं बनाया? क्रोध ने किसका हृदय नहीं जलाया ?

दो० – ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार ।

केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ॥

भावार्थ—इस संसार में ऐसा कौन ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान् और गुणोंका धाम है, जिसकी लोभने विडम्बना (मिट्टी पलीद) न की हो।

दो० – श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।

मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥

भावार्थ—लक्ष्मी के मद ने किसको टेढ़ा और प्रभुताने किसको बहरा नहीं कर दिया? ऐसा कौन है, जिसे मृगनयनी (युवती स्त्री) के नेत्र बाण न लगे हों?

दो० – सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक ।

गुन यह उभयन देखिअहिं देखि सो अबिबेक ॥

भावार्थ—[रज, तम आदि] गुणों का किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ? ऐसा कोई नहीं है जिसे मान और मद ने अछूता छोड़ा हो। यौवन के ज्वर ने किसे आपे से बाहर नहीं किया? ममता ने किसके यश का नाश नहीं किया?

मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ॥

चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया ॥

भावार्थ—मत्सर (डाह) ने किसको कलङ्क नहीं लगाया? शोकरूपी पवनने किसे नहीं हिला दिया? चिन्ता रूपी साँपिन ने किसे नहीं खा लिया? जगत में ऐसा कौन है, जिसे माया न व्यापी हो?

कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥

सुत बित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी

भावार्थ—मनोरथ कीड़ा है, शरीर लकड़ी है। ऐसा धैर्यवान् कौन है, जिसके शरीर में यह कीड़ा न लगा हो? पुत्रकी, धनकी और लोक प्रतिष्ठा की, इन तीन प्रबल इच्छाओं ने किसकी बुद्धि को मलिन नहीं कर दिया (बिगाड़ नहीं दिया)?

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमिति को बरनै पारा ॥

सिव चतुरानन जाहि डेराहीं । अपर जीव केहि लेखे माहीं ॥

भावार्थ—यह सब माया का बड़ा बलवान् परिवार है। यह अपार है, इसका वर्णन कौन कर सकता है? शिवजी और ब्रह्माजी भी जिससे डरते हैं, तब दूसरे जीव तो किस गिनती में हैं?

दो० – ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड ।

सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ॥

भावार्थ—माया की प्रचण्ड सेना संसार भर में छायी हुई है। कामादि (काम, क्रोध और लोभ) उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट और पाखण्ड योद्धा हैं।

दो० –सो दासी रघुबीर कै समुझे मिथ्या सोपि ।

छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहउँ पद रोपि ॥

भावार्थ—वह माया श्रीरघुवीर की दासी है। यद्यपि समझ लेनेपर वह मिथ्या ही है, किन्तु वह श्रीरामजी की कृपा के बिना छूटती नहीं । हे नाथ! यह मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा ॥

सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ॥

भावार्थ—जो माया सारे जगत को नचाती है और जिसका चरित्र (करनी) किसी ने नहीं लख पाया, हे खगराज गरुड़जी! वही माया प्रभु श्रीरामचन्द्रजी की भ्रुकुटी के इशारे पर अपने समाज (परिवार) सहित नटी की तरह नाचती है।

बोले लखन मधुर मृदु बानी । ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥

काहुन कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता

भावार्थ—तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रससे सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले- हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख का देनेवाला नहीं है। सब अपने ही किये हुए कर्मो का फल भोगते हैं।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥

जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू । संपति बिपति करमु अरु कालू

भावार्थ—संयोग (मिलना), वियोग (बिछुड़ना), भले-बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन – ये सभी भ्रम के फंदे हैं। जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति विपत्ति, कर्म और काल- जहाँतक जगत के जंजाल हैं।

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू ॥

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माही। मोह मूल परमारथु नाहीं ॥

भावार्थ—धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँतक व्यवहार हैं, जो देखने, सुनने और मनके अंदर विचारने में आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) ही है। परमार्थतः ये नहीं हैं।

दो०- सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ ।

जागें लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥

भावार्थ—जैसे स्वप्न में राजा भिखारी हो जाय या कंगाल स्वर्ग का स्वामी इन्द्र हो जाय, तो जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है; वैसे ही इस दृश्य-प्रपञ्च को हृदय से देखना चाहिए।

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

भावार्थ—ऐसा विचारकर क्रोध नहीं करना चाहिए और न किसीको व्यर्थ दोष ही देना चाहिए। सब लोग मोहरूपी रात्रि में सोने वाले हैं और सोते हुए उन्हें अनेकों प्रकार के स्वप्न दिखायी देते हैं।

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥

जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा

भावार्थ—इस जगतरूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपञ्च (मायिक जगत्) से छूटे हुए हैं। । जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब सम्पूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाय।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

भावार्थ—विवेक होने पर मोहरूपी भ्रम भाग जाता है तब (अज्ञान का नाश होने पर) श्रीरघुनाथजीके चरणों में प्रेम होता है। हे सखा! मन, वचन और कर्म से श्रीरामजी के चरणों में प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है।

प्रासंगिकता

अविद्या शब्द का प्रयोग माया के अर्थ में होता है। भ्रान्ति एवं अज्ञान भी इसके पर्याय है। यह चेतनता की स्थिति तो हो सकती है, लेकिन इसमें जिस वस्तु का ज्ञान होता है, वह मिथ्या होती है। सांसारिक जीव अहंकार अविद्याग्रस्त होने के कारण जगत् को सत्य मान लेता है और अपने वास्तविक रूप, ब्रह्म या आत्मा का अनुभव नहीं कर पाता। एक सत्य को अनेक रूपों में देखना एवं मैं, तू, तेरा, मेरा, यह, वह, इत्यादि का भ्रम उसे अविद्या के कारण होता है।

आचार्य शंकर के अनुसार प्रथम देखी हुई वस्तु की स्मृतिछाया को दूसरी वस्तु पर आरोपित करना भ्रम या अध्यास है। रस्सी में साँप का भ्रम इसी अविद्या के कारण होता है। इसी प्रकार माया या अविद्या आत्मा में अनात्म वस्तु का आरोप करती है। आचार्य शंकर के अनुसार इस तरह के अध्यास को अविद्या कहते हैं। संसार के सारा आचार व्यवहार

एवं संबंध अविद्याग्रस्त संसार में ही संभव है। अत: संसार व्यवहार रूप से ही सत्य है, परमार्थत: वह मिथ्या है, माया है। माया की कल्पना ऋग्वेद में मिलती है। यह इंद्र की शक्ति मानी गई है, जिससे वह विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। उपनिषदों में इन्हें ब्रह्म की शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। किंतु इसे ईश्वर की शक्ति के रूप में अद्वैत वेदान्त में भी स्वीकार किया गया है। माया अचितद्य तत्व है, इसलिए ब्रह्म से उसका संबंध नहीं हो सकता। अविद्या भी माया की समानधर्मिणी है। यदि माया सर्वदेशीय भ्रम का कारण है तो अविद्या व्यक्तिगत भ्रम का करण है। दूसरे शब्दों में समष्टि रूप में अविद्या माया है और माय व्यष्टि रूप में अविद्या है। शुक्ति में रजत का आभास या रस्सी में साँप का भ्रम उत्पन्न होने पर हम अधिष्ठान के मूल रूप का नहीं देख पाते। अविद्या दो प्रकार से अधिष्ठान का "आवरण" करती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह अधिष्ठान के वास्तविक रूप को ढँक देती है। द्वितीय, विक्षेप कर देती है, अर्थात् उसपर दूसरी वस्तु का आरोप कर देती है। अविद्या के कारण ही हम एक अद्वैत ब्रह्म के स्थान पर नामरूप से परिपूर्ण जगत् का दर्शन करते हैं। इसीलिए अविद्या को "भावरूप" कहा गया है, क्योंकि वह अपनी विक्षेप शक्ति के कारण ब्रह्म के स्थान पर नानात्य को आभासित करती है। अनिर्वचनीय ख्याति के अनुसार अविद्या न तो सत् है और न असत्। वह सद्सद्विलक्षण है। अविद्या को अनादि तत्व माना गा है। अविद्या ही बंधन का कारण है, क्योंकि इसी के प्रभाव से अहंकार की उत्पत्ति होती है।

वास्तविकता एवं भ्रम को ठीक ठीक जानना, वेदान्त में ज्ञान कहा गया है। फलत: ब्रह्म और अविद्या का ज्ञान ही विद्या कहा जाता है। अद्वैत वेदान्त में ज्ञान ही मोक्ष का साधन माना गया है, अतएव विद्या इस साधन का एक अनिवार्य अंग है। विद्या का मूल अर्थ है, सत्य का ज्ञान, परमार्थ तत्व का ज्ञान या आत्मज्ञान। अद्वैत वेदांत में परमार्थ तत्व या सत्य मात्र ब्रह्म को स्वीकार किया गया है। ब्रह्म एव आत्मा में कोई अंतर नहीं है। यह आत्मा ही ब्रह्म है। अस्तु, विद्या को विशिष्ट रूप से आत्मविद्या या ब्रह्मविद्या भी कह सकते हैं। विद्या के दो रूप कहे गए हैं – अपरा विद्या, जो निम्न केटि की विद्या मानी गई है, सगुण ज्ञान से सम्बन्ध रखती है। इससे मोक्ष नहीं प्राप्त किया जा सकता। मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन पराविद्या है। इसी को आत्मविद्या या ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। अविद्याग्रसत जीवन से मुक्ति पाने के लिए एवं अपने रूप का साक्षात्कार करने के लिए परा विद्या के अंग हैं। यदि अपना विद्या प्रथम सोपान है, तो परा विद्या द्वितीय सोपान है। साधन चतुष्टय से प्रारंभ करके, मुमुक्षु श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन, इन त्रिविध मानसिक क्रियाओं का क्रमिक नियमन करता है। वह "तत्वमसि" वाक्य का श्रवण करने के बाद, मनन की प्रक्रिया से गुजरते हुए, ध्यान या समाधि अवस्था में प्रवेश कर जाता है, जहाँ उसे "मैं ही ब्रह्म हूँ" का बोध हो उठता है। यही ज्ञान परा विद्या कहलाता है। भौतिक जगत के जिस ज्ञान को आजकल 'विज्ञान' कहते हैं उसी को उपनिषद में अपराविद्या के नाम से कहा गया है। अभ्युदय और भौतिकता, अविद्या के पर्याय हैं। इसी प्रकार निःश्रेयस और आध्यात्मिकता विद्या के पर्याय हैं।

शंकराचार्य कहते है- देह आदि माया के सभी कार्यों को तू मरु मरीचिका के समान असत् और अनात्मक जान। माया दो अक्षरों से बनी है। मा अर्थात नहीं और या अर्थात जो। जिसका अस्तित्व ही नहीं है-वही माया है। दूसरा अर्थ है-मा अर्थात समावेश या गणना करना, जिसमें संपूर्ण विश्व का समावेश हुआ है वही माया है। माया सत् और असत् से अलग है। अनादि

है। माया ब्रह्माश्रित होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो ईश्वर अथवा ब्रह्म को छोड़कर माया की सत्ता नहीं होती। केवल माया से जगत की उत्पत्ति नहीं हो सकती, उसके पीछे अधिष्ठान भी चाहिए। वह अधिष्ठान ईश्वर है। जीवात्मा स्वरूपतः ब्रह्म है, किंतु माया के प्रभाव से वह स्वयं को ब्रह्म से अलग मानता है। ज्ञानी माया की चपेट में नहीं आता। उसे अपने स्वरूप का ज्ञान होता है।

एकबार नारद ने श्रीकृष्ण से पूछा-प्रभु, माया क्या है? श्रीकृष्ण ने कहा- इसका उत्तर तुम्हें कुछ समय बाद मिलेगा। दोनों वेश बदलकर पृथ्वीलोक गए। चलते-चलते भगवान ने कहा, 'प्यास लगी है, थोड़ा जल लाओ।' नारद थोड़ी दूर गए तो एक घर दिखा। उन्होंने पानी मांगा। तभी उनकी दृष्टि गृहस्वामी की पुत्री पर गई। वे मोहित हो गए। उन्होने गृहस्वामी से कहा कि वे उनकी पुत्री से विवाह करना चाहते हैं। गृहस्वामी ने भी स्वीकार कर लिया। विवाह हुआ और वे सुखपूर्वक रहने लगे। संतानें हुई। फिर एक दिन बाढ़ आई। नारद जी का पूरा परिवार बह गया। वे विलाप करने लगे। इतने में श्रीकृष्ण आए और हंसते हुए बोले, 'नारद, तुम तो पानी लाने गए थे।' तब नारद को पता लगा कि उन्होंने भगवान से माया के बारे में पूछा था। मैं समझ गया हूँ कि ये माया यही है। माया भगवान कृष्ण की ऊर्जाओं में से एक है और यह ऊर्जा भौतिक सृजन या भौतिक अस्तित्व का मूल आधार है। इस मायावी ऊर्जा के बिना, भौतिक अस्तित्व का कोई उद्देश्य नहीं होगा। भौतिक सृष्टि में प्रत्येक जीवित प्राणी माया में है, अर्थात भ्रम में है, लेकिन कुछ दूसरों की तुलना में अधिक भ्रम में हैं। यह भ्रम मूलतः "मैं और मेरा" की सोच है।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है-'काम और कांचन ही माया है।' माया भगवान को जानने का अवसर नहीं देती। उसके दो रूप हैं। विद्या-माया और अविद्या-माया। अविद्या माया संसार चक्र में फंसाती है। विद्या माया से युक्त व्यक्ति भक्ति, विवेक, वैराग्य, दया आदि गुणों का आश्रय पाकर ईश्वर-साक्षात्कार का अधिकारी बनता है।

'ईशोपनिषद्' में उपलब्ध एक मंत्र का अंतिम वाक्यांश निम्नलिखित है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

इसका शाब्दिक अर्थ यह है- जो विद्या और अविद्या-इन दोनों को ही एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमृतत्त्व (देवतात्मभाव = देवत्व) प्राप्त कर लेता है।

विवेकानन्द कहते हैं-संसार में मृत्यु गर्व से घूम रही है, पर हम सोचते हैं कि हम सदा जीवित रहेंगे। युधिष्ठर ने सबसे बड़े आश्चर्य के बारे में कहा-रोज लोग मर रहे हैं, पर जो जीवित हैं, वे सोचते हैं कि वे कभी मरेंगे नहीं। यही माया है।

श्रीमद्भगवद्गीता से संकलित श्लोक

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥ 3.27॥

अर्थ—नीवात्मा अहंकार के प्रभाव से मोहग्रस्त होकर अपने आपको समस्त कर्मों का कर्ता बन बैठता है, जब कि वास्तव में वे प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा सम्पन्न किये जाते।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥7.15॥

अर्थ—जो निपट मूर्ख हैं, जो मनुष्यों में अधम हैं, जिनका ज्ञान, माया द्वारा हर लिया गया है तथा जो असुरों की नास्तिक प्रकृति को धारण करने वाले हैं, ऐसे दुष्ट मेरी शरण ग्रहण नहीं करते।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।। 7.25।।

अर्थ— मैं मूर्खो तथा अल्पज्ञों के लिए कभी भी प्रकट नहीं हूँ। उनके लिए तो मैं अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा आच्छादित रहता हूँ, अतः वे यह नहीं जान पाते कि मैं अजन्मा तथा अविनाशी हूँ।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ 9.19 ॥

अर्थ—हे अर्जुन! मैं ही ताप प्रदान करता हूँ और वर्षा को रोकता तथा लाता हूँ। मैं अमरत्व हूँ और साक्षात् मृत्यु भी हूँ। आत्मा तथा पदार्थ (सत् तथा असत्) दोनों मुझ ही में हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ 18.61 ॥

अर्थ—हे अर्जुन! परमेश्वर प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित हैं और भौतिक शक्ति से निर्मित यन्त्र में सवार की भाँति बैठे समस्त जीवों को अपनी माया से घुमा (भरमा) रहे हैं।

	राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥ **बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ।** **संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा ॥** **प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥** **भावार्थ** —नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, भगवान को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक उत्पन्न किए बिना विद्या पढ़ने से परिणाम में श्रम ही हाथ लगता है। विषयों के संग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मानसे ज्ञान, मदिरापान से लज्जा, नम्रता के बिना (नम्रता न होने से) प्रीति और मद (अहङ्कार) से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है।

प्रासंगिकता

नीति के बिना राज्य चल नही सकता। अनीतिपरक राज्य संसार के लोगों के लिए विनाशकारी सिद्ध होता है। मनीराम द्विवेदी नवीन ने लिखा है:-

देख लिया किसी को बुरी दृष्टि से,तो बुरे पाप को ले चुके ले चुके।।

रंच दुखाया किसी दुखी का दिल तो अभिशाप को ले चुके ले चुके।।

किंचित भी लगा दाग चरित्र में,तो अनुताप को ले चुके ले चुके।।

नीति जो न नवीन चले कभी, तो दुख पाप को ले चुके ले चुके।।

पहले सल्तनतकाल में फिर मुगल काल में भारतवर्ष में राज्य बिना नीति के चल रहा था। इसलिए सर्वत्र अनीति व्याप्त होने के कारण शासन के प्रति लोगों में और लोगों के प्रति शासन में घृणा व्याप्त थी। ऐसी परिस्थितियों को ही अनीतिजनित अराजकता कहा जाया करता है। इसलिए अपनी समकालीन राज्यव्यवस्था को तुलसीदास जी एक प्रकार से सचेत कर रहे हैं कि यदि अपना भला चाहती है तो नीति का पालन करो।

धर्म के बिना धन— एक अच्छा जीवन जीने के लिए धन बहुत आवश्यक है. हमारे बड़े बुजुर्ग, शास्त्र और चाणक्य भी धन संचय और खर्च करने की सलाह देते हैं ताकि संकट काल में परेशान न होना पड़े। चाणक्य कहते हैं कि गरीबों, असहाय और जरूरतमंदों की आर्थिक रूप से मदद करने में कभी कंजूसी न करें।

गरीबों, असहाय और जरूरतमंदों की आर्थिक रूप से मदद—बेसहारा की मदद कई तरीके से की जा सकती है।फिर चाहे वो शिक्षा सामग्री देना हो या फिर स्वास्थ सुविधा। शास्त्रों में भी अपनी कमाई का एक हिस्सा बेसहारा लोगों की मदद करने के लिए निकालने की सलाह दी जाती है। कहते हैं इससे धन कभी कम नहीं होता बल्कि आर्थिक पक्ष मजबूत होता है। समृद्धि में बढ़ोत्तरी होती है।

धर्म के काम— धर्म के कामों में दान करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है. चाणक्य के अनुसार मंदिर और तीर्थ स्थल से कभी बिना दान किए नहीं लौटना चाहिए। धार्मिक कार्यों में पैसा खर्च करने में कभी कंजूसी नहीं करनी चाहिए। यहां धन खर्च करने पर कभी दरिद्रता नहीं आती। यश, कीर्ति और दौलत में वृद्धि होती है.

समाज के काम— समाजिक कार्य में हिस्सा लेना न सिर्फ पुण्य का काम है बल्कि मनुष्य का कर्तव्य भी है। समाज के विकास से ही देश का कल्याण संभव है। सामर्थ्य अनुसार स्कूल, अस्पताल, आदि समाजिक कार्यों में पैसा खर्च करने से संकोच न करें। इससे समाज में मान-सम्मान बढ़ता है साथ ही लोगों की दुआओं से सौभाग्य में बढ़ोत्तरी होती है।

भगवान को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म—श्रीमद्भागवत गीता में अध्याय 12 श्लोक 10 में श्री कृष्ण ने बताया कि ईश्वर को समर्पित कर्म साधना के समान है। अगर कोई मनुष्य इस भाव से अपने स्वाभाविक कर्म को करे की वह ईश्वर के लिए यह कर्म कर रहा है तो उसके द्वारा किया गया कर्म साधना बन जाती है। अगर वह मनुष्य हमेशा ही अपने सभी कर्मों को इसी भाव से करे तो कालांतर में वह भक्ति कि वही सिद्धि प्राप्त कर लेता है जो अन्यथा एक प्रकांड भक्त कर सकता है।

विवेक के बिना विद्या—ज्ञान पानी है बुद्धि ने पहचाना पानी में शक्ति है और विवेक ने उससे बिजली बना दी। तीनों एक टीम है। किसी एक के बिना तीनों अधूरे हैं। इस लिए तीनों ही श्रेष्ठ है।बुद्धि वह मानसिक शक्ति है, जिसके द्वारा हम तथ्यों एवं विचारों को समझ सकते हैं, उनमें संबन्ध निर्धारित कर सकते हैं।यह तर्कपूर्ण होती है। विवेक एक ऐसा ज्ञान जो क्या सही है, क्या गलत है, इसको स्पष्ट कर दे।

जिस मनुष्य के पास स्वयं का(प्रज्ञा) विवेक नहीं है, उसके शास्त्र किस काम के, जैसे नेत्रविहीन व्यक्ति के लिए दर्पण व्यर्थ है।

संस्कृत साहित्य में कुछ ऐसे ही सूत्र निम्नलिखित वर्णित हैं —
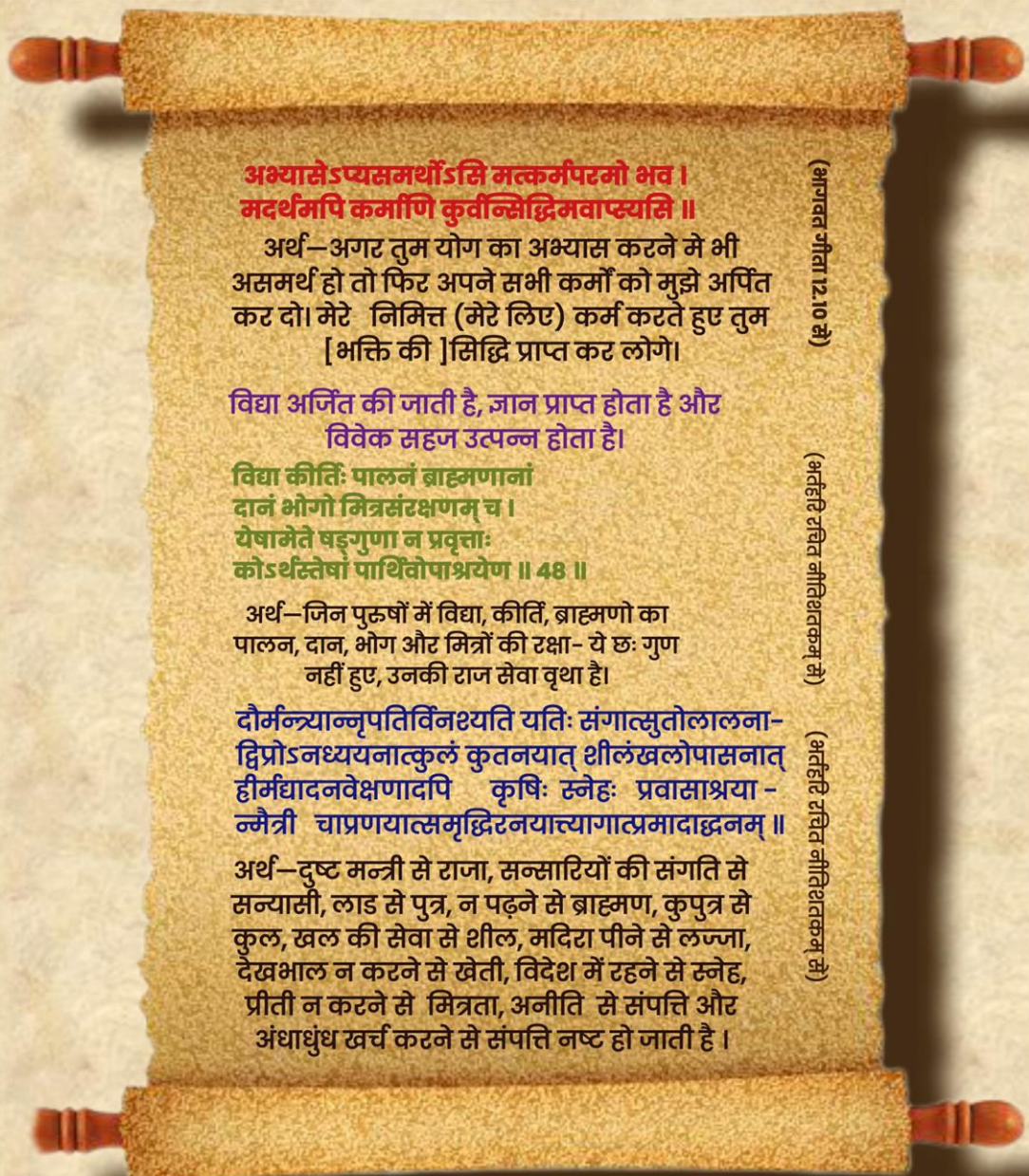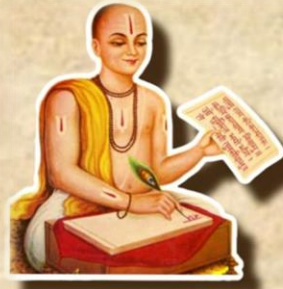
तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना ॥

सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि भानस गुनी ॥

तब मारीचने हृदय में अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जाननेवाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान्, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया-इन नौ व्यक्तियों से विरोध (वैर) करने में कल्याण (कुशल) नहीं होता।

प्रासंगिकता

रामचरित मानस के अरण्यकांड में रावण और मारीच का प्रसंग है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस प्रसंग में समझाया है कि 9 तरह के लोगों से दुश्मनी नहीं करनी चाहिए। इन लोगों की कोई भी बात तुरंत मान लेने में ही बुद्धिमानी है, वरना आप मुसीबत में फंस सकते हैं। इस प्रसंग में गोस्वामी तुलसीदास जी ने बताया है कि न चाहते हुए भी मारीच को रावण की बात माननी पड़ी और रावण के कहने पर स्वर्ण मृग बनना पड़ा जबकि मारीच जानता था कि ऐसा करने पर श्रीराम उसे मार देंगे।

रावण और मारीच प्रसंग— सीता का हरण करने के लिए रावण मारीच के पास पहुंचा और कहा कि तुम छल-कपट करने वाला स्वर्ण मृग बनो, ताकि में सीता का हरण कर सकूं। तब मारीच ने रावण को समझाया कि वह श्रीराम से बैर न करें। मारीच की बातें सुनकर रावण क्रोधित हो गया एवं खुद के बल और शक्तियों का घमंड करने लगा। तब मारीच को समझ आ गया कि सीता हरण के लिए उसकी मदद करने में ही भलाई है। रावण के हाथों मरने से अच्छा है कि
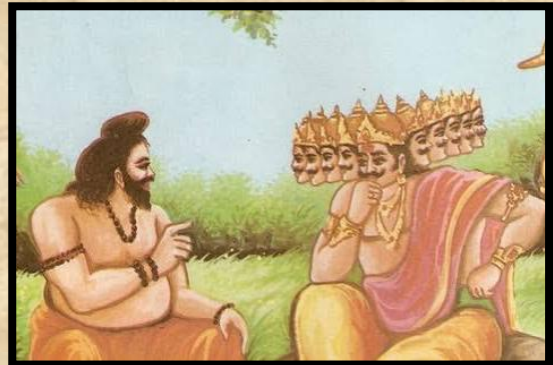
मैं श्रीराम के हाथ मरूं, जिससे मेरा उद्धार हो जाएगा। यहां पर मारीच अपने मन में विचारता है कि शस्त्रधारी, हमारे राज जानने वाला, समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान व्यक्ति, वैद्य, भाट, कवि और रसोइयां, इन लोगों की बातें तुरंत मान लेनी चाहिए। इनसे कभी विरोध नहीं करना चाहिए, अन्यथा हमारे प्राण संकट में आ सकते हैं।

इसी प्रकार आचार्य चाणक्य की नीतियां काफी प्रासंगिक है। इन नीतियों का अनुसरण करके व्यक्ति हर समस्या से छुटकारा पाकर बुलंदियों को छू सकता है। ऐसे ही आचार्य चाणक्य से जानिए

चाणक्यनीति के अनुसार किन लोगों से कभी बैर नहीं करना चाहिए

*1 – **शस्त्री**: जिसके हाथ में शस्त्र यानी हथियार हो उससे विरोध या झगड़ा नहीं करना चाहिए। क्योंकि क्रोध अधिक बढ़ने पर शस्त्री अपने हथियार का प्रयोग कर विरोध करने वाली की जान ले सकता है।*

*2- **मर्मी:** जो व्यक्ति आपके अंतरंग राज जानता हो यानी मर्मी या लंगोटिया यार जो हमारे सभी रहस्यों को जानता है उस व्यक्ति से विरोध नहीं करना चाहिए। क्योंकि कहते हैं विभीषण रावण के राज जानता था जो भगवान राम को बता दिए थे। इसी कारण से रावण युद्ध में मारा गया था।*

*3- **प्रभु:** यानी मालिक या राजा से शत्रुता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उसके पास अपार शक्ति होती है वह आपका बड़ा नुकसान कर सकता है।*

*4 – **सठ:** यानी मूर्ख व्यक्ति से बुराई नहीं करनी चाहिए। शास्त्रों में तो ऐसे लोगों से दोस्ती करना भी अच्छा नहीं माना गया है। मूर्ख व्यक्ति उसे मान सकते हैं जिसे अपने ही हित या अहित के बारे में ज्ञान न हो।*

*5– **धनी:** बहुत ही अमीर व्यक्त के साथ पंगा नहीं लेना चाहिए। क्योंकि वह कानून और न्याय को भी खरीद सकता है।*

*6- **वैद्य:** यानी डॉक्टर से कभी झगड़ा नहीं करना चाहिए। नहीं तो वह कभी भी आपको संकट में डाल सकता है।*

*7- **बंदि:** यानी याचक या इधर-उधर खबर देने वाले। ऐसे व्यक्ति से भी बुराई करना ठीक नहीं माना जाता।*

*8- **कवि:** कवि की श्रेणी में पत्रकार, वक्ता और लेखक को भी ले सकते हैं। इन लोगों से भी दुश्मनी नहीं करना चाहिए।*

*9 – **खाना बनाने वाला/वाली** – रसोइया यानी कुक से भी कभी बुराई नहीं करना चाहिए। अन्यथा आपको हानिकारक भोजन दे सकता है।*

चौ० – जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई॥

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥

यदि ऐसा करूँ तो भी इसमें कोई बड़ाई नहीं है। मरे हुएको मारने में कुछ भी पुरुषत्व (बहादुरी) नहीं है। वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा,

चौ० –सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥

तनु पोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥

नित्यका रोगी, निरन्तर क्रोधयुक्त रहनेवाला, भगवान् विष्णु से विमुख, वेद और संतोंका विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करनेवाला, परायी निन्दा करने वाला और पाप की खान (महान् पापी) – ये चौदह प्राणी जीते ही मुर्देके समान हैं।

प्रासंगिकता

यह उस समय की बात है जब भगवान श्रीराम तथा लंकापति रावण के बीच युद्ध चल रहा था। श्री राम ने बालि के बुद्धिमान तथा बलशाली पुत्र अंगद को युद्ध के लिये भेजा। रावण और अंगद के बीच संवाद में अंगद ने उपरोक्त तुलसीकृत चौपाइयों के अनुसार रावण को 14 प्रकार व्यक्तियों के बारे में बताया जो जीवित होते हुए भी मृत के समान बताए जो इस प्रकार है—
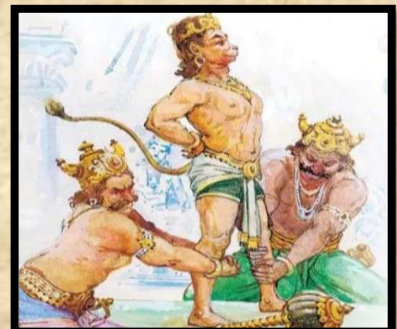
1. **कामवश**— जो व्यक्ति अत्यंत भोगी हो, कामवासना में लिप्त रहता हो, जो संसार के भोगों में उलझा हुआ हो, । जिसके मन की इच्छाएं कभी खत्म नहीं होतीं और जो प्राणी सिर्फ अपनी इच्छाओं के अधीन होकर ही जीता है, वह मृत समान है। वह अध्यात्म का सेवन नहीं करता है, सदैव वासना में लीन रहता है।
2. **वाम मार्गी**— जो व्यक्ति पूरी दुनिया से उल्टा चले, जो संसार की हर बात के पीछे नकारात्मकता खोजता हो; नियमों, परंपराओं और लोक व्यवहार के खिलाफ चलता हो, वह वाम मार्गी कहलाता है। ऐसे काम करने वाले लोग मृत समान माने गए हैं।
3. **कंजूस**— अति कंजूस व्यक्ति भी मरा हुआ होता है। जो व्यक्ति धर्म कार्य करने में, आर्थिक रूप से किसी कल्याणकारी कार्य में हिस्सा लेने में हिचकता हो, दान करने से बचता हो, ऐसा आदमी भी मृतक समान ही है।

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान्।
मत्तः प्रमत्तः उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥

अर्थात : दस प्रकार के लोग धर्म-विषयक बातों को महत्त्वहीन समझते हैं । ये लोग हैं - नशे में धुत्त व्यक्ति, लापरवाह, पागल, थका-हारा व्यक्ति, क्रोध, भूख से पीड़ित, जल्दबाज, लालची, डरा हुआ तथा काम पीड़ित व्यक्ति । विवेकशील व्यक्तियों को ऐसे लोगों की संगति से बचना चाहिए । ये सभी विनाश की और ले जाते हैं ।

4. अति दरिद्र:-गरीबी सबसे बड़ा श्राप है। जो व्यक्ति धन, आत्म-विश्वास, सम्मान और साहस से हीन हो, वह भी मृत ही है। अत्यंत दरिद्र भी मरा हुआ है। गरीब आदमी को दुत्कारना नहीं चाहिए, क्योंकि वह पहले ही मरा हुआ होता है। दरिद्र-नारायण मानकर उनकी मदद करनी चाहिए।
5. **विमूढ़**— अत्यंत मूढ़ यानी मूर्ख व्यक्ति भी मरा हुआ ही होता है। जिसके पास बुद्धि-विवेक न हो, जो खुद निर्णय न ले सके, यानि हर काम को समझने या निर्णय लेने में किसी अन्य पर आश्रित हो, ऐसा व्यक्ति भी जीवित होते हुए मृतक समान ही है, मूढ़ अध्यात्म को नहीं समझता।
6. **अजसि**— जिस व्यक्ति को संसार में बदनामी मिली हुई है, वह भी मरा हुआ है। जो घर-परिवार, कुटुंब-समाज, नगर-राष्ट्र, किसी भी ईकाई में सम्मान नहीं पाता, वह व्यक्ति भी मृत समान ही होता है।
7. सदा रोगवश:-जो व्यक्ति निरंतर रोगी रहता है, वह भी मरा हुआ है। स्वस्थ शरीर के अभाव में मन विचलित रहता है। नकारात्मकता हावी हो जाती है। व्यक्ति मृत्यु की कामना में लग जाता है। जीवित होते हुए भी रोगी व्यक्ति जीवन के आनंद से वंचित रह जाता है।
8. **अति बूढ़ा**— अत्यंत वृद्ध व्यक्ति भी मृत समान होता है, क्योंकि वह अन्य लोगों पर आश्रित हो जाता है। शरीर और बुद्धि, दोनों अक्षम हो जाते हैं। ऐसे में कई बार वह स्वयं और उसके परिजन ही उसकी मृत्यु की कामना करने लगते हैं, ताकि उसे इन कष्टों से मुक्ति मिल सके।

9. **सतत क्रोधी**— हर समय क्रोध में रहने वाला व्यक्ति भी मृतक समान ही है। ऐसा व्यक्ति हर छोटी-बड़ी बात पर क्रोध करता है। क्रोध के कारण मन और बुद्धि दोनों ही उसके नियंत्रण से बाहर होते हैं।
10. **अघ खानी**—जो व्यक्ति पाप कर्मों से अर्जित धन से अपना और परिवार का पालन-पोषण करता है, वह व्यक्ति भी मृत समान ही है। उसके साथ रहने वाले लोग भी उसी के समान हो जाते हैं। हमेशा मेहनत और ईमानदारी से कमाई करके ही धन प्राप्त करना चाहिए। पाप की कमाई पाप में ही जाती है और पाप की कमाई से नीच गोत्र, निगोद की प्राप्ति होती है।
11. **तनु पोषक**— ऐसा व्यक्ति जो पूरी तरह से आत्म संतुष्टि और खुद के स्वार्थों के लिए ही जीता है, संसार के किसी अन्य प्राणी के लिए उसके मन में कोई संवेदना न हो, ऐसा व्यक्ति भी मृतक समान ही है। जो लोग खाने-पीने में, वाहनों में स्थान के लिए, हर बात में सिर्फ यही सोचते हैं कि सारी चीजें पहले हमें ही मिल जाएं, बाकी किसी अन्य को मिलें न मिलें, ऐसे लोग समाज और राष्ट्र के लिए अनुपयोगी होते हैं।
12. **निंदक व्यक्ति**— अकारण व पर निंदा करने वाला व्यक्ति भी मरा हुआ होता है। जिसे दूसरों में सिर्फ कमियाँ ही नजर आती हैं, जो व्यक्ति किसी के अच्छे काम की भी आलोचना करने से नहीं चूकता है, ऐसा व्यक्ति जो किसी के पास भी बैठे, तो सिर्फ किसी न किसी की बुराई ही करे, वह व्यक्ति भी मृत समान होता है।
13. **परमात्म विमुख**—जो व्यक्ति ईश्वर यानि परमात्मा का विरोधी है, वह भी मृत समान है। जो व्यक्ति यह सोच लेता है कि कोई परमतत्व है ही नहीं; हम जो करते हैं, वही होता है, संसार हम ही चला रहे हैं, जो परमशक्ति में आस्था नहीं रखता, ऐसा व्यक्ति भी मृत माना जाता है।
14. **श्रुति, संत विरोधी**— जो संत, ग्रंथ, पुराणों का विरोधी है, वह भी मृत समान है। श्रुत और संत, समाज में अनाचार पर नियंत्रण (ब्रेक) का काम करते हैं। अगर गाड़ी में ब्रेक न हो, तो कहीं भी गिरकर एक्सीडेंट हो सकता है। वैसे ही समाज को संतों की जरूरत होती है, वरना समाज में अनाचार पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाएगा।

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्तिताः।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः॥

अर्थ— धर्मशास्त्रों के व्याख्याकारों द्वारा यही उद्घोषित किया जाता है कि दरिद्र, बीमार, मूर्ख, अपने परिवार से दूर विदेश मे रहने वाले तथा बंधुआ मजदूर ये पांच प्रकार के व्यक्ति दीर्घजीवी होने पर भी एक मृतक के समान होते हैं।
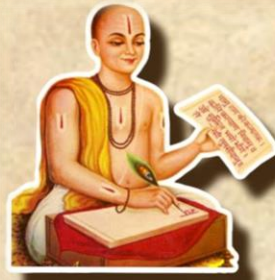
5.33 चार रिश्तों में समान दृष्टिकोण

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।

सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।

ताहि बधें कछु पाप न होई॥

भावार्थ— [श्रीरामजीने कहा-] हे मूर्ख! सुन, छोटे भाईकी स्त्री, बहिन, पुत्रकी स्त्री और कन्या – ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।

प्रासंगिकता

जब बालि श्रीराम के बाण से घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, तब बालि ने श्रीराम से कहा कि आप धर्म की रक्षा करते हैं तो मुझे (बालि को) इस प्रकार बाण क्यों मारा? इस प्रश्न के जवाब में श्रीराम ने उपरोक्त चौपाईयों के अनुसार कहा कि: छोटे भाई की पत्नी, बहन, पुत्र की पत्नी और पुत्री, ये सब समान होती हैं और जो व्यक्ति इन्हें बुरी नजर से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता है। बालि, तूने अपने भाई सुग्रीव की पत्नी पर बुरी नजर रखी और सुग्रीव को मारना चाहा। इस पाप के कारण तुझे बाण मारा है। इस जवाब से बालि संतुष्ट हो गया और श्रीराम से अपने किए
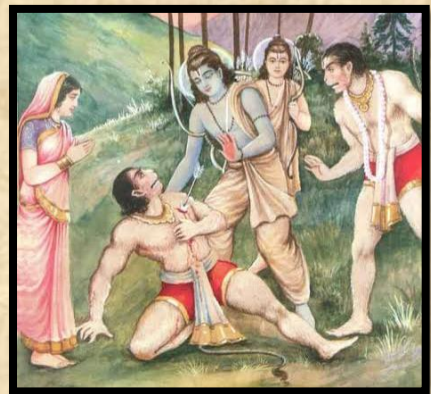
पापों की क्षमा याचना की। इसके बाद बालि ने अगंद को श्रीराम की सेवा में सौंप दिया। इसके बाद बालि ने प्राण त्याग दिए। बालि की पत्नी तारा विलाप करने लगी। तब श्रीराम ने तारा को ज्ञान दिया कि यह शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु से मिलकर बना है। बालि का शरीर तुम्हारे सामने सोया है, लेकिन उसकी आत्मा अमर है तो विलाप नहीं करना चाहिए। इस प्रकार समझाने के बाद तारा शांत हुई। इसके बाद श्रीराम ने सुग्रीव को राज्य सौंप दिया।

दो० – सचिव बैद गुर तीनि जौं, प्रिय बोलहिं भय आस।

राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिहीं नास॥

मन्त्री, वैद्य और गुरु, ये तीन यदि [अप्रसन्नताके] भय या [लाभकी] आशा से, [हितकी बात न कहकर] प्रिय बोलते हैं (ठकुरसुहाती कहने लगते हैं) तो [क्रमशः] राज्य, शरीर और धर्म, इन तीन का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

प्रासंगिकता

उपरोक्त दोहे के माध्यम से तुलसीदास जी का कहना है कि हमें किसी भी प्रकार से मंत्री वैद्य और गुरु को अप्रसन्न नहीं करना चाहिए क्योंकि मंत्री से एक अच्छी हितकारी मंत्रणा प्राप्त होती है, वैद्य हमारे शरीर की बीमारी को दूर करता है एवं गुरु की तो महिमा अपरंपार है जो हमारी मन की बीमारी गुरु ही दूर करता है अर्थात हमें जीवन के असली ज्ञान का दर्शन कराता है, हमारा मार्गदर्शन कराता है। राजा को चाहिए कि उसे एक अच्छा मंत्री मिले, अस्वस्थ व्यक्ति को एक अच्छा वैद्य मिले जो हमेशा के लिए बीमारी को दूर करे और शिष्य को एक अच्छा गुरु मिले। इनमें गुरु का पद सर्वश्रेष्ठ है चाहे राजा हो, मंत्री हो, नेता हो एक विद्यार्थी हो उसके लिए एक अच्छे गुरु की अति आवश्यकता होती है। अतः हमें चाहिए इनको हम हमेशा प्रसन्न रखें।। आइए हम इनको एक प्रेरक कहानी के माध्यम से जानते हैं।

प्रेरक प्रसंग— पाटलिपुत्र या पटना के राजा नन्द के तीन मंत्री थे। कावी, सुबन्धु और शकटाल ये उनके नाम थे। यहीं एक कपिल नाम का पुरोहित रहता था। कपिल की स्त्री का नाम देविला था। चाणक्य इन्हीं का पुत्र था। यह बड़ा बुद्धिमान् और वेदों का ज्ञाता था।

एक बार आस-पास के छोटे-मोटे राजाओं ने मिलकर पटना पर चढाई कर दी। कावी मंत्री ने इस चढ़ाई का हाल नन्द से कहा। नन्द ने घबराकर मंत्री से कह दिया कि जाओ जैसे बने उन अभिमानियों कों समझा-बुझाकर वापिस लौटा दो। धन देना पड़े तो वह भी दो। राजाज्ञा पा मंत्री ने उन्हें धन वगैरह देकर लौटा दिया। सच है, बिना मंत्री के राज्य स्थिर हो ही नहीं सकता। एक दिन नन्द को स्वयं कुछ धन की जरूरत पड़ी। उसने खजांची से खजाने में कितना धन मौजूद है, इसके लिए पूछा। खजांची ने कहा – महाराज, धन तो सब मंत्री महाशय ने दुश्मनों को दे डाला। खजाने में तो अब नाममात्र के लिए थोड़ा बहुत धन बचा होगा। यद्यपि दुश्मनों को धन स्वयं राजा ने दिलवाया था और इसलिये गलती उसी की थी, पर उस समय अपनी यह भूल उसे न दिख पड़ी और दूसरे के उस्काने में आकर उसने बेचारे निर्दोष मंत्री को और साथ में उसके सारे कुटुम्बकों को एक अन्धे कुएँ में डलवा दिया। मंत्री तथा उसका कुटुम्ब वहाँ बड़ा कष्ट पाने लगा, इनके खाने-पीने के लिए बहुत थोड़ा सा पानी दिया जाता था। यह इतना थोड़ा होता था कि एक मनुष्य भी उससे अच्छी तरह पेट न भर सकता था, सच है, राजा किसी का मित्र नहीं होता। राजा के इस अन्याय ने कावी के मन में प्रतिहिंसा की आग धधका दी। इस आग ने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। कावी ने तब अपने कुटुम्ब के लोगों से कहा – जो भोजन हमें इस समय मिलता है उसे यदि हम इसी तरह थोड़ा-थोड़ा सब मिलकर खाया करेंगे। तब तो हम धीरे-धीरे सब ही मर मिटेंगे और ऐसी दशा में कोई राजा से उसके इस अन्याय का बदला लेने वाला न रहेगा। पर मुझे यह सहा नहीं जाएगा। इसलिये मैं चाहता हूँ कि मेरा कोई कुटुम्ब का मनुष्य राजा से बदला ले। तब ही मुझे शान्ति मिलेगी। इसलिये इस भोजन को वही मनुष्य अपने में से खाये जो बदला लेने की हिम्मत रखता हो। तब उसके कुटुम्बियों ने कहा – इसका बदला लेने में आप ही समर्थ देख पड़ते हैं। इसीलिये हम खुशी के साथ कहते हैं कि इस भार को आप ही अपने सर पर लें। उस दिन से उनका सारा कुटुम्ब भूखा रहने लगा और धीरे-धीरे सब का सब मर मिटा। इधर कावी अपने रहने योग्य एक छोटा सा गढ़ उस कुएँ में बनाकर दिन काटने लगा। ऐसे रहते उसे कोई तीन वर्ष बीत गए। जब यह हाल आस-पास के राजाओं के पास पहुँचा तब उन्होंने इस समय राज्य को अव्यवस्थित देख फिर चढ़ाई कर दी। अब तो नन्द के कुछ होश ढीले पड़े, अकल ठिकाने आई। अब उसे न सूझ पड़ा कि यह क्या करें ? तब उसे अपने मंत्री कावी की याद आई। उसने नौकरों को आज्ञा दे कुएँ से मंत्री को निकलवाया और पीछा मंत्री की जगह नियत किया। मंत्री ने भी इस समय तो उन राजाओं से सुलह कर नन्द की रक्षा कर ली। पर अब उसे अपना बैर निकालने की चिन्ता हुई। वह किसी मनुष्य की खोज करने लगा, जिससे उसे सहायता मिल सके। एक दिन कावी किसी वन में हवाखोरी के लिए गया हुआ था। इसने वहाँ एक मनुष्य को देखा कि जो काँटो के समान चुभनेवाली दूबा को जड़-मूल से उखाड़-उखाड़कर फेंक रहा था। उसे एक निकम्मा काम करते देखकर कावी ने चकित होकर पूछा – ब्राह्मण देव इसे खोदने से तुम्हारा क्या मतलब है ? क्यों बे-फायदा इतनी तकलीफ उठा रहे हो ? इस मनुष्य का नाम चाणक्य था। इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है ? चाणक्य ने तब कहा – वाह महाशय! इसे आप बे-फायदा बतलाते हैं। आप जानते हैं कि इसका क्या अपराध है ? सुनिये! इसने मेरा पाँव छेद डाला और मुझे महाकष्ट दिया, तब मैं ही क्यों इसे छोड़ने चला ? मैं तो इसका जड़मूल से नाश कर ही उठूँगा। यही मेरा संकल्प है। तब कावी ने उसके हृदय की थाह लेने के लिए कि इसकी प्रतिहिंसा की आग कहाँ जाकर ठण्डी पड़ती है, कहा – तो महाशय! अब इस बेचारी को

क्षमा कीजिए, बहुत हो चुका। उत्तर में चाणक्य ने कहा – नहीं, तब तक इसके खोदने से लाभ ही क्या जब तक कि इसकी जड़ें बाकी रह जायें। उस शत्रु के मारने से क्या लाभ जबकि उसका सिर न काट लिया जाये ? चाणक्य की यह ओजस्विता देखकर कावी को बहुत संतोष हुआ। उसे निश्चय हो गया कि इसके द्वारा नन्द कुल का जड़-मूल से नाश हो सकेगा। इससे अपने को सहायता मिलेगी। अब सूर्य और राहु का योग मिला देना अपना काम है। किसी तरह नन्द के सम्बन्ध में इसका मनमुटाव करा देना ही अपने कार्य का श्रीगणेश हो जायेगा। कावी मंत्री इस तरह का विचार कर ही रहा था कि प्यासे को जल की आशा होने की तरह का योग मिल ही गया। इसी समय चाणक्य की स्त्री यशस्वती ने आकर चाणक्य से कहा – सुनती हूँ, राजा नन्द ब्राह्मणों को गौदान किया करते हैं। तब आप भी जाकर उनसे गौ लाइए न ? चाणक्य ने कहा – अच्छी बात है, मैं अपने महाराज के पास जाकर जरूर गौ लाऊँगा। यशस्वती के मुँह से यह सुनकर कि नन्द गौओं का दान किया करता है, कावी मंत्री खुश होता हुआ राज-दरबार में गया और राजा से बोला – महाराज! क्या आज आप गौएं दान करेंगे ? ब्राह्मणों को इकट्ठा करने की योजना की जाय ? महाराज, आपको तो यह पुण्य कार्य करना ही चाहिए। धन का ऐसी जगह सदुपयोग होता है। मंत्री ने अपना चक्र चलाया और वह राजा पर चल भी गया। सच है, जिनके मन में कुछ और होता है, जो वचनों से कुछ और बोलते हैं तथा शरीर जिनका माया से सदा लिपटा रहता है, उन दुष्टों की दुष्टता का पता किसी को नहीं लग पाता। कावी की सत्सम्मति सुनकर नन्द ने कहा – अच्छा ब्राह्मणों को आप बुलवाइए, मैं उन्हें गौएं दान करूँगा। मंत्री जैसा चाहता था, वही हो गया। वह झटपट जाकर चाणक्य को ले आया और उसे सबसे आगे रख आसन पर बैठा दिया। लोभी चाणक्य ने तब अपने आस-पास रखे हुए बहुत से आसनों को घर ले जाने की इच्छा से इकट्ठा कर अपने पास रख लिया। उसे इस प्रकार लोभी देख कावी ने कपट से कहा – पुरोहित महाराज! राजा साहब कहते हैं और बहुत से ब्राह्मण विद्वान् आए हैं, आप उनके लिये आसन दीजिये। चाणक्य ने तब एक आसन निकाल कर दे दिया। इसी तरह मंत्री ने उससे सब आसन रखवाकर अन्त में कहा – महाराज, क्षमा कीजिए। मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं तो पराया नौकर हूँ। इसलिये जैसा मालिक कहते हैं उनका हुक्म बजाता हूँ। पर जान पड़ता है कि राजा बड़ा अविचारी है जो आप जैसे सरीखे महाब्राह्मण का अपमान करना चाहता है। महाराज, राजा का कहना है कि आप जिस अग्रासन पर बैठे हैं उसे छोड़कर चले जाइये। यह आसन दूसरे विद्वान् के लिये पहले ही से दिया जा चुका है। यह कहकर ही कावी ने गर्दन

पकड़ चाणक्य को निकाल बाहर कर दिया। चाणक्य एक तो वैसे ही महाक्रोधी और उसका ऐसा अपमान किया गया और वह भी भरी राजसभा में। तब तो अब चाणक्य के क्रोध का पूछना ही क्या ? वह नन्द वंश को जड़मूल से उखाड़ फेंकने का दृढ़ संकल्प कर जाता-जाता बोला कि जिसे नन्द का राज्य चाहना हो, वह मेरे पीछे-पीछे चला आवे। यह कहकर वह चलता बना। चाणक्य की इस प्रतिज्ञा के साथ ही कोई एक मनुष्य उसके पीछे ही गया। चाणक्य उसे लेकर उन आस-पास के राजाओं से मिल गया, और फिर कोई मौका देख एक घातक मनुष्य को साथ ले वह पटना आया और नन्द को मरवाकर आप उस राज्य का मालिक बन बैठा। सच है,मंत्री के क्रोध से कितने राजाओं का नाम इस पृथ्वी पर से न उठ गया होगा। अतः निष्कर्ष यह है कि हमें मंत्री गुरु और वेद से कभी बात नहीं करना चाहिए।

धनानंद ने महान विद्वान चाणक्य का अपमान किया था। चाणक्य ने अपने शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ लगभग 323–322 ई.पू मे धनानंद के राज्य पर आक्रमण किया और धनानंद को मारकर मगध पर अपना शासन स्थापित किया।।

इसी के साथ चन्द्रगुप्त मौर्य ने मौर्य साम्राज्य की नींव रखी जिसने अखण्ड भारत पर शासन स्थापित किया।

एक और प्रसंग आता है चंद्रगुप्त मौर्य को अपने पद पर घमंड हो जाता है और वह अपने मंत्री जो की एक राजनैतिक गुरु भी थे वह थे चाणक्य (कोटिल्य) का अपमान कर देते है और कहते हैं कि राजा हम अपने बल पर बने हुए हैं और इस बात को लेकर वह अपना पद त्याग कर चले जाते। फिर क्या बाद में राजा और राज्य संकट में आ जाता। लेकिन बाद फिर मिलन हो जाता है राजा चंद्रगुप्त मौर्य आचार्य चाणक्य से माफ़ी मागते है। और फिर राज्य हरा भरा हो जाता है। इस ऐतिहासिक कहानी को शोध के सम्पूर्ण अध्यायों के बाद संदर्भ ग्रंथ सूची में लिंक सर्च कर विस्तार से जरूर पड़ें।
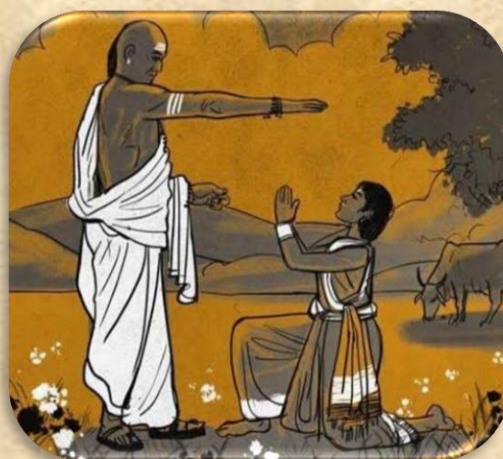
एक राजा को पढने लिखने का बहुत शौक था। एक बार उसने मंत्री-परिषद् के माध्यम से अपने लिए एक शिक्षक की व्यवस्था की। शिक्षक राजा को पढ़ाने के लिए आने लगा। राजा को शिक्षा ग्रहण करते हुए कई महीने बीत गए, मगर राजा को कोई लाभ नहीं हुआ। गुरु तो रोज खूब मेहनत करता थे परन्तु राजा को उस शिक्षा का कोई लाभ नहीं हो रहा था। राजा बड़ा परेशान, गुरु की प्रतिभा और योग्यता पर सवाल उठाना भी गलत था क्योंकि वो एक बहुत ही प्रसिद्द और योग्य गुरु थे। आखिर में एक दिन रानी ने राजा को सलाह दी कि राजन आप इस सवाल का जवाब गुरु जी से ही पूछ कर देखिये।

राजा ने एक दिन हिम्मत करके गुरूजी के सामने अपनी जिज्ञासा रखी, हे गुरुवर क्षमा कीजियेगा, मैं कई महिनो से आपसे शिक्षा ग्रहण कर रहा हूँ पर मुझे इसका कोई लाभ नहीं हो रहा है। ऐसा क्यों है ?

गुरु जी ने बड़े ही शांत स्वर में जवाब दिया: राजन इसका कारण बहुत ही सीधा सा है..

गुरुवर कृपा कर के आप शीघ्र इस प्रश्न का उत्तर दीजिये, राजा ने विनती की।
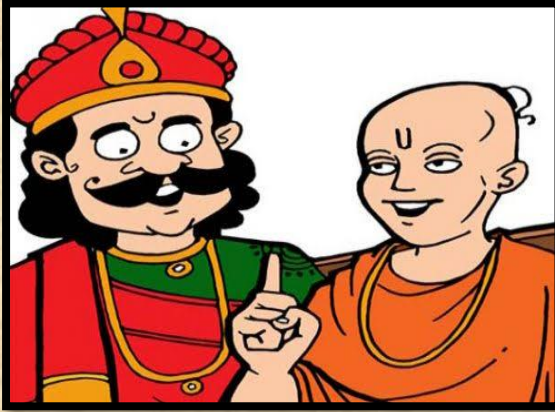
गुरूजी ने कहा: राजन बात बहुत छोटी है परन्तु आप अपने बड़े होने के अहंकार के कारण इसे समझ नहीं पा रहे हैं और परेशान और दुखी हैं। माना कि आप एक बहुत बड़े राजा हैं। आप हर दृष्टि से मुझ से पद और प्रतिष्ठा में बड़े हैं परन्तु यहाँ पर आप का और मेरा रिश्ता एक गुरु और शिष्य का है।..

..गुरु होने के नाते मेरा स्थान आपसे उच्च होना चाहिए, परन्तु आप स्वंय ऊँचे सिंहासन पर बैठते हैं और मुझे अपने से नीचे के आसन पर बैठाते हैं। बस यही एक कारण है जिससे आपको न तो कोई शिक्षा प्राप्त हो रही है और न ही कोई ज्ञान मिल रहा है। आपके राजा होने के कारण मैं आप से यह बात नहीं कह पा रहा था।..

..कल से अगर आप मुझे ऊँचे आसन पर बैठाएं और स्वंय नीचे बैठें तो कोई कारण नहीं कि आप शिक्षा प्राप्त न कर पायें। राजा की समझ में सारी बात आ गई और उसने तुरंत अपनी गलती को स्वीकारा और गुरुवर से उच्च शिक्षा प्राप्त की।

मित्रों, इस छोटी सी कहानी का सार यह है कि हम रिश्ते-नाते, पद या धन वैभव किसी में भी कितने ही बड़े क्यों न हों हम अगर अपने गुरु को उसका उचित स्थान नहीं देते तो हमारा भला होना मुश्किल है। और यहाँ स्थान का अर्थ सिर्फ ऊँचा या नीचे बैठने से नहीं है, इसका सही अर्थ है कि हम अपने मन में गुरु को क्या स्थान दे रहे हैं। क्या हम सही मायने में उनको सम्मान दे रहे हैं या स्वयं के ही श्रेस्ठ होने का घमंड कर रहे हैं? अगर हम अपने गुरु या शिक्षक के प्रति हेय भावना रखेंगे तो हमें उनकी योग्यताओं एवं अच्छाइयों का कोई लाभ नहीं मिलने वाला और अगर हम उनका आदर करेंगे, उन्हें महत्व देंगे तो उनका आशीर्वाद हमें सहज ही प्राप्त होगा।

महाजनस्य संपर्कः कस्य न उन्नतिकारकः।
मद्मपत्रस्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम्

अथार्त : महाजनों गुरुओं के संपर्क से किस की उन्नति नहीं होती। कमल के पत्ते पर पड़ी पानी की बूंद मोती की तरह चमकती है।
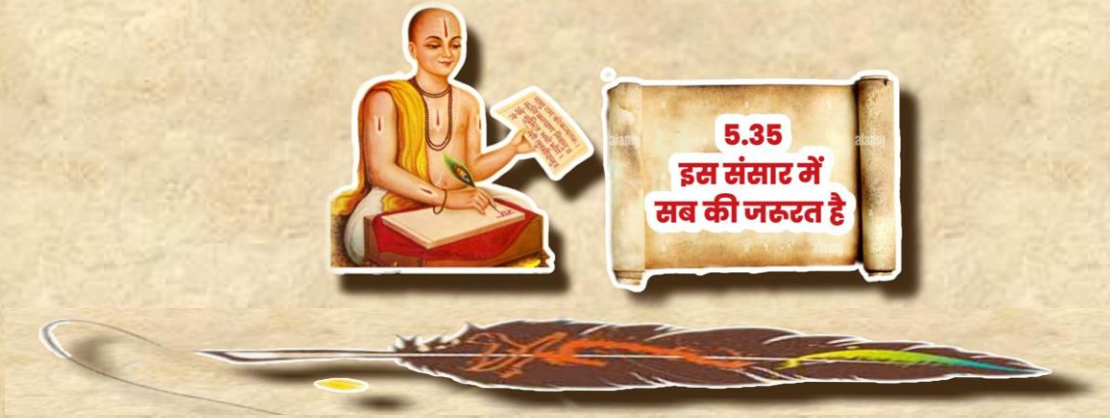
सो० – पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं ।

अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥

भावार्थ— हे गरुड़जी! वेदों में मानी हुई ऐसी नीति है, और सज्जन भी कहते हैं कि अपना परम हित जानकर अत्यन्त नीच से भी प्रेम करना चाहिए।

सो०–पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर ।

कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम

भावार्थ— रेशम कीड़े से होता है, उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसीसे उस परम अपवित्र कीड़े को भी सब कोई प्राणों के समान पालते हैं ।

प्रासंगिकता

इस इस संसार में एक दूसरे को सब की जरूरत है। वस्तु छोटी हो या बड़ी सबकी जरूरत पड़ती है। अतः हमें छोटा–बड़ा न देखते हुए सब का सम्मान करना चाहिए। इस संसार में जिसपर अपना जीवन शुरुआत करते हैं उस संसार में हर एक समान का अपना-अपना महत्व है। जैसे की हमारे जीवन हमेशा होता है कि हम जिस वस्तु को प्रयोग कर लेते हैं उन्हे हम समान नहीं देते हैं। लेकिन यह हमारे स्वभाव के रुप नहीं है। हमें छोटे, बड़े दोनो समानों को महत्व देना चाहिए क्योंकि जहां बड़े समानो का काम नहीं होता है वहां छोटे समानों का नहीं और जहां छोटे समानों का अपना महत्व होता है वहां बड़े समान कर नहीं सकते हैं। इसलिए हमें हर समान को महत्वपूर्ण समझना चाहिए। अत: हमे हमारे जीवन को सही रुप से उपयोग करना चाहिए। जैसे कि—

प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना महत्त्व होता है। कोई भी छोटा अथवा बड़ा नहीं होता। बड़ी चीज जितनी उपयोगी है, छोटी चीज भी उतने ही काम की है। बड़ी-बड़ी मशीनों के कल-पूर्जों को जोड़नेवाले नट- बोल्ट छोटे-छोटे ही होते हैं। सोना अगर कीमती धातु है, तो लोहा मजबूत और रोजाना काम आने वाली धातु है। और भी जैसे कमल की प्रतिष्ठा बनाने में कीचड़ का भी महत्वपूर्ण योगदान है। एक आलीशान मकान में छोटे-छोटे कंकड़ पत्रों का भी योगदान है।

अतः इस संसार में उतना ही प्रजा का है जितना कि राजा का, उतना ही महत्व मजदूर का है जितना कि मालिक का, उतना ही किसान का जितना कि व्यापारी का, अध्यापकों, डॉक्टरों, इंजीनियरों, एक छोटे से पद सफाई कर्मी से लेकर भारत के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, आईएएस, पीसीएस अधिकारी एक देश की उन्नति के लिए सब का महत्वपूर्ण स्थान है। इस जीवन में दुख है तो सुख की परिभाषा है। यदि जन्म लिया है तो मृत्यु निश्चित है इस विषय वस्तु पर गीता में कृष्ण भगवान ने अर्जुन को भलीभांति समझाया है कि इस संसार में छोटी बड़ी वस्तु कोई भी महत्वहीन नहीं है।

प्रेरक प्रसंग— एक गाँव में एक गरीब लड़का नाम लक्ष्मन रहता था। उसके परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत ही कमजोर थी और उन्हें रोज़गार की समस्या से जूझना पड़ता था। लक्ष्मन के माता-पिता ने खेती और मजदूरी करके जीवन चलाने की कोशिश की, लेकिन फिर भी पर्याप्त आय नहीं होती थी। एक दिन, लक्ष्मन ने एक पुरानी किताब में एक प्रेरक कहानी पढ़ी। यह कहानी एक गरीब बच्चे के बारे में थी जिसने अपने छोटे से शहर में एक अद्भुत कारनामा किया। वह बच्चा अपनी अदृश्य साइकिल से लोगों की मदद करता और सभी को खुशी और आशा देता। उसका साथी कहता है, "इस संसार में सब की जरूरत है। "लक्ष्मन को यह समझने की बात याद रखते हुए एक नया उद्यम आया। उसने सोचा कि वह भी कुछ ऐसा कर सकता है जिससे उसे पैसे कमाने में मदद मिल सके और उसके परिवार की स्थिति में सुधार हो सके। लक्ष्मन ने अपनी खुद की छोटी साइकिल बनाने की कला का अभ्यास करना शुरू किया। वह अलग-अलग पुरानी साइकिलों के भंडार में जाकर उन्हें ठीक करता और फिर उन्हें बेच देता। उसकी मेहनत, समर्पण और नई रचनात्मकता ने उसे सफलता तक पहुंचाया। लक्ष्मन की साइकिलों की मांग बढ़ने लगी और वह अपनी माता-पिता को भी मदद करने लगा। अपनी खुद की दुकान खोलकर, वह अपने परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने लगा। धीरे-धीरे, लक्ष्मन की छोटी साइकिल की दुकान में बढ़ोतरी हुई और वह एक सफल व्यवसायी बन गया। उसने दूसरों को भी रोज़गार देना शुरू किया और गरीब लोगों की मदद करने का मार्ग अपनाया। लक्ष्मन ने इस संसार में सब की जरूरत होने का सत्य महसूस किया और अपने साथी से सहयोग करते हुए उसके परिवार की स्थिति को सुधारने में सक्षम हुआ। उसने यह देखा कि हमारी मेहनत, समर्पण, और सहायता से हम दूसरों के जीवन में बदलाव ला सकते हैं और उन्हें आशा का संदेश दे सकते हैं।
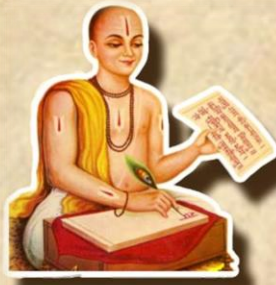
प्रीति बिरोध समान सन, करिअ नीति असि आहि।

जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि॥

भावार्थ— प्रीति और वैर बराबरी वाले से ही करना चाहिये, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मेढकों को मारे, तो क्या उसे कोई भला कहेगा?

प्रासंगिकता

इसी बात को तुलसीदास जी अन्यत्र अपनी रचना 'दोहावली' में यही बात लिखते हैं—

'तुलसी' कबहुँ न त्यागिए, अपने कुल की रीति। लायक ही सों कीजिए, ब्याह, बैर अरु प्रीति॥ अर्थात् अपने कुल की रीति को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। वैर, विवाह और प्रीति अपने समान व्यक्तियों से ही करना चाहिए।

प्रेरक प्रसंग— एक बार की बात है, एक अकेला मृगपति जंगल में रहता था। उसके पास कई मेढ़क रहते थे। एक दिन, मेढ़कों ने उसे परेशान करना शुरू कर दिया। वे उसके आस-पास घूमने लगे और उसे परेशान करने के लिए बहुत कोशिश करने लगे। जब यह सब देखा गया, तो उसे बहुत गुस्सा आया। वह अपनी नीति के अनुसार एक बड़ा सिंह बनकर उन सभी मेढ़कों को मारने की कोशिश करने लगा। लेकिन उनकी इस कोशिश में वह सफल नहीं हो सका। उसे अन्य जानवरों ने पकड़ लिया और उसे मार डाला। सब लोग यह देखकर अचंभित हो गए। कोई भी उसे भला नहीं कह सका क्योंकि वह मेढ़कों के बीच में उच्चतमता को लेकर लड़ने चला गया था।

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।

मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान॥

भावार्थ— बिना द्वैतबुद्धि के क्रोध कैसा? और बिना अज्ञानके क्या द्वैतबुद्धि हो सकती है? माया के वश में रहने वाला परिच्छिन्न जड़ जीव क्या ईश्वर के समान हो सकता है?

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥ परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥

भावार्थ— सबका हित चाहने से क्या कभी दुःख हो सकता है? जिसके पास पारसमणि है, उसके पास दरिद्रता रह सकती है? दूसरे से द्रोह करने वाले क्या निर्भय हो सकते हैं? और कामी क्या कलङ्करहित विदाग) रह सकते हैं?

बस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें॥

काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी॥

भावार्थ— ब्राह्मण का बुरा करने से क्या वंश रह सकता है? स्वरूप की पहिचान (आत्मज्ञान) होने पर क्या आसक्तिपूर्वक] कर्म हो सकते हैं? दुष्टों के संग से क्या किसी के सुबुद्धि उत्पन्न हुई है? परस्त्रीगामी उत्तम गति पा सकता है?।

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरि निंदक॥

राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें॥

भावार्थ— परमात्मा को जानने वाले कहीं जन्म-मरण [के चक्कर] में पड़ सकते हैं? भगवान् की निन्दा

करनेवाले कभी सुखी हो सकते हैं? नीति बिना जाने क्या राज्य रह सकता है? श्री हरि के चरित्र वर्णन करने पर क्या पाप रह सकते हैं?

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावड़ कोई ॥

लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥

भावार्थ— बिना पुण्य के क्या पवित्र यश [प्राप्त] हो सकता है? बिना पाप के भी क्या कोई अपयश पा सकता है? जिसकी महिमा वेद, संत और पुराण गाते हैं उस हरि भक्ति के समान क्या कोई दूसरा लाभ भी है?

हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई ॥

अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥

भावार्थ— हे भाई! जगत में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्य का शरीर पाकर भी श्रीरामजीका भजन न किया जाय? चुगलखोरी के समान क्या कोई दूसरा पाप है? और है गरुड़जी! दया के समान क्या कोई दूसरा धर्म है?

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ॥

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥

भावार्थ— हे पक्षिराज गरुड़! अब मैं आपसे अपना निजी अनुभव कहता हूँ [वह यह है कि] भगवान्‌के भजन बिना क्लेश दूर नहीं होते। हे पक्षिराज! सुनिये, श्रीरामजीकी कृपा बिना श्रीरामजीकी प्रभुता नहीं जानी जाती।

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥

प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥

भावार्थ—प्रभुता जाने बिना उन पर विश्वास नहीं जमता, विश्वास के बिना प्रीति नहीं होती और प्रीति बिना भक्ति वैसे ही दृढ़ नहीं होती जैसे हे पक्षिराज! जलकी चिकनाई ठहरती नहीं।

सो० – बिनु गुर होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु।

गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥

भावार्थ—गुरु के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? अथवा वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्री हरि की भक्ति के बिना क्या सुख मिल सकता है।

सो० – कोऊ बिश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।

चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥

भावार्थ—हे तात! स्वाभाविक संतोष के बिना क्या कोई शान्ति पा सकता है? [चाहे] करोड़ों उपाय करके पच-पच मरिये, [फिर भी] क्या कभी जल के बिना नाव चल सकती है?

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥

राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥

भावार्थ—संतोष के बिना कामना का नाश नहीं होता और कामनाओं के रहते स्वप्रमें भी सुख नहीं हो सकता। और श्रीरामके भजन बिना कामनाएँ कहीं मिट सकती हैं? बिना धरतीके भी कहीं पेड़ उग सकता है ?

बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ॥ श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ़ कोई॥

भावार्थ—विज्ञान (तत्त्वज्ञान) के बिना क्या समभाव आ सकता है? आकाश के बिना क्या कोई अवकाश (पोल) पा सकता है? श्रद्धा के बिना धर्म [का आचरण] नहीं होता। क्या पृथ्वीतत्त्व के बिना कोई गन्ध पा सकता है?

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥

सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई॥

भावार्थ—तप के बिना क्या तेज फैल सकता है? जल तत्त्व के बिना संसार में क्या रस हो सकता है? पण्डितजनों की सेवा बिना क्या शील (सदाचार) प्राप्त हो सकता है! हे गोसाई! जैसे बिना तेज (अग्नि- तत्त्व) के रूप नहीं मिलता।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ विहीन समीरा॥

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनुहरि भजन न भव भय नासा॥

निज-सुख (आत्मानन्द) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है? वायु-तत्त्व के बिना क्या स्पर्श हो सकता है? क्या विश्वास के बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है? इसी प्रकार श्रीहरिके भजन बिना जन्म-मृत्यु के भय का नाश नहीं होता।

दो० – बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।

राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥

भावार्थ—बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना श्रीरामजी पिघलते (ढरते) नहीं और श्रीरामजी की कृपा के बिना जीव स्वप्नमें भी शान्ति नहीं पाता।

प्रासंगिकता

(भर्तहरि रचित नीतिशतकम् से)

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ।। ५५ ।।

अर्थ:
यदि लोभ है तो और गुणों की जरुरत ? यदि परनिन्दा या चुगलखोरी है, तो और पापों की क्या आवश्यकता ? यदि सत्य है, तो तपस्या से क्या प्रयोजन ? यदि मन शुद्ध है तो तीर्थों से क्या लाभ ? यदि सज्जनता है तो गुणों की क्या जरुरत ? यदि कीर्ति है तो आभूषणों की क्या आवश्यकता ? यदि उत्तम विद्या है तो धन का क्या प्रयोजन ? यदि अपयश है तो मृत्यु से और क्या होगा ?

(महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय 13 से)

कायेन त्रिविधं कर्म वाचाचापि चतुर्विधम्।

मनसात्रिविधं चैव दश कर्मपथाँ त्यजेत् ॥

भीष्म जी बोले – हे युधिष्ठिर! शरीर से तीन, वाणी के चार और मन के तीन पाप होते हैं। इनको त्याग देना चाहिए।

प्राणानिपातः स्तैन्यं च परदारा नथापि च।

त्रीणि पायानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत् ॥

हिंसा, चोरी (अन्याय से दूसरे का धन हरण करना) पर स्त्री गमन, यह तीन शरीर के पाप हैं। इनको सर्वथा त्याग देना चाहिए।

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः ।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।। १९ ।।

अर्थ:
बाजूबन्द, चन्द्रमा के समान मोतियों के हार, स्नान, चन्दनादि के लेपन, फूलों के श्रृंगार और सँवारे हुए, बालों से पुरुष की शोभा नहीं होती; पुरुष की शोभा केवल संस्कार की हुई वाणी से है; क्योंकि और सब भूषण निश्चय ही नष्ट हो जाते है, किन्तु वाणी-रुपी भूषण सदा वर्तमान रहता है ।

असत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा ।

चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत् ॥

व्यर्थ का बकवाद, कडुआ भाषण, चुगलखोरी और मिथ्या भाषण । हे राजन्! यह चार वाणी के पाप हैं, इनको त्याग दें यहाँ तक कि मन से भी चिन्तन न करे।

अनभिध्यापरस्वेषु सर्व सत्वेषु सौहृदम् ।

कर्मण फलमस्तीति त्रिविधं मानसाचरेत् ॥

दूसरे का धन लेने की इच्छा न करना, प्राणीमात्र का शुभ चिन्तक होना, कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है ऐसी भावना रखना, यह मन के तीन पुण्य हैं, इनके विपरीत पराये धन को चाहना, दूसरे का बुरा चाहना, कम का फल नहीं मिलता ऐसी नास्तिक बुद्धि रखना पाप है।

ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक् कर्म बुद्धिभिः । ते तपन्ति महात्मानो न शरीरस्य शोषणम् ॥

जो इन दस पापों को मन, वाणी, कर्म और बुद्धि से नहीं करता वही महात्मा है। शरीर को सुखाने मात्र से कोई महात्मा नहीं होता।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥

निज दुख गिरि सम रज करिजाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥ १॥

जो लोग मित्रके दुःखसे दुःखी नहीं होते, उन्हें देखनेसे ही बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वतके समान दुःख को धूल के समान और मित्रके धूल के समान दुःखको सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने।

जिन्ह के असि मति सहजन आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥ २॥

जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्गपर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपाव।

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥

बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥ ३॥

देने-लेने में मन में शंका न रखे। अपने बलके अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय में तो सदा सौगुना स्नेह करे। वेद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्रके गुण (लक्षण) ये हैं।

आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥

जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥ ४॥

जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मनमें कुटिलता रखता है – हे भाई! [इस तरह] जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है।

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥ ५॥

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र, ये चारों शूल के समान [पीड़ा देनेवाले] हैं।

प्रासंगिकता

दोस्ती इस दुनिया का सबसे अनमोल रिश्ता होता है, ये दोस्ती का रिश्ता तो इंसानियत से होता है, जो एकबार इस दोस्ती के रिश्ते में बध जाते है, तो जीवन में दोस्ती के लिए एक हो जाते है।जैसा की हम सभी जानते है, की मित्रता यानि दोस्ती एक ऐसा रिश्ता हो जो जब लोगो के बीच जुड़ता है तो फिर तो फिर एक दुसरे के सुख दुःख सब एक समान हो जाते है और यही मित्रता लोगो के लिए एक मिशाल बन जाती है, वैसे तो दुनिया में अनेको प्रकार के रिश्तो में हम एक दूसरे सरे से बधे हुए है लेकिन इन रिश्तो में कही न कही खून का रिश्ता जरुर होता है। लेकिन दोस्ती या मित्रता एक ऐसा रिश्ता है जो बिना किसी खून के रिश्ते का होता है लेकिन जब दो लोगो के बीच अगर सच्ची दोस्ती हो तो फिर यही दोस्ती अपनों से ज्यादा भरोशेमंद हो जाती है।

वैसे तो भारतीय इतिहास अनेको महापुरुषों के महान गाथाओ से भरा पड़ा है इनमे मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सुग्रीव की मित्रता, श्रीकृष्ण और सुदामा की मित्रता, कर्ण और दुर्योधन की मित्रता, अर्जुन और श्री कृष्ण की मित्रता हमारे लिए महत्वपूर्ण उदाहरण है। इन कहानियों की गाथा पड़ने पर यही पता चलता है कि हम चाहे कितने भी बड़े क्यों न हो जाये अगर किसी से दोस्ती की जाय तो वह उच–नीच अमीरी–गरीबी या मानव भेदभाव नही देखा जाता है मित्र के लिए निस्वार्थ किसी भेदभाव से सिर्फ उसके हितो को सबसे उपर रखा जाता है

हमारा मित्र सच्चा पथ प्रदर्शक हो तो जिन्दगी की तमाम उलझने मित्र के बताये सही रास्ते पर चलने से खत्म हो जाती है इस दोस्ती की मिशाल अर्जुन और श्रीकृष्ण की दोस्ती से दी जाती है सबको पता था की अर्जुन महान धनुर्धारी है उसकी वीरता के आगे बड़े बड़े योद्धा परास्त हो जाते थे लेकिन अर्जुन को पता था की बिना श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन के अभाव में वह महाभारत का युद्ध कभी जीत नही सकता था इसलिए अर्जुन ने श्रीकृष्ण के विशाल सेना के बदले श्रीकृष्ण को अपने साथ युद्ध में लिया क्योंकि अगर मित्र सच्चा हो और सही रास्ता दिखाने वाला हो तो बड़े बड़े से चुनौतियों का सामना बड़ी आसानी से किया जा सकता है और अर्जुन का ये निर्णय ही उसे महाभारत का विजेता बनाया.।

एक समय की बात है। एक गाव में दो समृद्ध (धन दौलत से भरपूर सुखी) किसान घनिष्ठ मित्र थे। दोनों में से एक मित्र, एक दिन अपने दोस्त के घर दोस्त का हालचाल पूछने के लिए पहुँचा। तो मित्र की पत्नी ने सूचना दी कि उनके दोस्त तो किसी काम से शहर गए हुए हैं। दोस्त की पत्नी ने अपने पति के परम मित्र की अच्छी आवभगत की, जलपान व स्वादिष्ट भोजन आदि कराया। जिस समय उसके पति के दोस्त घर मिलने आये थे, उस समय वह मित्र की पत्नी मक्खन से घी बनाने में लगी हुई थी। पति के दोस्त के चले जाने पर उस औरत का ध्यान अपने गले के हार पर गया। उसने उसे खूब दूँढा, परन्तु कही भी मिला नहीं। गले का हार सोने का होने से बहोत कीमती था। शाम को पति महोदय घर पहुँचे, तो पत्नी ने हार गुम होने की शिकायत की। पति ने पूछा-"कब खो गया।" उसने बताया उस समय आपके दोस्त आए हुए थे। में भी वहीं बैठी मक्खन बना रही थी तब। पत्नी ने पतिदेव से आग्रह किया कि वह अपने दोस्त से हार के बारे में पूछ आए।

पति महोदय ने इन्कार कर दिया और कहा, “मेरा दोस्त बहुत अच्छा, ईमानदार व पेसेवाला है। वह तुम्हारे हार का क्या करेगा?” वो तुम्हारा हर नहीं चुरा सकता । पत्नी के अधिक जोर देने पर वह दोस्त के घर पहुँच गया। उसने अपने दोस्त से

पूछा, “मित्र तुम्हें मेरी पत्नी के गले के हार के विषय में कुछ मालूम है?” मित्र ने तुरन्त कह दिया मुझे कुछ मालूम नहीं है।

दोस्त ने फिर कहां कि, “तुम मेरी गैर हाजिरी में मेरे घर गए थे। उस समय मेरी पत्नी का सोने का हार गुम हो गया। उस समय दूसरा कोई नहीं आया था। यदि भूल से हार आ गया हो तो बतला दो।” उसका मित्र पहले तो थोड़ी देर चुप रहा फिर बोलां,

“हाँ, याद आया वह हार तो मैं ही ले आया था। मैंने सोचा कि इतना हलका हार मेरे दोस्त की पत्नी के गले में अच्छा नहीं लगता, शोभा नहीं देता था। इसलिए उसे भारी करवाने के लिए सुनार को दे दिया है। उसे दो दिन बाद ले देने को आऊंगा।

दो दिन से पहले ही वह हार अपने दोस्त के घर ले कर पहुँचा। दोस्त की पत्नी ने नया चमकीला, सुन्दर भारी हार देखा तो दोनों खुश हुए। कुछ महीने बाद कोई किसान उसके घर घी लेने पहुँच गया। औरत ने जब किसान को घी देने के लिए उसके पात्र में चमचा डाला तो देखा कि जो घी का बर्तन औरत के हाथ में था उसमें नीचे सोने का हार पड़ा हुआ था। उसकी आखें फटी की फटी रह गई। किसान को घी देकर चलता किया। फिर यह घटना उसने अपने पति को बताई और ,कहा- “हमसे बड़ी भारी भूल हो गई। जब आपका दोस्त यहाँ आया था, मैं घी बना रही थी, तो मेरा गले का हार मेरे ही घी के बर्तन में गिर गया होगा। जो आज मिल गया। पति देव को भी बड़ा आश्चर्य ‘हुआ। अब पति-पत्नी दोनों सोने के हारों को लेकर अपने दोस्त के पास चले गए। उन्होंने अपने मित्र का हार वापिस लौटाते हुए उनसे पूछा, “जब आपने हार उठाया ही नहीं था तो आपने यह हार उठाने की बात अपने सिर कैसे लगा लिया।” मित्र ने बताया, “यदि मैं हार लेने से इन्कार कर देता तो भी मैं चोर पक्का समझा जाता। जिससे हमारी दोस्ती बेशक टूट जाती। इसलिए मैंने नया हार बनवा कर वह चोरी का शक तुम्हारे मन से हंमेशा के लिए निकाल दिया। जिसे खुशी-खुशी आपने स्वीकार भी किया। इसलिए मैने हार से कीमती दोस्ती को माना। इतना सुन कर पति-पत्नी की आखों से आँसू निकल पड़े और अपनी भूल के लिए क्षमा माँगी। और कहा आपकी सच्ची मित्रता पर में कुर्बान भी हो जाऊँ तो वह भी कम है।

शिक्षा-समझदार व्यक्ति सच्ची मित्रता को छोटी-छोटी बातों से टूटने नहीं देते। इससे यह भी शिक्षा मिलती है कि सच्चे मित्र पर कभी शक नहीं करना चाहिए। ऐसे को बाद में पछताना पड़ता है। सच्चा मित्र एक अमूल्य धन होता है।

किसी नगर में धर्मबुद्धि और पापबुद्धि नाम के दो मित्र थे जो गरीब थे। एक समय पापबुद्धि ने सोचा, मैं बहुत दरिद्र हूँ, इसलिए इस धर्मबुद्धि के साथ प्रदेश जाकर वहां से धन कमाकर उसे ठगूंगा और धनवान बन जाऊंगा। पापबुद्धि ने धर्म बुद्धि से इस विषय पर चर्चा की। धर्मबुद्धि उसके विचार से प्रसन होकर अपने बड़ों की आज्ञा लेकर देशान्तर की यात्रा पर निकल पड़ा। वहां जाकर धर्मबुद्धि के साथ उसने बहुत धन कमाया। कुछ समय बाद वह धन कमाकर ख़ुशी ख़ुशी अपने घर लौटने लगे। रस्ते में जाते हुए अपने घरों से कुछ दुरी पर पापबुद्धि धर्मबुद्धि से कहता है –

"मित्र ! हमने बहुत अधिक धन कमा लिया है इसलिए इसे घर ले जाना ठीक नहीं क्या पता कोई चोर इसे चुरा कर ले जाये, इसलिए हम इसमें से थोड़ा धन ही घर ले जायेंगे और बाकि धन को हम जगल में गाड़ देंगे और जरुरत पड़ने पर थोड़ा-थोड़ा निकालते रहेंगे।

धर्मबुद्धि ने पापबुद्धि के कहे अनुसार वैसा ही किया। एक दिन पापबुद्धि आधी रात में उस धन को निकाल कर और गड्ढे को बंद करके अपने घर लोटा और धर्मबुद्धि से कहने लगा –

"मित्र ! अब हमारे पास धन ख़त्म हो गया है इसलिए हम उस गड्ढे में से धन निकाल कर लाते हैं।

धर्मबुद्धि ने कहा –"मित्र ! ऐसा ही करो।" दोनों उस स्थान पर जाकर देखते हैं कि वहां से धन चोरी हो गया है।

इसपर पापबुद्धि कहता है – "अरे धर्मबुद्धि, तुम्हारे सिवा यह धन किसी ने नहीं निकला, इसलिए तुम मुझे मेरा धन लोटा दो, नहीं तो मैं राजदरबार में फरियाद करूँगा।"

धर्मबुद्धि ने कहा –"अरे मुर्ख ! मैंने यह धन नहीं निकाला, मैं धर्मबुद्धि हूँ, मैं चोरी नहीं कर सकता।

वे दोनों न्यायधीश के पास चले गए। जब न्यायधीश ने धर्मबुद्धि से पूछा कि "क्या तुम्हारा कोई गवाह है जो यह कहे कि तुम निर्दोष हो।" तब धर्मबुद्धि ने कहा कि "मेरा कोई गवाह नहीं है लेकिन अगर मैं सच्चा हूँ तो वहां एक बरगद का वृक्ष है जो मेरा गवाह बनेगा।" पापबुद्धि ने डर के मारे सोचा कि अगर उस पेड़ ने सच में गवाही दे दी तो मैं फंस जाऊंगा और न्यायधीश मुझे दंड देंगे, पापबुद्धि ने अपने घर जाकर चोरी की सारी बात अपने पिता से कह दी और अपने पिता को उस पेड़ के खोखले में जाकर बैठने को कहा और पापबुद्धि ने कहा- "अगर न्याधीश पूछेगा कि चोरी किसने कि तो आप

धर्मबुद्धि का नाम ले देना।" अगले न्यायधीश दोनों को लेकर उस पेड़ पास पहुंचे और पेड़ से पूछा –"हे ! बरगद के पेड़ बता इनमे से किसने चोरी की है ?" बरगद में छिपा पापबुद्धि का पिता कहता है –"चोरी धर्मबुद्धि ने की है।"

इसपर धर्मबुद्धि ने सोचा कि यह दुष्ट पेड़ झूठ बोल रहा है इसलिए मैं इसको आग लगा दूंगा। धर्मबुद्धि ने सुखी लकड़ियां इकट्ठी करके उस पेड़ के चारों तरफ आग लगा दी। तभी उस पेड़ की खोखले में से पापबुद्धि का पिता चिल्लाता हुआ निकला आग से उसका आधा शरीर जल गया और न्यायधीश के सामने यह भी स्पष्ट हो गया कि यह चोरी पापबुद्धि ने ही की है सजा तौर पर पापबुद्धि को पेड़ पर उल्टा लटका दिया।

आद्यतो वापिदरिद्रो वा दुःखित सुखितोऽपिवा ।
निर्दोषश्च सदोषश्च व्यस्यः परमा गतिः ॥ 99

हिंदी अर्थ– चाहे धनी हो या निर्धन, दुःखी हो या सुखी, निर्दोष हो या सदोष - मित्र ही मनुष्य का सबसे बड़ा सहारा होता है।

English Translation: Whether rich or poor, grieving or happy, innocent or bastard - friend is the biggest support of man.

(वाल्मीकि रामायण से)

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव ।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन्मैत्री प्रणश्यति ।।

अर्थ– बुद्धिमान मनुष्य को घास के तिनकों से ढके हुए कुइयां के समान मूर्ख और विचार ही पुरुष का साथ छोड़ देना चाहिए ऐसे व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं की जा सकती।

(महा. उद्योगपर्व 29/48)

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लध्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् । दिनस्य पूर्वार्ध - परार्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ 60 ॥

अर्थः दुष्टों की मैत्री, दोपहर पाहिले की छाया के समान, आरम्भ में बहुत लम्बी चौड़ी होती है और पीछे क्रमशः घटती चली जाती है; किन्तु सज्जनो की मैत्री दोपहर बाद की छाया के समान पहले बहुत थोड़ी सी होती है और पीछे क्रमशः बढ़ने वाली होती है ।

(भर्तृहरि विरचित नीतिशतकम्)

सुर नर मुनि सब के यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थके लिये ही सब प्रीति करते हैं।

जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई॥

जिससे अपना कुछ स्वार्थ होता है, उस पर सभी कोई प्रेम करते हैं।

प्रासंगिकता

स्वार्थ दूसरों की ध्यान किए बिना स्वयं या अपने स्वयं के लाभ, आनन्द या कल्याण हेतु अत्यधिक या विशेष रूप से चिन्तित होने कि अवस्था है। वास्तव में मनुष्य का स्वार्थ उसे अन्य लोगों से दूर ले जाकर नकारात्मक हालातों की ओर धकेलता है। परिणामस्वरूप वह अकेला रह जाता है। स्वार्थ शीशे पर फैली धूल की तरह है जिसकी वजह से मनुष्य अपना प्रतिबिब ही नहीं देख पाता। जब मनुष्य अपने लाभ के लिए कार्य करता है, तो वह उसका स्वार्थ कहलाता है। स्व + अर्थ = स्वार्थ अर्थात खुद का लाभ। संसार का प्रत्येक प्राणी अपने हित का कार्य करता है, यह कोई अपराध नहीं है क्योंकि प्रकृति ने सभी जीवों को जीने का अधिकार दिया है, जिसके लिए स्वार्थ सभी जीवों की स्वाभाविक क्रिया है लेकिन, स्वार्थ की अधिकता को समाज में अनुचित मानी जाती है। किसी को स्वार्थी कहना उसके लिए अपशब्द के समान है, आखिर क्यों? क्योंकि स्वार्थ में लिप्त मनुष्य न केवल दूसरों को दुख पहुंचाता है, बल्कि स्वयं भी दूसरों की नजरों से गिरकर अपने भविष्य के रास्ते बंद कर लेता है। स्वार्थ के लिए शब्दकोश में लोभ के अतिरिक्त कोई

स्व+अर्थ= स्वार्थ
अथति खुद का लाभ।
स्वयं के लाभ के विषय में सोचना तथा किसी भी कार्य में लोभ से जुड़ना जबकि दूसरों के लाभ हानि के विषय में न सोचना ही स्वार्थ है। अत: स्वार्थ पूर्णतया एक अव्यावहारिक एवं असामाजिक प्रक्रिया है। स्वार्थ रिश्तों में आने वाली कड़वाहट का मुख्य कारक है।

शब्द नहीं है। स्वार्थ का जन्म प्रेम के कारण ही होता है। प्रेम एक अद्भुत भावना का समुद्र है, जिसमें व्यक्ति ही नहीं वरन जीव भी जितना समाता है, उतना ही अधिक शाश्वत आत्मिक सुख की प्राप्ति करता है, किन्तु इसके विपरीत स्वार्थ क्षणिक सुख ही प्रदान कर सकता है। स्वार्थ व्यक्ति को, उसकी सोच को कुछ समय के लिए भौतिक सुख दे सकता है लेकिन, स्थाई सुख नहीं। स्वार्थी व्यक्ति सदैव प्राप्ति की इच्छा रखता है, तृष्णा की मारीचिका में उलझा रहता है। यही तृष्णा दंभ, लोभ छल-कपट को बढ़ावा देती है।

स्वयं के लाभ के विषय में सोचना तथा किसी भी कार्य में लोभ से जुड़ना जबकि दूसरों के लाभ हानि के विषय में न सोचना ही स्वार्थ है। अत: स्वार्थ पूर्णतया एक अव्यावहारिक एवं असामाजिक प्रक्रिया है। स्वार्थ रिश्तों में आने वाली कड़वाहट का मुख्य कारक है। जब-जब संबंधों के मध्य स्वार्थ आ जाता है, तब-तब घरों में महाभारत शुरू हो जाती है। बढ़ते भौतिक संसाधनों ने मानव को और भी ज्यादा अवसरवादी और स्वार्थी बना दिया है। जिसके कारण एक-दूसरे के प्रति वैमनस्यता भी चरम पर पहुंच चुकी है।स्वार्थ की अधिकता से जीवन तथा समाज में अनेक समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं या यूं कहें कि संसार में जितनी समस्याएं हैं, वे सभी मनुष्य के स्वार्थ से ही उत्पन्न हुई हैं। वह स्वार्थ पूर्ति के लिए अनुचित कार्यों को अंजाम देने लगता है, जिससे जीवन में भ्रष्टाचार का आरंभ होता है और फिर मनुष्य अपराध की ओर बढ़ने लगता है।

प्रेरक प्रसंग— एक बार एक गांव में एक गड़रिया रहता था। उसका स्वभाव काफी लालची था। वह हमेशा अमीर बनने का सपना देखा करता था। वह गांव में सबसे अमीर बनना चाहता था। उसके पास कुछ बकरियां और उनके बच्चे थे। वे ही उनकी जीविका का साधन था। एक बार वो गांव से बाहर बकरियों को चराने लेकर गया। वह एक नए रास्ते पर निकल पड़ा क्योंकि उसे अच्छी घास ढूंढनी थी। वह कुछ दूर ही चला था तभी तेज बारिश होने लगी। तूफानी हवाएं चल रही थीं। वह एक सुरक्षित स्थान ढूंढ रहा था जिससे वो तूफान से बच सके। फिर उसे कुछ ऊंचाई पर एक गुफा दिखी। उस जगह का जायजा लेने के लिए गड़रिए ने बकरियों को वहीं बांध दिया। जैसे ही वो उस गुफा में पहुंचा तो उसकी आंखें फटी रह गई। वहां कई जंगली भेड़ें मौजूद थीं।

उन्हें देख गड़रिए को लालच आ गया। उसे लगा कि अगर ये सभी भेड़ें उसकी हो जाएं तो वो अमीर हो जाएगा। क्योंकि इस तरह की भेड़ें गांव में किसी के पास नहीं हैं। उसने सोचा कि उन्हें बहला-फुसलाकर वो उन्हें मना लेगा। फिर इन सभी भेड़ों को वो अपने साथ गांव में लेकर चला जाएगा। ये सोचकर वो वापस नीचे उतरा। उसने नीचे उतरकर देखा कि उसकी बकरियां बेहद ही दुबली-पतली हैं और वो भेड़ें हट्टी-कट्टी हैं। ऐसे में उसे इन बकरियों की कोई जरूरत नहीं है। उसने जाकर बकरियों को खोल दिया। उसने यह भी परवाह नहीं की कि वो बारिश में भीग रही थीं। उसने घास का एक गट्ठर तैयार किया। वह इस
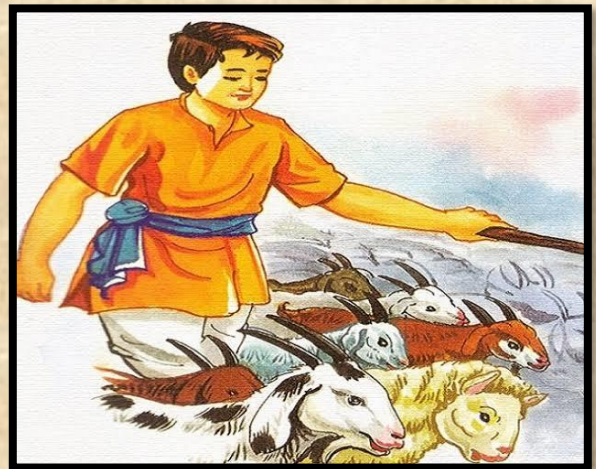
गड्डर को लेकर गुफा में गया और काफी देर तक उन भेड़ों को अपने हाथ से हरी-हरी घास खिलाता रहा। फिर जब तूफान थम गया तो वह बाहर आया। उसने देखा कि उसकी बकरियां जा चुकी थीं। लेकिन उसे दुख नहीं था। क्योंकि वह भेड़ों को अपने पास देखकर खुश था। भेड़ों के बारे में सोचकर वह गुफा की तरफ मुड़ गया। लेकिन उसने देखा कि भेड़ें बारिश रुकने के बाद वहां से कहीं और जाने लगी थीं। वह दौड़कर उनके पास पहुंचा। उसने सभी भेड़ों को अपने साथ ले जाने की कोशिश की लेकिन भेड़ें बहुत थीं। वह अकेला उन्हें नियंत्रित नहीं कर पा रहा था। ऐसे में कुछ ही देर में सारी भेड़े उसकी आंखों से ओझल हो गईं।

यह देख गड़रिये को बेहद गुस्सा आ गया। उसने चिल्लाकर कहा कि उसने बकरियों को भेड़ों के लिए बारिश में बाहर छोड़ दिया। इतनी मेहनत से घास काट कर खिलाई और वो सभी उसे छोड़कर चली गईं। इसने भेड़ों से कहा कि वो कितनी स्वार्थी हैं। गड़रिया बदहवास होकर वहीं बैठ गया। जब उसका गुस्सा शांत हुआ तो उसे समझ आया कि स्वार्थी वो नहीं बल्कि वो खुद है। उसने भेड़ों के लालच में आकर अपनी बकरियां भी खो दीं। ऐसे में इस कहानी का यह सार है कि जो व्यक्ति स्वार्थ और लोभ में फंस जाता है और इस चक्कर में अपनों का साथ छोड़ देता है उसका कोई कभी-भी अपना नहीं बनता है और आखिरी में उसे पछताना पड़ता है।

संभावित कहुँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥

भावार्थ— प्रतिष्ठित पुरुषके लिये अपयशकी प्राप्ति करोड़ों मृत्यु के समान भीषण सन्ताप देनेवाली है।

भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥

जरि तुम्हारि चह सवति उखारी । रूँधहु करि उपाउ बर बारी ॥

भावार्थ—सूर्य कमल के कुलका पालन करनेवाला है। पर बिना जलके वही सूर्य उनको (कमलोंको) जलाकर भस्म कर देता है। सौत कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है। अतः उपायरूपी श्रेष्ठ बाड़ (घेरा) लगाकर उसे रूँध दो (सुरक्षित कर दो) ।

प्रासंगिकता

व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आकलन उसके जीवन-मूल्यों से किया जाता है। जीवन-मूल्य सफलता के लिए जरूरी हैं। वैदिक काल से होते हुए, गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी तक अनेक महापुरुष जीवन-मूल्यों के कारण इतिहास में अमर हो गए। जीवन मूल्य व्यक्ति को सकारात्मक बनाते हैं। याद रखें, जो व्यक्ति मूल्यहीन जीवन जीते हैं वे समाज में व्यर्थ माने जाते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज के लिए बोझ माने जाते हैं। निठल्ले व्यक्ति समाज का कभी भी मार्ग-दर्शन नहीं करते। मूल्यहीन व्यक्ति की जिंदगी पंगु मानी जाती है, जिसमें कोई गति और निरंतरता नहीं होती और सिद्धांतों के अभाव में ऐसे लोग महत्वहीन, अनुपयोगी और परिवार के लिए बोझ स्वरूप होते हैं। सिद्धांत और मूल्य जीवन को ऊर्जा देते हैं। समाज हो चाहे परिवार, सबका संचालन कुछ

आदर्शों और सिद्धांतों से होता है। यदि जीवन में इनका अभाव हो जाए तो समाज का ढांचा गड़बड़ाने लगता है। नियम जीवन को अनुशासित करते हैं। ये जीवन के आधारभूत तत्व हैं। अनियमित व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में सफल नहीं माना जाता। जीवन अनेक सत्यों, आदशरें और नियमों के द्वारा संचालित होता है। इन्हीं के द्वारा जीवन-मूल्य स्थापित होते हैं। संसार के सभी महापुरुष या सफलतम व्यक्ति अपने ऊंचे आदशरें और मान्यताओं के कारण ही समाज में गाथा बनकर अपना नाम रोशन करते हैं। समाज सर्वदा ऐसे लोगों का अनुकरण करता है। रीढ़विहीन या लिजलिजे व्यक्ति का समाज में कभी आदर नहीं होता। ऐसे लोग सदैव आलोचना और निंदा के पात्र होते हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को कुछ मूल्य निर्धारित करने पड़ते हैं। कल्याण और सफलता को पाना है तो हमें मूल्य आधारित जीवन का मार्ग चुनना पड़ेगा। इसके अभाव में जीवन की सार्थकता सदा संदिग्ध बनी रहेगी। हम समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी बनें, यही हमारी सार्थकता है। इसके लिए हमें मूल्य आधारित जीवन जीने के मार्ग का चयन करना पड़ेगा। नि:संदेह मूल्यों का निर्धारण करने में हमारे लिए प्रारंभ में कठिनाइयां आएंगी जिनसे हमें जूझना पड़ेगा। जीवन-मूल्य सहज ही निर्धारित नहीं होते, इसके लिए त्याग और सत्य के तत्व जरूरी हैं। हम दूर न जाकर मात्र गांधी, गोखले, तिलक, राममोहनराय आदि-आदि लोगों की तरफ दृष्टि डालें तो सहज ही पता चल जाएगा कि इन लोगों के जीवन में मूल्यों का क्या स्थान था।

एक राजपुरोहित थे। वे अनेक विधाओं के ज्ञाता होने के कारण राज्य में अत्यधिक प्रतिष्ठित थे। बड़े-बड़े विद्वान उनके प्रति आदरभाव रखते थे। पर उन्हें अपने ज्ञान का लेशमात्र भी अहंकार नहीं था। उनका विश्वास था कि ज्ञान और चरित्र का योग ही लौकिक एवं परमार्थिक उन्नति का सच्चा पथ है। प्रजा की तो बात ही क्या स्वयं राजा भी उनका सम्मान करते थे। उनके आने पर उठकर आसन प्रदान करते थे।

एक बार राजपुरोहित के मन में जिज्ञासा हुई कि राजदरबार में उन्हें आदर और सम्मान उनके ज्ञान के कारण मिलता है

अथवा चरित्र के कारण? इसी जिज्ञासा के समाधान हेतु उन्होंने एक योजना बनाई। योजना को क्रियान्वित करने के लिए राजपुरोहित राजा का खजाना देखने गए। खजाना देखकर लौटते समय उन्होंने खजाने में से पाँच बहुमूल्य मोती उठाए और उन्हें अपने पास रख लिया। खजांची देखता ही रह गया। राजपुरोहित के मन में धन का लोभ हो सकता है। खजांची ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। उसका वह दिन उसी उधेड़बुन में बीत गया।

दूसरे दिन राजदरबार से लौटते समय राजपुरोहित पुन: खजाने की ओर मुड़े तथा उन्होंने फिर पाँच मोती उठाकर अपने पास रख लिए। अब तो खजांची के मन में राजपुरोहित के प्रति पूर्व में जो श्रद्धा थी, वह क्षीण होने लगी।तीसरे दिन जब पुन: वही घटना घटी तो उसके धैर्य का बाँध टूट गया। उसका संदेह इस विश्वास में बदल गया कि राजपुरोहित की नीयत निश्चित ही खराब हो गई है। उसने राजा को इस घटना की विस्तृत जानकारी दी। राजा को इस सूचना से बड़ा आघात पहुँचा। उनके मन में राजपुरोहित के प्रति आदरभाव की जो प्रतिमा पहले से प्रतिष्ठित थी, वह चूर-चूर होकर बिखर गई।चौथे दिन जब राजपुरोहित सभा में आए तो राजा पहले की तरह न सिंहासन से उठे और न उन्होंने राजपुरोहित का अभिवादन किया, यहाँ तक कि राजा ने उनकी ओर देखा तक नहीं। राजपुरोहित तत्काल समझ गए कि अब योजना रंग ला रही है।

उन्होंने जिस उद्देश्य से मोती उठाए थे, वह उद्देश्य अब पूरा होता नजर आने लगा था। यही सोचकर राजपुरोहित चुपचाप अपने आसन पर बैठ गए। राजसभा की कार्यवाही पूरी होने के बाद जब अन्य दरबारियों की भाँति राजपुरोहित भी उठकर अपने घर जाने लगे तो राजा ने उन्हें कुछ देर रुकने का आदेश दिया। सभी सभासदों के चले जाने के बाद राजा ने उनसे पूछा – 'सुना है आपने खजाने में कुछ गड़बड़ी की है।

इस प्रश्न पर जब राजपुरोहित चुप रहे तो राजा का आक्रोश और बढ़ा। इस बार वे कुछ ऊँची आवाज में बोले –'क्या आपने खजाने से कुछ मोती उठाए हैं?' राजपुरोहित ने मोती उठाने की बात को स्वीकार किया। राजा का अगला प्रश्न था – 'आपने कितने मोती उठाए और कितनी बार?' राजा ने पुन: पूछा – 'वे मोती कहाँ हैं?'

राजपुरोहित ने एक पुड़िया जेब से निकाली और राजा के सामने रख दी जिसमें कुल पंद्रह मोती थे। राजा के मन में आक्रोश, दुख और आश्चर्य के भाव एक साथ उभर आए।

राजा बोले – 'राजपुरोहित जी आपने ऐसा गलत काम क्यों किया? क्या आपको अपने पद की गरिमा का लेशमात्र भी ध्यान नहीं रहा। ऐसा करते समय क्या आपको लज्जा नहीं आई? आपने ऐसा करके अपने जीवन भर की प्रतिष्ठा खो दी। आप कुछ तो बोलिए, आपने ऐसा क्यों किया? राजा की अकुलाहट और उत्सुकता देखकर राजपुरोहित ने राजा को पूरी बात विस्तार से बताई तथा प्रसन्नता प्रकट करते हुए राजा से कहा – 'राजन् केवल इस बात की परीक्षा लेने हेतु कि ज्ञान और चरित्र में कौन बड़ा है, मैंने आपके खजाने से मोती उठाए थे अब मैं निर्विकल्प हो गया हूँ। यही नहीं आज चरित्र के प्रति मेरी आस्था पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ गई है।

आपसे और आपकी प्रजा से अभी तक मुझे जो प्यार और सम्मान मिला है। वह सब ज्ञान के कारण नहीं अपितु चरित्र के ही कारण था। आपके खजाने में सबसे अधिक बहुमूल्य वस्तु सोना-चाँदी या हीरा-मोती नहीं बल्कि चरित्र है।

अत: मैं चाहता हूँ कि आप अपने राज्य में चरित्र संपन्न लोगों को अधिकाधिक प्रोत्साहन दें ताकि चरित्र का मूल्य उत्तरोत्तर बढ़ता रहे। कहा जाता है –

चरित्र पर श्लोक

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्, वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतोहतः ॥
—मनुस्मृति

अर्थ – अपने चरित्र की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए। धन तो आता और जाता भी रहता है (पर) धन से क्षीण हो जाने पर भी मनुष्य का कुछ नष्ट नहीं होता; पर यदि उसका चरित्र नष्ट हो गया तो वह संपूर्णतः नष्ट हो गया ।

We should guard our character attentively money can come and go. If money is lost, nothing is lost but if character is lost, everything is lost.

When wealth is lost, nothing is lost;
when health is lost, something is lost;
when character is lost, all is lost.

—Billy Graham
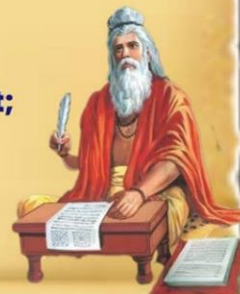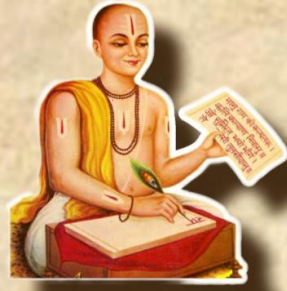
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

भावार्थ—जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता, इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल [शोभाहीन] दिखायी पड़ता है।

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

भावार्थ—मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मनमें धारण कर। पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसंग प्रेम।

दो०- गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥

भावार्थ—तीसरी भक्ति है अभिमान रहित होकर गुरु के चरणकमलों की सेवा। और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहों का गान करे।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥

छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥

भावार्थ—मेरे (राम) मन्त्र का जाए और मुझमें दृढ़ विश्वास- यह पाँचवी भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संतपुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठव जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥

भावार्थ—सातवीं भक्ति है जगत भर को समभावसे मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना।

नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥

भावार्थ—नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवों में से जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड-चेतन, कोई भी हो।

प्रासंगिकता

श्रीमद्भागवत महापुराण में श्रीकृष्ण ने नवधा भक्ति के बारे में बताया। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार नौ प्रकार से ईश्वर की आराधना कर मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। यदि कोई व्यक्ति इन नौ मेंसे किसी भी एक प्रकार की भक्ति को अपने जीवन में हमेशा के लिए अपना लेता है तो मात्र इससे ही वो प्रभु के बैकुण्ठ धाम की प्राप्ति कर सकता है। यह नौ उपाय

अत्यंत सरल और कारगर है। शास्त्रों में ऐसा बताया जाता है कि मनुष्य जन्म का एकमात्र लक्ष्य प्रभु की प्राप्ति करनाहै। ऐसे में नवधा भक्ति के बहुत सरल भावों को अपनाकर आप भी भगवत्तप्राप्ति कर सकते है। आइए जानते है नवधा भक्ति के नौ भाव-

श्रवण भगवान के चरित्र, लीला, महिमा, गुण, नाम तथा उनके प्रेम एवं प्रभावों की बातों का श्रद्धापूर्वक सदा सुनना और उसी के अनुसार आचरण करने की चेष्टा करना, श्रवण भक्ति है। श्रवण का अर्थ सुनना होता है इस प्रकार की भक्ति में भक्त सुनकर ईश्वर के प्रति अपने प्रेम क बढ़ाता है।

कीर्तन भगवान की लीला, कीर्ति, शक्ति, महिमा, चरित्र, गुण, नाम आदि का प्रेमपूर्वक करना कीर्तन भक्ति है। श्रीनारद, व्यास, वालमीकि, शुकदेव, चैतन्य महाप्रभु आदि इसी श्रेणी के भक्त माने जाते है। ऐसी मान्यता है कि कीर्तन के समय भक्त प्रभु के सबसे निकट होता है। इस कीर्तन भक्ति में प्रभु के भजन को गाकर भक्त अपने भावों को दृढ़ करता है।

स्मरण सदा अन्नय भाव से भगवान के गुण प्रभाव सहित उनके स्वरूप का चिन्तन करना और बारम्बार उनपर मुग्ध होना स्मरण भक्ति है। स्मरण का अर्थ याद करना है। थोड़े-थोड़े समय बाद प्रभु को याद करते रहना इस भक्ति में आता है। प्रहलाद, धुव्र, भरत, भीष्म, गोपियां आदि इसी श्रेणी के भक्त है।

चरणसेवन भगवान के जिस रूप की उपासना करते हो, उसी का चरण सेवन करना या सब में ईश्वर को देखकर उन्हें प्रणाम करना। इस भक्ति में भगवान के चरणों की आराधना का महत्व है।

पूजन अपनी रुचि के अनुसार भगवान की किसी मूर्ति या मानसिक स्वरूप का नित्य भक्तिपूर्वक पूजन करना। नित्य दीप प्रज्जवलित कर भगवान की आरती व पूजा करना इस भक्ति के अंतर्गत आता है। राजा पृथु, अम्बरीष आदि इसी श्रेणी के भक्त है।

वंदन—ईश्वर या समस्त जग को ईश्वर का स्वरूप समझकर वन्दन करना वन्दन भक्ति है। जब भी ईश्वर के किसी भी स्वरूप के दर्शन हो तो वन्दन करने से इस प्रकार की भक्ति बढ़ती है। अक्रूर वन्दन भक्त है।

दास्य ईश्वर को अपना मालिक मन से स्वीकार कर स्वयं को उनका दास मान लेना दास्य भक्ति है। ईश्वर की सेवा कर प्रसन्न होना। भगवान को अपना सर्वस्व मान लेना दास्य भक्ति कहलाता है। हनुमानजी और लक्ष्मण जी दास्य भाव भक्त

सख्य भगवान को अपना परम हितकारी मानकर उन्हें अपना दोस्त मान लेना सख्य भाव की भक्ति है। यह अत्यंत सरल भक्ति है। जिस प्रकार अपने दोस्त के साथ संबंध होते है ठीक उसी प्रकार ईश्वर को अपना मित्र मानना । अर्जुन, उद्धव, सुदामा इस श्रेणी के भक्त है।

आत्मनिवेदन या समर्पण अंहकार रहित होकर अपना सर्वस्व ईश्वर को अर्पण कर देना। स्वयं को ईश्वर को मन से सौप देना आत्मनिवेदन या समर्पण भक्ति कहलाता है। महाराज बलि, गोपियां आदि इसी श्रेणी के भक्त है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (सप्तम स्कन्ध – पाँचवाँ अध्याय) हिरण्यकशिपु के द्वारा प्रह्लादजी के वध का प्रयत्न

हिरण्यकशिपुरुवाच

प्रह्रादानूच्यतां तात स्वधीतं किञ्चिदुत्तमम्

कालेनैतावतायुष्मन्यदशिक्षद्गुरोर्भवान् ||२२||

श्रीप्रह्लाद उवाच

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ||२३||

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा

क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ||२४||

निशम्यैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा

गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ||२५||

ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षं श्रयतासता

असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ||२६||

सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः

तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ||२७||

हिरण्यकशिपुने कहा—चिरञ्जीव बेटा प्रह्लाद ! इतने दिनों में तुमने गुरुजी से जो शिक्षा प्राप्त की है, उसमेंसे कोई अच्छी-सी बात हमें सुनाओ ॥ २२ ॥

प्रह्लादजी ने कहा—पिताजी ! विष्णुभगवान् की भक्ति के नौ भेद हैं—भगवान् के गुण-लीला- नाम आदि का श्रवण, उन्हीं का कीर्तन, उनके रूप-नाम आदि का स्मरण, उनके चरणों की सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन । यदि भगवान् के प्रति समर्पण के भावसे यह नौ प्रकारकी भक्ति की जाय, तो मैं उसीको उत्तम अध्ययन समझता हूँ ॥ २३-२४ ॥ प्रह्लादकी यह बात सुनते ही क्रोध के मारे हिरण्यकशिपु के ओठ फडक़ने लगे। उसने गुरुपुत्र से कहा— ॥ २५ ॥ रे नीच ब्राह्मण ! यह तेरी कैसी करतूत है; दुर्बुद्धि ! तूने मेरी कुछ भी परवाह न करके इस बच्चे को कैसी निस्सार शिक्षा दे दी ? अवश्य ही तू हमारे शत्रुओं के आश्रित है ॥ २६ ॥ संसारमें ऐसे दुष्टों की कमी नहीं है, जो मित्र का बाना धारण कर छिपे-छिपे शत्रु का काम करते हैं। परंतु उनकी कलई ठीक वैसे ही खुल जाती है, जैसे छिपकर पाप करनेवालों का पाप समय पर रोग के रूप में प्रकट होकर उनकी पोल खोल देता है ॥ २७ ॥

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥

भावार्थ— हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदयमें रहती हैं, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकार की सम्पदाएँ (सुखकी स्थिति) रहती हैं। और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम में विपत्ति (दुःख) रहती है।

प्रासंगिकता

मानव शरीर के भीतर बुद्धि का महत्वपूर्ण स्थान है। बुद्धि निर्णय करती है। मन्द बुद्धि माध्यम बुद्धि और तीव्र बुद्धि तीन प्रकार के बुद्धि होती है पुण्योदय के परिणाम स्वरूप तीव्र बुद्धि प्राप्त होती है। बुद्धि मन से प्राप्त विकल्पों पर विचार करके चुनाव करती है। बुद्धि का मुख्य कार्य निर्णय करना होता है। इन्द्रिय जगत् मनोरंजन का जगत है और इन्द्रियातीत जगत आत्मरजन का जगत है। कुबुद्धि राग-द्वेष पैदा करती है और सुबुद्धि सकारात्मक चिंतन देती है। कुबुद्धि भटकाती है। सुबुद्धि के द्वारा बुरा मार्ग चुना जाता है और सुबुद्धि के द्वारा सम्मार्ग चुना जाता है सुबुद्धि सत्य का मार्ग है जो सत्य पर चलता है उसकी विजय होती है। इसीलिए कहा गया है सत्यमेव जयते।

प्रेरक प्रसंग— रावण कुबुद्धि का प्रतीक था और श्रीरामचन्द्रजी सुबुद्धि के प्रतीक थे कुबुद्धि आने पर चिंतन नकारात्मक हो जाता है और व्यक्ति गलत कार्य करने लगता है। उसको परामर्श देने वाले भी उसी की बुद्धि के अनुसार उसे परामर्श भी देते हैं। रावण ने जब सीता का अपहरण किया तो उसके पुत्रादि सभी ने उसके चिंतन से सहमति दिखाई। उसका मामा मारीच सीता अपहरण में सोने के मृग का रूप धारण करके श्रीरामचन्द्रजी को बहुत दूर ले गया और रावण साधु का भेष बनाकर असाधु कार्य किया सीताजी का अपहरण करने के बाद उसने उन्हें बहुत त्रास दिया। भगवान राम के दूतों ने और

उसके भाई विभीषण ने भी उसे समझाने का बहुत प्रयास किया किन्तु कुबुद्धि के कारण वह उन लोगों की बात नहीं माना जिसका परिणाम हुआ सम्पूर्ण रावण कुल का दिनाश कुबुद्धि विनाश ही कराती है। रावण के कुल में कोई नहीं बचा।

इसी प्रकार राक्षस राज हिरण्यकशिपु भी कुबुद्धि का प्रतीक था अपने पुत्र प्रहलाद को सम्मार्ग से हटाने के लिए उसने उसे अनेक यातनाएं दीं। किन्तु प्रहलाद सुबुद्धि के प्रतीक थे। उन्होंने हिरण्यकशिपु की बात नहीं मानी और अनेक कष्टों को सहकर भी सन्मार्ग का ही वरण किया।

प्रहलाद राक्षस कुल में उत्पन्न होने के बावजूद भी भगवत प्रेमी थे। हिरण्यकशिपु उन्हें राक्षसोचित शिक्षा देकर शक्ति सम्पन्न बनाना चाहता था किन्तु उनका मन भगवत चरणारविन्द में रमा हुआ था इसलिये उन्हें उसकी शिक्षा अपने यश में न कर सकी प्रहलाद यो तो सबसे छोटे थे परन्तु गुणों में सबसे बड़े थे ये बड़े सतसेवी भी सौम्यस्वभाव सत्यप्रतिज्ञ एवं जितेन्द्रिय थे तथा समस्त प्राणियों के साथ अपने ही समान समता का बर्ताव करते और सबके एकमात्र प्रिय और सच्चे हितैषी थे बड़े लोगों के चरणों में सेवक की तरह झुककर रहते थे। लोक-परलोक के विषयों को उन्होंने देखा-सुना तो बहुत था, परन्तु वे उन्हें निसार और असत्य समझते थे इसलिये उनके मन में किसी भी वस्तु की लालसा न थी इन्द्रिय, प्राण, शरीर और मन उनके वश में थे। उनके चित्त में कभी किसी प्रकार की कामना नहीं उठती थी जन्म से असुर होने पर भी उनमें आत्तुरी सम्पत्ति का लेश भी नहीं था।

जैसे भगवान के गुण अनन्त है, वैसे ही प्रहलाद के श्रेष्ठ गुणों की भी कोई सीमा नहीं है। महात्मा लोग सदा से उनका वर्णन करते और उन्हें अपनाते आये है तथापि मे आज भी ज्यो के त्यों बने हुए हैं। यों तो देवता उनके शत्रु हैं, परन्तु फिर भी भक्तों का चरित्र सुनने के लिये जब उन लोगों की सभा होती है, तब ये दूसरे भक्तों को प्रह्लाद के समान कहकर उनका सम्मान करते हैं। फिर आप जैसे अजातशत्रु भगवदभक्त उनका आदर करेंगे इसमें तो सन्देह ही क्या है। उनकी महिमा का वर्णन करने के लिये अगणित गुण के कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं। केवल एक ही गुण भगवान के चरणों में स्वाभाविक, जन्मजात प्रेम उनकी महिमा को प्रकट करने के लिये पर्याप्त है।

प्रहलाद बचपन में ही खेल-कूद छोड़कर भगवान् के ध्यान में तन्मय हो जाया करते। भगवान् अनुग्रहरूप ग्रह ने उनके हृदय को इस प्रकार खीच लिया था कि उन्हें जगत की कुछ सुप बुध ही नहीं रहती। उन्हें ऐसा जान पड़ता कि भगवान मुझे अपनी गोद में लेकर आलिंगन कर रहे हैं। इसलिये उन्हें सोते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते और बातचीत करते समय भी इन बातों का ध्यान बिल्कुल न रहता कभी-कभी भगवान मुझे छोड़कर चले गये. इस भावना में उनका हृदय इतना डूब जाता कि ये जार-जोर से रोने लगते। कभी मन ही मन उन्हें अपने सामने पाकर आनन्दोद्रेक से उठाकर हंसने लगते।

कभी उनके ध्यान के मधुर आनन्द का अनुभव करके जोर से गाने लगते। वे कमी उत्सुक हो बेसुरा चिल्ला पडते हिरण्यकशिपु ने पिता होकर भी ऐसे शुद्ध हृदय महात्मा पुत्र से द्रोह किया। पिता तो स्वमाय से ही अपने पुत्रों से प्रेम करते हैं। यदि पुत्र कोई उलटा काम करता है, तो वे उसे शिक्षा देने के लिये ही डांटते हैं शत्रु की तरह पैर-विरोध तो नहीं करते। जिसका चिंतन सकारात्मक रहता है उसी की बुद्धि बुद्धि होती है। कुबुद्धि वाले व्यक्ति का चिंतन भी नकारात्मक रहता है। कुबुद्धि के कारण मनुष्य की बुद्धि सही दिशा में चिंतन ही नहीं कर पाती। उसे बुरा मार्ग ही अच्छा लगता है अहंकार की प्रधानता के कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।
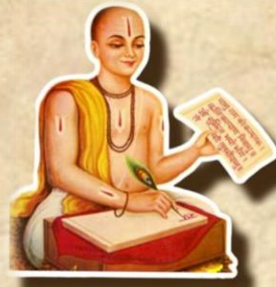
बड़े भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥

भावार्थ— बड़े भाग्य से यह मनुष्य-शरीर मिला है। सब ग्रन्थों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओंको भी दुर्लभ है (कठिनतासे मिलता है) यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया ।

दो० – सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।

कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ॥

भावार्थ— वह परलोक में दुःख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथ [अपना दोष न समझकर] काल पर, कर्मपर और ईश्वरपर मिथ्या दोष लगाता है।

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ॥

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥

भावार्थ— हे भाई! इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है। [इस जगत के भोगों की तो बात ही क्या] स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अन्त में दुःख देने वाला है। अतः जो लोग मनुष्य- शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ॥

आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥

भावार्थ— जो पारसमणि को खोकर बदले में घुँघची ले लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान्) नहीं

कहता। यह अविनाशी जीव [अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज] चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

भावार्थ— माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इनके वश में हुआ) यह सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण स्नेह करने वाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्य का शरीर देते हैं।

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥

मरुत करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

भावार्थ—यह मनुष्य का शरीर भवसागर [से तारने] के लिये बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाजके कर्णधार (खेनेवाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ (कठिनता से मिलने वाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपा से सहज ही) उसे प्राप्त हो गये हैं।

दो० – जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।

सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मन्दबुद्धि है और आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है।

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥

भावार्थ— मनुष्य शरीर के समान कोई शरीर नहीं है। चर-अचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। यह मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है तथा कल्याणकारी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देनेवाला है।

सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषय रत मंद मंद तर॥

काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परसमनि देहीं॥

भावार्थ— ऐसे मनुष्य शरीर को धारण (प्राप्त) करके भी जो लोग श्रीहरि का भजन नहीं करते और नीच से भी नीच विषयों में अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमणि को हाथ से फेंक देते हैं और बदले में काँचके टुकड़े ले लेते हैं।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥

हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥

भावार्थ— पक्षी और पशु मुनियों के पास [बेधड़क] चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार ही है।

प्रासंगिकता

मानव तन ज्ञान और गुणों का भंडार है। इसी शरीर में आदमी आत्मज्ञान को प्राप्त कर भजन अभ्यास के द्वारा अपने जीवन को मुक्त कर सकता है। इस दुर्लभ शरीर के लिए देवता भी तरसते हैं। वे भी चाहते हैं कि अगर मनुष्य तन मिलता तो हम भी भजन सुमिरण करते क्योंकि शरीर के बिना देवता भी कर्म नहीं कर सकते।

प्रेरक कहानी— रेलवे स्टेशन के बाहर सड़क के किनारे कटोरा लिए एक भिखारी लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए अपने कटोरे में पड़े सिक्कों को हिलाता रहता और साथ-साथ यह गाना भी गाता जाता: गरीबों की सुनो वो तुम्हारी सुनेगा तुम एक पैसा दोगे वो दस लाख देगा, गरीबों की सुनो..कटोरे से पैदा हुई ध्वनि व उसके गीत को सुन आते-जाते मुसाफ़िर उसके कटोरे में सिक्के डाल देते। सुना था, इस भिखारी के पुरखे शहर के नामचीन लोग थे। इसकी ऐसी हालत कैसे हुई यह अपने आप में शायद एक अलग कहानी हो।

आज भी हमेशा की तरह वह अपने कटोरे में पड़ी चिल्हर को हिलाते हुए, ग़रीबों की सुनो वो तुम्हारी सुनेगा, वाला गीत गा रहा था। तभी एक व्यक्ति भिखारी के पास आकर एक पल के लिए ठिठकर रुक गया। उसकी नजर भिखारी के कटोरे पर थी, फिर उसने अपनी जेब में हाथ डाल कुछ सौ-सौ के नोट गिने। भिखारी उस व्यक्ति को इतने सारे नोट गिनता देख उसकी तरफ टकटकी बाँधे देख रहा था कि शायद कोई एक छोटा नोट उसे भी मिल जाए। तभी उस व्यक्ति ने भिखारी को संबोधित करते हुए कहा, अगर मैं तुम्हें हजार रुपये दूं तो क्या तुम अपना कटोरा मुझे दे सकते हो?

भिखारी अभी सोच ही रहा था कि वह व्यक्ति बोला, अच्छा चलो मैं तुम्हें दो हजार देता हूँ। भिखारी ने अचंभित होते हुए अपना कटोरा उस व्यक्ति की ओर बढ़ा दिया और वह व्यक्ति कुछ सौ-सौ के नोट उस भिखारी को थमा उससे कटोरा ले अपने बैग में डाल तेज कदमों से स्टेशन की ओर बढ़ गया। इधर भिखारी भी अपना गीत बंद कर वहां से ये सोच कर अपने

रास्ते हो लिया कि कहीं वह व्यक्ति अपना मन न बदल ले और हाथ आया इतना पैसा हाथ से निकल जाए और भिखारी ने इसी डर से फैसला लिया अब वह इस स्टेशन पर कभी नहीं आएगा, कहीं और जाएगा।

रास्ते भर भिखारी खुश होकर यही सोच रहा था कि लोग हर रोज आकर सिक्के डालते थे, पर आज दो हजार में कटोरा! वह कटोरे का क्या करेगा? भिखारी सोच रहा था? उधर दो हजार में कटोरा खरीदने वाला व्यक्ति अब रेलगाड़ी में सवार हो चुका था। उसने धीरे से बैग की चैन खोल कर कटोरा टटोला, सब सुरक्षित था। वह पीछे छुटते नगर और स्टेशन को देख रहा था। उसने एक बार फिर बैग में हाथ डाल कटोरे का वजन भांपने की कोशिश की। कम से कम आधा किलो का तो होगा। उसने जीवन भर धातुओं का काम किया था। भिखारी के हाथ में वह कटोरा देख वह हैरान हो गया था। सोने का कटोरा? और लोग डाल रहे थे उसमें एक-दो के सिक्के। उसकी सुनार वाली आँख ने धूल में सने उस कटोरे को पहचान लिया था। ना भिखारी को उसकी कीमत पता थी और न सिक्का डालने वालों को पर वह तो जौहरी था, सुनार था। भिखारी दो हजार में खुश था और जौहरी कटोरा पाकर! उसने लाखों की कीमत का कटोरा दो हजार में जो खरीद लिया था।

इसी तरह हम भी अपने अनमोल काया की उपयोगिता को भूले बैठे है और उसे एक सामान्य कटोरे की भाँति समझ कर कौड़ियां इक्कट्ठे करने में लगे हुए हैं

	नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे॥ **सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥** श्रीरामजी की माया से प्रेरित होकर सबके हृदयों में सभी युगोंके धर्म नित्य होते रहते हैं। शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान और मनका प्रसन्न होना, इसे सत्ययुग का प्रभाव जाने। **सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा॥** **बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥** सत्त्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मों में प्रीति हो, सब प्रकार से सुख हो, यह त्रेताका धर्म है। रजोगुण बहुत हो, सत्त्वगुण बहुत ही थोड़ा हो, कुछ तमोगुण हो, मनमें हर्ष और भय हो, यह द्वापर का धर्म है। **तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥** **बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥** तमोगुण बहुत हो, रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वैर-विरोध हो, यह कलियुगका प्रभाव है। पण्डित लोग युगों के धर्म को मन में जान (पहिचान) कर, अधर्म छोड़कर, धर्म में प्रीति करते हैं।

प्रासंगिकता

युग सनातन धर्म में एक विशाल समयावधि है जो भूतकाल, वर्तमान तथा भविष्यकाल से संबंधित है। यह वस्तुतः, सत्य युग, त्रेतायुग, द्वापर युग तथा कलियुग, इन चार धार्मिक युगों में से किसी भी एक युग को बताने के लिये प्रयुक्त होता है। चारो युगों के चक्र को चतुर्युग कहते हैं।

सत युग— सत युग जिसे कृत युग भी कहा जाता है। सत युग में कुल 17,28,000 वर्ष होते हैं। शास्त्रानुसार सत युग का प्रारंभ अत्यंत पवित्र कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि से होता है। जिसे अक्षय नवमी भी कहा जाता है। सत युग में धर्म अपने 4 चरणों से विद्यमान रहता है।

त्रेता युग— त्रेतायुग में कुल 12,96,000 वर्ष होते हैं। शास्त्रानुसार त्रेता युग का प्रारंभ वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि से होता है। जिसे अक्षय तृतीया या आखा तीज भी कहा जाता है। त्रेता युग में धर्म अपने 3 चरणों से विद्यमान रहता है।

द्वापर युग— द्वापर युग में कुल 8,64,000 वर्ष होते हैं। शास्त्रानुसार द्वापर युग का प्रारंभ माघ मास की पूर्णिमा तिथि से होता है। द्वापर युग में धर्म अपने 2 चरणों से विद्यमान रहता है।

कलि युग— कल युग में कुल 4,32,000 वर्ष होते हैं। शास्त्रानुसार कलि युग का प्रारंभ आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि से होता है। कलि युग में धर्म अपने 1 चरण से विद्यमान रहता है।

द्वापरयुग

- पूर्ण आयु - ८.६४,०००
- मनुष्य की आयु - १,०००
- लम्बाई - ११ फिट (लगभग) [७ हाथ]
- तीर्थ - कुरुक्षेत्र
- पाप - १०
- पुण्य - १०
- अवतार – कृष्ण, (देवकी के गर्भ से एंव नंद के घर पालन-पोषण), बलराम।
- कारण – कंसादि दुष्टो का संहार एंव गोपों की भलाई, दैत्यो को मोहित करने के लिए।
- मुद्रा – चाँदी
- पात्र – ताम्र का

कलियुग

- पूर्ण आयु - ४,३२,०००
- मनुष्य की आयु - १००
- लम्बाई - ५.५ फिट (लगभग) [२. हाथ]
- तीर्थ - गंगा
- पाप - १५
- पुण्य - ५
- अवतार – कल्कि (ब्राह्मण विष्णु यश के घर)।
- कारण – मनुष्य जाति के उद्धार अधर्मियों का विनाश एंव धर्म कि रक्षा के लिए।
- मुद्रा – लोहा
- पात्र – मिट्टी का

वैदिक चार युग

युग	वर्ष	चरण
सत युग	1,728,000 मानव वर्ष	4
त्रेता युग	1,296,000 मानव वर्ष	3
द्वापर युग	864,000 मानव वर्ष	2
कलि युग	432,000 मानव वर्ष	1
1 चतुर युग (महायुग) = 4,320,000 मानव वर्ष		

व्याख्या–

- जिनकी निंदा-आलोचना करने की आदत हो गई है, दोष ढूंढने की आदत पड़ गई है, वे हज़ारों गुण होने पर भी दोष ढूंढ लेते हैं। और जिनकी गुणग्रहण की प्रकृति है, वे हज़ार अवगुण होने पर भी गुण देख लेते हैं।
- दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो पूरी तरह सर्वगुण संपन्न हो या पूरी तरह गुणहीन हो. एक न एक गुण या अवगुण सभी में होते हैं.मात्र ग्रहणता की बात है कि आप क्या ग्रहण करते हैं, गुण या अवगुण?
- अर्थात् जिसकी जैसी दृष्टि होती है, उसे वैसी ही मूरत नज़र आती है.

प्रासंगिकता

इस चौपाई के अर्थ को मैं आप सबको एक कहानी के माध्यम से बताना चाहूँगा।

प्रेरक प्रसंग—1

एक बार की बात है कि कबीर दास जी हमेशा की तरह अपने काम में मग्न होकर राम नाम रट रहे थे। तभी उनके पास कुछ तार्किक व्यक्ति आते हैं। उनमें से एक व्यक्ति उनसे पूछता है- "कबीर जी आपने यह गले में क्या पहन रखा है?"

कबीर जी कहते है- "यह कंठी है?" (कंठी यानि गले में पहनी जाने वाली रूद्राक्ष की माला)

तब दूसरा तार्किक व्यक्ति उनसे प्रश्न करता है- "भाई अपने माथे पर यह क्या लगा रखा है?"

"इसे तिलक कहते है मेरे भाई!" कबीर जी कहते हैं।

उत्तर सुनकर एक अन्य तार्किक व्यक्ति फिर से उनसे प्रश्न करता है- "आपने, यह हाथ में क्या बांध रखा है? आप क्या कर रहे हो? यह सुनकर कबीर जी कुछ उन लोगों को कहते हैं- "मैं राम राम रट रहा हूँ। गुरु जी की आज्ञा है, राम नाम के भीतर सकल शास्त्र पुराण श्रुति का सार है। इसलिए मैं 'नाम' जप रहा हूँ। यह सुनकर उनमें से एक व्यक्ति कहता है, "अच्छा तो तुम राम नाम जपते हो! तो राम का भजन करते हो! "तो फिर कौन से राम का भजन करते हो?" उस व्यक्ति ने कबीर जी से पूछा। "कौन से राम? क्या राम भी बहुत सारे हैं?" कबीर जी ने कहा।
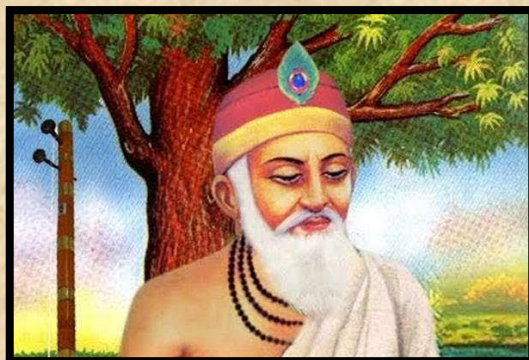
तो उनमें से एक व्यक्ति ने कहा, "लो इन्हें यह तो पता नहीं कि कौन से राम का भजन करते हो, और लग गए भजन करने। जिसे यही नहीं पता कि राम कितने तरीके के होते हैं, तो भजन का क्या फल?

अब यह कहकर वे तार्किक व्यक्ति वहां से चलते समय कबीर जी को एक दोहा भी सुना गए।

एक राम दशरथ का बेटा,एक राम घट-घट में लेटा।

एक राम का सकल पसारा,एक राम सभी से न्यारा ।।

इन में कौन-सा राम तुम्हारा?

अब कबीर जी सोचने लगे कि मुझे तो यह पता ही नहीं कि राम भी बहुत हैं। मैं तो केवल यही जानता हूँ कि एक ही राम हैं। ये अच्छा संशय मेरे मन में डाल गए हैं। पूछते हैं कौन से राम का भजन करते हो? यह सब जब वह सोच रहे थे, तो तभी उन्हें अपने गुरु जी की कही बात याद आ जाती है, गुरू जी ने कहा था, कोई संशय हो तो उसका निवारण कर लेना।

तब कबीर जी ने सोचा इस संशय का निवारण अपने गुरुजी के पास जाकर ही करता हूँ। बस फिर क्या था कबीर जी पहुँचे अपने गुरुजी के पास। गुरू जी को प्रणाम कर एक ओर हाथ बांधकर खड़े हो गए। कबीर जी को देखकर, गरू जी बोले आओ कबीर, क्या बात है? तब कबीर जी बोले- "गुरु जी! एक अजीब सा संशय चित में आ गया है।

"कौन सा संशय" गुरू जी ने पूछा? कबीर जी बोले, "गुरू जी कुछ तार्किक विद्वान मेरे पास आए थे। मैं बैठा आपकी आज्ञा से राम नाम का भजन कर रहा था। तब वे मुझसे पूछने लगे क्या कर रहे हो कबीर? मैंने कहा, राम-राम रट रहा हूँ।फिर वह पूछने लगे कि कौन से राम का भजन कर रहे हो? तब हमने उनसे पूछा कि क्या राम भी बहुत सारे होते हैं क्या? तो वे मेरे इस प्रश्न के उत्तर में मुझसे बोले "हाँ" और क्या तुम्हें यह भी नही पता क्या? जाते जाते मुझे एक दोहा भी सुनाकर चले गए हैं! वह दोहा है.....

एक राम दशरथ का बेटा,एक राम घट-घट में लेटा।

एक राम का सकल पसारा,एक राम सभी से न्यारा।।

इन में कौन-सा राम तुम्हारा? ।।

यह सुनकर गुरुजी बहुत खुश हुए और बड़े जोर से हँसने लगे। हँसते हुए कबीर से कहने लगे- "बेटा! ऐसी बात करने वाले एक दिन नहीं तुम्हारे जीवन में, जीवन भर आएँगे। पर तुम्हें सजग रहना होगा। देखो यह सृष्टि विविधमयी है। जिसकी आँख पर जैसा चश्मा चढ़ा होता है, उसको भगवान का वैसा ही रूप दिखाई देता है। कोई परमात्मा को 'ब्रह्म' कहता है; कोई 'परमात्मा' कहता है; कोई 'ईश्वर' कहता है; कोई 'भगवान' कहता है। लेकिन अलग-अलग नाम लेने से परमात्मा अलग-अलग नहीं हो जाते। इसलिए जो राम दशरथ जी का बेटा है;वही राम घट घट में भी लेटा है; उसी राम का सकल पसारा है; और वही राम सबसे न्यारा भी है। लेकिन एक बात है इस दोहे में 'एक राम ' चारो पंक्ति में ही एक ही हैं! तो बेटा! इस दोहे का अर्थ क्या है?

तो कबीर जी बोले-

वही राम दशरथ का बेटा, वही राम घट-घट में लेटा,

उसी राम का सकल पसारा, वही राम सभी से न्यारा।

तब गुरू जी ने कबीर को समझाते हुए आगे कहा- "जब राम सभी जीवो के भीतर विराजमान रहता है, तो सबके घट- घट में वह व्यापक हुआ ना और राम ने ही इस सृष्टि को रचाा हैं, तो यह सब पसारा उन्हीं का है। लेकिन इस सृष्टि की रचना करने के बाद भी वह इस सृष्टि में फसते नहीं हैं। इसलिए वह सबसे न्यारे भी हैं। लेकिन जब कोई भगत रोकर उनको पुकारता है, प्रार्थना निवेदन करता हैं तो वहीं निराकार साकार रूप में दशरथ जी के घर प्रगट हो जाता है। तो बेटा! इन चारों में कोई भेद नहीं है। यह चारों एक ही है।" कबीर जी को उस दोहे का अर्थ अच्छे से गुरू जी ने समझा दिया।

कबीर जी प्रसन्न होकर गुरुदेव जी से बोले- "गुरू जी! आपने बहुत कृपा की है। अब मेरा इस विषय में कभी कोई संशय नहीं होगा" अपने गुरू जी से विदा लेकर कबीर जी अपने घर आ गए और अपने भजन सिमरन में लग गए। कुछ दिनों बाद वही सभी तार्किक व्यक्ति वहां से फिर गुजर रहे थे और मन ही मन सोच रहे थे कि हमने जो कबीर के मन में संशय डाल दिया था, उसके कारण तो अब तक कबीर की कंठी माला सब छूट गई होगी। चलो उनके घर चल कर देखते हैं। कबीर जी के घर पहुँच कर उन्होंने देखा कि कबीर जी तो पहले की ही भांति ही बैठे राम नाम रट रहें हैं। यह देख कर उनमें से एक व्यक्ति ने पूछा क्यों कबीर जी आपको पता चल गया कि आप कौन-से राम का भजन करते हैं? अब कबीर जी तो पक्क अपने गुरु जी चेला थे, उन्होंने कहा मैं आपके सब प्रश्नों का उत्तर दूँगा। पर इससे पहले आपको मेरे एक प्रश्न का उत्तर देना होगा। वे सभी एक स्वर में बोले, "पूछो" "मेरा भी एक दोहा है। आप उसको उसका उत्तर बताना होगा।" कबीर जी बोले।

"बताओ कौन-सा दोहा है?" वे बोले।

एक बाप तेरी दादी का छोरा,एक बाप तेरी बुआ का भाई।

एक बाप पति तेरी मां का,एक बाप तेरी नानी का जमाई।।

तो बताओ कितने बाप तेरे भाई।। दोहा सुनते ही वे सभी भागे, तो कबीर जी ने उनसे कहा कि बताते तो जाते कि एक बाप है कि 4 बाप है कि 6 बाप हैं?

वे सभी बोले हद हो गई कबीर यह कोई पूछने की बात है! अरे एक ही बाप है, वही बाप मेरी दादी का छोरा,वही बाप मेरी बुआ का भाई, वही बाप मेरी माँ का पति, वही बाप मेरी नानी का जमाई।

तो कबीर जी ने कहा अब आप सब भी सुनते जाओ उत्तर- "राम भी एक ही है। वही राम दशरथ का बेटा, वही राम घट-घट में लेटा, उसी राम का सकल पसारा, वही राम सभी से न्यारा भी है।"

दोस्तों राम चरितमानस के बालकांड की इस चौपाई को कबीर जी की यह कहानी सही अर्थों में चित्रार्थ करती हैं। इस कहानी से हमे यह शिक्षा मिलती हैं- इर्श्वर एक हैं। पर हर कोई उसे अपने नजरिए से देखता है। कोई उसे 'राम' कहता है तो कोई उसे 'अल्ला' कहता है; दूसरे शब्दों में आप इसे यू भी समझ सकते हैं कि वास्तव मे चीज एक ही है पर उस चीज को हर व्यक्ति अपने अपने नजरिय से देखता हैं।

हां में यह जोड़ना चाहूंगी कि इसमें कुछ हाथ व्यक्ति के पीछे संस्कारों का भी रहता है। ऐसा मै इसलिए कह रही हूं क्योंकि मेरा यह मानना है कि व्यक्ति अपने पिछले कर्मों के अनुसार जिस देश; जिस जाति; या परिवार में जन्म लेता है। उसी देश; जाति और परिवार के अनुसार ही वह कसी वस्तु को देखने और समझने लगता है।

वास्तव में चीज एक ही है पर सभी देश और जाति के लोग उसे अपनी-अपनी भाषा के अनुसार जानते और समझते हैं। भारत के महान संतों ने सदैव ही कहा है ईश्वर एक है। आप इसे एक उदाहरण द्वारा बडी सरलता से समझ सकते हैं- जैसे पानी एक तत्व है! हिंदी भाषा में इसे 'जल', उर्दू भाषा में इसे 'पानी' और संस्कृत भाषा में इसे 'वारि' अंग्रेजी भाषा में इसे 'वॉटर' कहते है और रूसी भाषा में इसे (वाडी) (vody) कहते हैं। इसी प्रकार तो French भाषा में l'eau (लू) कहते हैं। आपने देखा कि किस प्रकार एक ही चीज के प्रत्येक भाषा में अलग-अलग नाम है।

इसलिए कोई परमात्मा को 'ब्रह्म' कहता है; कोई 'परमात्मा' कहता है; कोई 'ईश्वर' कहता है; कोई 'भगवान' कहता है। लेकिन अलग-अलग नाम लेने से परमात्मा अलग-अलग नहीं हो जाते।

प्रेरक प्रसंग—2

पाण्डवों और कौरवों को शस्त्र शिक्षा देते हुए आचार्य द्रोण के मन में उनकी परीक्षा लेने की बात उभर आई। परीक्षा कैसे और किन विषयों में ली जाए इस पर विचार करते उन्हें एक बात सूझी कि क्यों न इनकी वैचारिक प्रगति और व्यावहारिकता

की परीक्षा ली जाए। दूसरे दिन प्रातः आचार्य ने राजकुमार दुर्योधन को अपने पास बुलाया और कहा- 'वत्स! तुम समाज में से एक अच्छे आदमी की परख करके उसे मेरे सामने उपस्थित करो।'

दुर्योधन ने कहा- 'जैसी आपकी इच्छा' और वह अच्छे आदमी की खोज में निकल पड़ा।
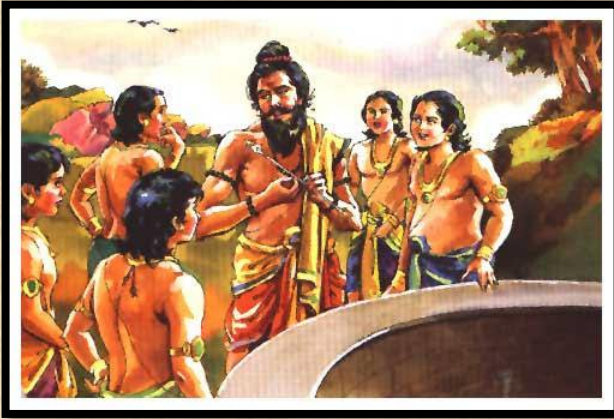
कुछ दिनों बाद दुर्योधन वापस आचार्य के पास आया और कहने लगा- 'मैंने कई नगरों, गांवों का भ्रमण किया परंतु कहीं कोई अच्छा आदमी नहीं मिला।'

फिर उन्होंने राजकुमार युधिष्ठिर को अपने पास बुलाया और कहा- 'बेटा! इस पृथ्वी पर से कोई बुरा आदमी ढूंढ कर ला दो।'

युधिष्ठिर ने कहा- 'ठीक है गुरू जी! मैं कोशिश करता हूं।' इतना कहने के बाद वे बुरे आदमी की खोज में चल दिए। काफी दिनों के बाद युधिष्ठिर आचार्य के पास आए।

आचार्य ने पूछा- 'क्यों? किसी बुरे आदमी को साथ लाए?'

युधिष्ठिर ने कहा- 'गुरू जी! मैंने सर्वत्र बुरे आदमी की खोज की परंतु मुझे कोई बुरा आदमी मिला ही नहीं। इस कारण मैं खाली हाथ लौट आया हूं।'

सभी शिष्यों ने आचार्य से पूछा- 'गुरुवर! ऐसा क्यों हुआ कि दुर्योधन को कोई अच्छा आदमी नहीं मिला और युधिष्ठिर को कोई बुरा आदमी नहीं।'

आचार्य बोले- 'बेटा! जो व्यक्ति जैसा होता है उसे सारे लोग अपने जैसे दिखाई पड़ते हैं। इसलिए दुर्योधन को कोई अच्छा व्यक्ति नहीं मिला और युधिष्ठिर को कोई बुरा आदमी न मिल सका।'
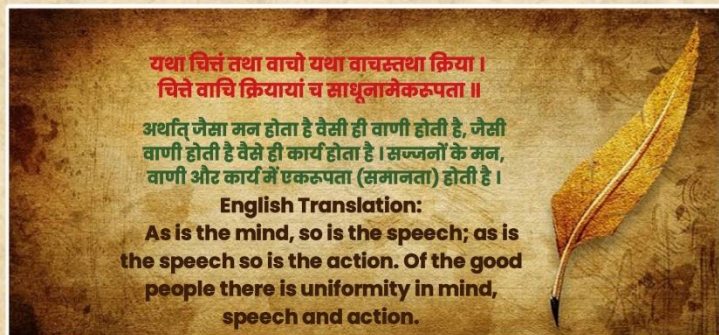
गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणो बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बल: । पिको वसन्तस्य गुणं न वायस: करी च सिंहस्य बलं न मूषक: ॥ गुणी पुरुष ही दूसरे के गुण पहचानता है, गुणहीन पुरुष नही। बलवान पुरुष ही दूसरे का बल जानता है, बलहीन नही। वसन्त ऋतु आए तो उसे कोयल पहचानती है, कौआ नही। शेर के बल को हाथी पहचानता है, चूहा नही।

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

भावार्थ— श्रीरामचन्द्रजी के राज्य पर प्रतिष्ठित होनेपर तीनों लोक हर्षित हो गये, उनके सारे शोक जाते रहे। कोई किसी से वैर नहीं करता। श्रीरामचन्द्रजी के प्रताप से सबकी विषमता (आन्तरिक भेदभाव) मिट गई।

दो० – बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

भावार्थ— सब लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुकूल धर्म में तत्पर हुए सदा वेदमार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

भावार्थ— 'राम-राज्य' में दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते। सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में बतायी हुई नीति (मर्यादा) में तत्पर रहकर अपने-अपने धर्मका पालन करते हैं।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥

राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥

भावार्थ— धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत् में परिपूर्ण हो रहा है; स्वनमें भी कहीं पाप नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी रामभक्ति के परायण हैं और सभी परमगति (मोक्ष) के अधिकारी हैं।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

भावार्थ— छोटी अवस्था में मृत्यु नहीं होती, न किसी को कोई पीड़ा होती है। सभी के शरीर सुन्दर और नीरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन ही है। न कोई मूर्ख है और न शुभ लक्षणों से हीन ही है।

सब निर्दंभ धर्म रत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

भावार्थ— सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और गुणवान् हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ (दूसरेके किये हुए उपकार को मानने वाले) हैं, कपट-चतुराई (धूर्तता) किसी में नहीं है।

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥

एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

भावार्थ— सभी नर-नारी उदार हैं, सभी परोपकारी हैं और ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं। सभी पुरुष मात्र एक पत्नीव्रती हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्म से पति का हित करने वाली हैं।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥

खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

भावार्थ— वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। हाथी और सिंह (वैर भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी और पशु सभी ने स्वाभाविक वैर भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है।

लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥

ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी।।

भावार्थ—बेलें और वृक्ष माँगने से ही मधु (मकरन्द) टपका देते हैं। गायें मनचाहा दूध देती हैं। धरती सदा खेती से भरी रहती है। त्रेता में सत्ययुग की करनी (स्थिति) हो गई।

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥

सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥

भावार्थ— समस्त जगत् के आत्मा भगवान् को जगत् का राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहाने लगीं।

सागर निज मरजादाँ रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥

सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा॥

भावार्थ— समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं, जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से परिपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यंत प्रसन्न हैं।

दोहा—बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।

मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥

भावार्थ—श्री रामचंद्रजी के राज्य में चंद्रमा अपनी (अमृतमयी) किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं, जितने की आवश्यकता होती है और मेघ माँगने से (जब जहाँ जितना चाहिए उतना ही) जल देते हैं।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य धन्य सो नारि पतिब्रत अनुसरी॥

धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥

भावार्थ— वह देश धन्य है जहाँ श्रीगङ्गाजी हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत धर्म का पालन करती हैं। वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से नहीं डिगता।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी॥

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥

भावार्थ— वह धन धन्य है जिसकी पहली गति होती है (जो दान देनेमें व्यय होता है)। वही बुद्धि धन्य और परिपक्व है जो पुण्य में लगी हुई है। वही घड़ी धन्य है जब सत्संग हो और वही जन्म धन्य है जिसमें ब्राह्मण की अखण्ड भक्ति हो।

प्रासंगिकता

आदर्श राज्य के रूप में श्री राम राज्य बहुत प्रसिद्ध है। राम राज्य वह जगह है जहां राज्य वेदों के सिद्धांतों से चलता है, वाल्मीकि रामायण के युद्ध कांड में राम राज्य का वर्णन किया गया है। यहाँ महर्षि वाल्मीकि राम राज्य की महानता और सुंदरता का वर्णन करते हुए कहते हैं—

जब श्री राम राज्य पर शासन कर रहे थे, तब विलाप करने के लिए कोई विधवाएँ नहीं थीं, न ही जंगली जानवरों से कोई खतरा था, न ही बीमारियों से पैदा होने वाला कोई भय था। दुनिया चोरों और डकैतियों से रहित थी। न किसी ने अपने आप को बेकार महसूस किया और न ही बूढ़े लोगों ने बच्चों के संबंध में वशीकरण किया। हर प्राणी प्रसन्न महसूस करता था। हर कोई सदाचार पर आमादा था। जब श्री राम राज्य पर शासन कर रहे थे, लोग हजारों वर्षों तक जीवित रहे, उनकी हजारों संतानें, सभी बीमारी और शोक से मुक्त थीं। जब श्री राम ने राज्य पर शासन किया, तो लोगों की बातचीत राम, राम और राम के इर्द-गिर्द केंद्रित थी। राम का संसार बन गया। वहाँ के पेड़ नियमित रूप

से फूल और फल देते थे, बिना किसी कीट और कीड़ों के चोट के। समय पर बादल बरस रहे थे और हवा स्पर्श करने के लिए सुखद थी।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे थे, अपने काम से संतुष्ट थे और किसी भी लालच से मुक्त थे। जब राम शासन कर रहे थे, तब लोग सद्गुण पर आमादा थे और बिना झूठ बोले रहते थे। सभी लोग उत्कृष्ट विशेषताओं से संपन्न थे। सभी पुण्य में लगे हुए थे। चरित्र की ताकत और लचीलेपन का इससे बेहतर सबूत और क्या चाहिए! मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम राजाओं के राजा हैं। वह हमारे मस्तिष्क और दिलों में सर्वोच्च राज्य करते हैं।

अयोध्या के राजा के रूप में श्री राम का शासन, सभी को सभी शुभ गुणों, धर्म, शांति, समृद्धि और आनंद का आशीर्वाद प्राप्त था।

उपरोक्त तुलसीकृत चौपाई का स्पष्टीकरण:
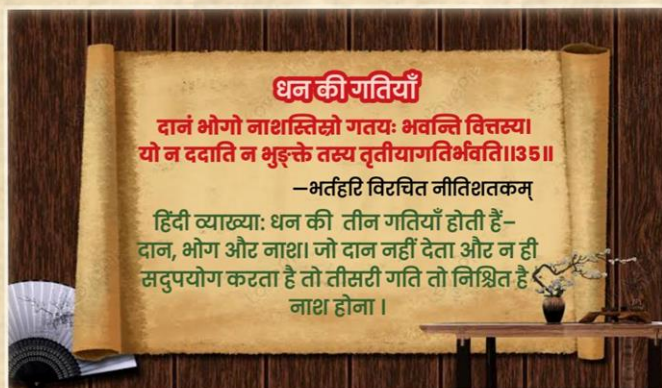
गिरिधर:

खायो जाय सो खायरे, दियो जाय सो देह।
इन दोनों से जो बचै, सो तुम जानो खेह।।
सो तुम जानो खेह, सिके पुनि काम न आवे।
सर्व शोक को बीज, पुनः पुनि तुझे रुलावे।।
कह गिरिधर कविराज, चरण त्रै धन के गायो।
दान भोग बिन नाश होत, जो दियो न खायो।।

वृन्द: *खाय न खर्चे सूम धन, चोर सबै ले जाय। पीछे ज्यों मधु-मच्छिका, हाथ मले पछताय।।*

सोरठा:

दान भोग अरु नाश, तीन होत गति द्रव्य को।

नाहिन द्वै को बास, तहाँ तीसरो बसत है।।

प्रेरक प्रसंग— एक राजा था, बहुत प्रभावशाली, बुद्धि और वैभव से संपन्न। आस-पास के राजा भी समय-समय पर उससे परामर्श लिया करते थे। एक दिन राजा अपनी शैया पर लेटे-लेटे सोचने लगा, मैं कितना भाग्यशाली हूँ। कितना विशाल है मेरा परिवार, कितना समृद्ध है मेरा अंत:पुर, कितनी मजबूत है मेरी सेना, कितना बड़ा है मेरा राजकोष। ओह! मेरे खजाने के सामने कुबेर के खजाने की क्या बिसात? मेरे राजनिवास की शोभा को देखकर अप्सराएं भी ईर्ष्या करती होंगी। मेरा हर वचन आदेश होता है। राजा कवि हृदय था और संस्कृत का विद्वान था। अपने भावों को उसने शब्दों में पिरोना शुरू किया। तीन चरण बन गए, चौथी लाइन पूरी नहीं हो रही थी। जब तक पूरा श्लोक नहीं बन जाता, तब तक कोई भी रचनाकार उसे बार-बार दोहराता है। राजा भी अपनी वे तीन लाइनें बार-बार गुनगुना रहा था

चेतोहरा: युवतय: स्वजनाऽनुकूला:

सद्बान्धवा: प्रणयगर्भगिरश्च भृत्या:

गर्जन्ति दन्तिनिवहास्त्वरलास्तुरंगा:

मेरी चित्ताकर्षक रानियां हैं, अनुकूल स्वजन वर्ग है, श्रेष्ठ कुटुंबी जन हैं। कर्मकार विनम्र और आज्ञापालक हैं, हाथी, घोड़ों के रूप में विशाल सेना है। लेकिन बार-बार गुनगुनाने पर भी चौथा-चरण बन नहीं रहा था। संयोग की बात है कि उसी रात एक चोर राजमहल में चोरी करने के लिए आया था। मौका पाकर वह राजा के शयनकक्ष में घुस गया और पलंग के नीचे दुबक कर कर बैठ गया। चोर भी संस्कृत भाषा का विज्ञ और आशु कवि था। समस्यापूर्ति का उसे अभ्यास था। राजा द्वारा गुनगुनाए जाते श्लोक के तीन चरण चोर ने सुन लिए।

राजा के दिमाग में चौथी लाइन नहीं बन रही है, यह भी वह जान गया लेकिन तीन लाइनें सुन कर उस चोर का कवि मन भी उसे पूरा करने के लिए मचलने लगा। वह भूल गया कि वह चोर है और राजा के कक्ष में चोरी करने घुसा है।

अगली बार राजा ने जैसे ही वे तीन लाइनें पूरी कीं, चोर के मुंह से चौथी लाइन निकल पड़ी,

सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति।।

अर्थात: राज्य, वैभव आदि सब तभी तक है, जब तक आंख खुली है। आंख बंद होने के बाद कुछ नहीं है। अत: किस पर गर्व कर रहे हो? चोर की इस एक पंक्ति ने राजा की आंखें खोल दीं। उसे सम्यक् दृष्टि मिल गई। वह चारों ओर विस्फारित नेत्रों से देखने लगा। ऐसी ज्ञान की बात किसने कही? कैसे कही? उसने आवाज दी, पलंग के नीचे जो भी है, वह मेरे सामने

उपस्थित हो। चोर सामने आकर खड़ा हुआ। फिर हाथ जोड़ कर राजा से बोला, हे राजन! मैं आया तो चोरी करने था, पर आप के द्वारा पढ़ा जा रहा श्लोक सुनकर यह भूल गया कि मैं चोर हूँ। मेरा काव्य प्रेम उमड़ पड़ा और मैं चौथे चरण की पूर्ति करने का दुस्साहस कर बैठा। हे राजन ! मैं अपराधी हूँ। मुझे क्षमा कर दें।

राजा ने कहा: तुम अपने जीवन में चाहे जो कुछ भी करते हो, इस क्षण तो तुम मेरे गुरु हो। तुमने मुझे जीवन के यथार्थ का परिचय कराया है। आंख बंद होने के बाद कुछ भी नहीं रहता। यह कह कर तुमने मेरा सत्य से साक्षात्कार करवा दिया। गुरु होने के कारण तुम मुझसे जो चाहो मांग सकते हो।

चोर की समझ में कुछ नहीं आया लेकिन राजा ने आगे कहा: आज मेरे ज्ञान की आंखें खुल गई। इसलिए शुभस्य शीघ्रम् – इस सूक्त को आत्मसात करते हुए मैं शीघ्र ही संन्यास लेना चाहता हूँ। राज्य अब तृण के समान प्रतीत हो रहा है। तुम यदि मेरा राज्य चाह तो मैं उसे सहर्ष देने के लिए तैयार हूँ।

चोर बोला, राजन! आपको जैसे इस वाक्य से बोध पाठ मिला है, वैसे ही मेरा मन भी बदल गया है। मैं भी संन्यास स्वीकार करना चाहता हूँ। राजा और चोर दोनों संन्यासी बन गए।

एक ही पंक्ति ने दोनों को स्पंदित कर दिया। यह है सम्यक द्रूष्टि का परिणाम। जब तक राजा की दृष्टि सम्यक् नहीं थी, वह धन-वैभव, भोग-विलास को ही सब कुछ समझ रहा था। ज्यों ही आंखों से रंगीन चश्मा उतरा, दृष्टि सम्यक् बनी कि पदार्थ हो गया और आत्मा।

षष्ठ अध्याय

निष्कर्ष और सुझाव

6.1 निष्कर्ष

6.2 सुझाव

6.3 शैक्षिक उपादेयता

6.4 भावी शोध हेतु सुझाव

तुलसीदास जी द्वारा रचित 'रामचरितमानस' का अध्ययन करने के बाद शैक्षिक महत्व के विभिन्न शीर्षक निकल कर आए हैं जिनका वर्णन पूर्ववर्ती पांचवें अध्याय 'रामचरितमानस में निहित शैक्षिक मूल्य' में किया गया है। इन शीर्षकों के निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

- संतों का चरित्र— संतों का चरित्र सद्गुणों से परिपूर्ण एवं दोषों (षट्पद विकारों— काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर) से मुक्त होता है। वह स्वभाव से सरल, स्नेहमयी, सहनशील, क्षमावान, नम्र, एवं दयावान होते हैं। वह दूसरों के हित में ही अपना सुख देखते हैं। उनका न कोई शत्रु और न कोई मित्र होता है। वह सबके साथ समानता का व्यवहार करते हैं।
- दुष्टों के गुण— दुष्ट व्यक्ति कपटी, द्रोही. पराई निंदा, पराए धन को हड़पना, पराई स्त्री को बुरी नजर से देखना आदि दुर्गुणों से परिपूर्ण होते हैं। नीच पुरुष जिससे बढ़ाई पाते हैं। पीठ पीछे उसी की बुराई करते हैं। उनकी वाणी हमेशा कठोर एवं संताप देने वाली होती है।
- संत दूसरों का हित प्रकृति (वन, वृक्ष, नदी आदि) के समान करते हैं और नीच हमेशा नीचता को प्रकट करते रहते हैं। अतः संतों का बिछड़ना और असंतों का मिलना मरने के समान दुखदाई होता है।
- सत्संगति और कुसंगति—सत्संगति से पापी और दुष्ट स्वभाव का व्यक्ति भी धीरे-धीरे धार्मिक और सज्जन प्रवृत्ति का बन जाता है। लाखों उपदेश और हजार पुस्तकों का अध्ययन करने पर भी मनुष्य का दुष्ट स्वभाव इतनी सरलता से नहीं बदल सकता जितना किसी अच्छे मनुष्य की संगति से बदल सकता है।

- सत्संगति से हानि और कुसंगति से लाभ की आशा करना व्यर्थ है।
- परोपकार की महिमा—परोपकार के समान कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है। भारतीय चिन्तन, दर्शन एवं साहित्य परोपकार से परिपूर्ण है। परहित तथा लोक-कल्याण जैसी धारणाओं को बहुत महत्त्व दिया गया है। सभी उपनिषद, पुराण एवं अन्य ग्रन्थों का सार परोपकार ही है। संसार में श्रेष्ठ धर्म परहित ही है। आदिकाव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का स्रोत पर पीड़ा से उत्पन्न करुणा की अनुभूति ही है। श्रीमद्भगवद्गीता में तो सभी प्राणियोंके कल्याणकी कामनामें निरत रहनेको कहा गया है— 'सर्वभूतहिते रताः।'
  अठारह पुराणोंका सार यही है कि "अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥"
  आचार्य चाणक्य कहते हैं कि जिस मनुष्य के हृदयमें परोपकार बसा हुआ है, वहाँ विपत्ति आ ही नहीं सकती , वहाँ तो नित्यप्रति समृद्धि ही आती है। " परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्। स नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदःस्युः पदे पदे ॥" (चा० नी० दर्पण १७।१)
  भर्तृहरिने कहा है कि इस पृथ्वीपर परोपकार से बड़ा कोई पुण्य नहीं है "तथाप्येतद्भूमौ नहि परहितात्पुण्यमधिकं।" (शृंगारशतक ४७) दूसरों का हित करने में ही अपना कल्याण है।
- त्रिताप वर्णन—जो भगवत भक्ति में रत रहता है उसे त्रिताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) नहीं व्याप्ते हैं। जो व्यक्ति श्रीरामचन्द्रजी की कृपा को प्राप्त होता है, उसे कोई भी विघ्न बाधित नहीं कर सकता है। वह व्यक्ति आदरपूर्वक सरोवर में स्नान करता है और किसी भी प्रकार के भयानक त्रितापों से प्रभावित नहीं होता है। यह त्रिताप आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक स्तरों पर हो सकते हैं।
- गुरु की महिमा—संत, वेद, पुराण और मुनियों का कहना है कि गुरु के साथ रहकर ही हमारे हृदय में निर्मल ज्ञान जाग्रत होता है। गुरु के बिना हमारा जीवन अंधकारमय, ज्ञानहीन और नीरस है क्योंकि गुरु ही हमारा पथ प्रदर्शक होता है। जो व्यक्ति गुरु के वचनों में विश्वास नहीं रखता है, उसे सुख और सिद्धि प्राप्त नहीं होती है।
- 'माता–पिता, गुरु और स्वामी भक्ति—माता-पिता, गुरु और स्वामी की सीख और आदेशों को मानना व पालन करना हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इनकी सेवा करना हमारे शुभ और समृद्ध जीवन के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इन आदर्शों का पालन करने से हम अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकते हैं और अपने अवसरों का श्रेष्ठ ढंग से उपयोग कर सकते हैं। अतः माता-पिता गुरु और स्वामी हमारे लिए मार्गदर्शक हैं। अतः उनकी आज्ञा हमारे लिए शिरोधार्य है।
- श्रेष्ठ पुत्र—एक पुत्र जो अपने माता-पिता के वचनों का पालन करता है और उन्हें सन्तुष्ट करता है, वही सच्चा पुत्र माना जाता है। ऐसा पुत्र अपने माता-पिता को प्राणों के समान प्रिय होता है। वह उनके सभी कथनों को आचरण में लाता है। उसका जन्म धन्य होता है और उसके अस्तित्व के कारण माता-पिता को परम आनंद मिलता है।

- सेवक और स्वामी का संबंध—तुलसीदास जी ने सेवक को हांथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी को मुख के समान बताया है। सेवक और स्वामी में परस्पर प्रेम और दया की रीति को समझने व सराहने की क्षमता होनी चाहिए।
- तुलसीदास जी एक दोहे के माध्यम से यह संदेश देते है कि सच्चे मित्र, स्वामी, पिता और गुरु हमारे लिए पथ प्रदर्शक और कल्याणकारी होते हैं और हम उनके घर बिना बुलाए भी जा सकते हैं, यदि कोई विरोध न हो तो। यदि तुम्हारे जाने से उन्हें आपत्ति है तो कदापि नहीं जाना चाहिए और यदि ऐसा नहीं है तो उन्हें बुलाने की आवश्यकता नहीं है, हम ही उनके पास जा सकते हैं। सच्चे मित्र के लिए सच्चा मित्र, स्वामी के लिए प्रजा, पिता के लिए संतान (पुत्र या पुत्री), गुरु के लिए शिष्य कभी पराए नहीं होते।
- तुलसीदास जी एक चौपाई के माध्यम से कहते हैं कि समर्थ को कोई दोष नहीं लगता जैसे गंगा, सूर्य, अग्नि, सूर्य की तीव्रता कितनी भी प्रचंड हो, वर्षा काल में गंगाजी अपने तटों को छोड़कर कितने भी क्षेत्र पर अतिक्रमण कर ले और अग्नि अपनी प्रचंड ज्वाला में कुछ भी भस्म कर दे किन्तु उसे दोषी नहीं ठहराया जाता है। नदी में शुभ और अशुभ अर्थात् मैल और फूल दोनों बहते हैं पर कोई नदी को अपवित्र या अपुनीत नहीं कहता है। इसी प्रकार समर्थ को सभी लोग दोष मुक्त कहते हैं। दूसरे शब्दों में समर्थ कौन है? जो हर गुण से परिपूर्ण है, दया, क्षमा, वीरता, शीलता, मर्यादा से युक्त है। गीता में भी कहा गया है 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'. अतः इस भौतिक जगत में यदि कोई वास्तव में दोष रहित है तो उसे भी समर्थवान समझा जा सकता है जैसे हिमालय से अनन्त रत्न, औषधि उत्पन्न होते हैं इसलिए हिमं रूप दोष होते हुए भी उनके सौभाग्य में कोई हानि नहीं पहुँचाता। जैसे चन्द्रमा में यद्यपि कालिमा है तथापि यह दोष अन्य गुणों के समूह में दब जाता है। उसी प्रकार व्यक्ति में अनेक अच्छाइयाँ हो और उसमें एक बुराई प्रकट हो जाती है तो उसको उसी प्रकार नहीं देखते हैं जैसे हिमालय में बर्फ और चंद्रमा में कलंक और सर्वगुण संपन्न शिवजी में कुछ गुण दोष को नहीं देखा जाता है।
- तप वर्णन—सम्पूर्ण सृष्टि तप के आधार पर ही निर्मित है। तप और आध्यात्मिक साधना से हम अपनी आत्मिक शक्ति को प्राप्त करके संकटों को नष्ट कर सकते हैं। इसके लिए हमें साहस, त्याग, और सामर्थ्य की आवश्यकता होती है। तप सुखप्रद होता है। हमारे आस-पास की सृष्टि का आधार तप ही है।
- सत्य और धर्म आपस में अभिन्न हैं। सत्य का पालन करने वाला व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलता है और उसे स्वर्ग, समृद्धि और अपार आनंद की प्राप्ति होती है। धर्म व्यक्ति को न्याय, सत्य, ईमानदारी और निष्ठा का पालन करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार यह चौपाई हमें सत्य और धर्म के महत्व को समझाती है और हमें यह सिखाती है कि सत्य का पालन करने वाले व्यक्ति के लिए शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी सब तिनके के बराबर होते हैं।
- माया और छल-कपट—काल, स्वभाव और कर्म की प्रभावशाली शक्ति से भले लोग भी मोहित हो जाते हैं और छल-कपट में फँस जाते हैं। सुन्दरता के आकर्षण में लोग मूढ़ता कर जाते हैं और चतुर मनुष्य भी धोखा खा सकते हैं। बाहरी दिखावट और आकर्षण के पीछे छिपी वास्तविकता को समझना आवश्यक है।

- मानसिक दोष—काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, ईर्ष्या जैसे दुष्ट भाव मनुष्य को अनुचित कर्मों के लिए प्रेरित करते हैं। इन अवगुणों से युक्त व्यक्ति दूसरों के लिए अहितकर होते हैं। क्रोध पाप का मूल कारण है, जिससे मनुष्य अनुचित कर्म करता है। इस प्रकार से इन दुष्ट भावों को त्यागकर मनुष्य को श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति करनी चाहिए, क्योंकि वे संतों द्वारा भजे जाते हैं और इन दुष्ट भावों से परे होते हैं। जो मनुष्य दूसरों के विपरीत होता है, मोह के वश में होता है, राम के प्रति उदासीन होता है और काम में आसक्त होता है उसे सम्पत्ति, सुख और चित्त की शांति कभी स्वप्न में भी नहीं मिल सकती है।
- शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा नहीं समझना चाहिए। क्योंकि यह शेष रहने पर भी हमें कष्ट देते हैं। तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। जैसा कि कहा जाता है सिर मात्र बचा हुआ राहु आज तक सूर्य-चन्द्रमा को दुःख देता है ।
- समय का महत्व— जब समय चला जाता है, तब पछताने से कोई लाभ नहीं होता है। इसलिए हमें अपने कार्यों को समय पर पूरा करना चाहिए और पछताने की जगह पर हमें अपने कार्य में अग्रसर होना चाहिए।
- शूरवीर युद्ध करते समय अपनी महानता को स्वयं प्रकट नहीं करता है। उसे अपने शूरवीरता की प्रशंसा करने की स्वयं आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि वह अपने कार्यों में स्थिर रहकर अपनी ताकत दिखा देता है। वह शत्रु के सामने वीरतापूर्वक अपना कर्तव्य निभाता है, जबकि कायर व्यक्ति युद्ध में अंश मात्र भाग लेता है और अपने प्रताप की खोखली बातें करता है।
- योगी पुरुष की महिमा—योगी पुरुष अपनी साधना में उन्माद, मोह, ममता और मद को छोड़कर लगे रहते हैं। वे ब्रह्म को सर्वव्यापक, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानंद स्वरूप और निर्गुण गुणों का स्रोत मानते हैं। उनकी महिमा का वेद भी वर्णन नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वे तीनों कालों में एकरस (निर्विकार) बने रहते हैं।
- कर्मफल ईश्वर द्वारा निर्धारित होता है। जीवन काल और कर्म के अधीन होते हैं। उपदेश देने वाले और कर्म करने वाले अलग होते हैं।
- विचारणीय तथ्य—कुछ व्यक्ति अपने धर्म के विपरीत कार्य करते हैं जो निंदनीय है, यथा—

1. **ब्राह्मण**: एक ऐसा व्यक्ति जिसने वेदों का ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, अपने ब्राह्मणत्व गुण का त्याग कर दिया है, और जो अपने धर्म को छोड़कर मात्र भोगों में रमता है।
2. **राजा:** एक ऐसा व्यक्ति जिसे नीति का ज्ञान नहीं है और जो अपनी प्रजा को प्यार नहीं करता है।
3. **वैश्य:** एक ऐसा व्यक्ति जो धनवान होते हुए भी कंजूस है और जो अतिथि सत्कार और ईश्वरीय भक्ति में निपुण नहीं है।
4. **शूद्र:** एक ऐसा व्यक्ति जो ब्राह्मणों (आज के अर्थ में गुरुजनों) का अपमान करता है, बहुत बोलता है, मान-बड़ाई चाहता है और ज्ञान का घमंड रखता है।

5. **स्त्री**: एक ऐसी महिला जो अपने पति के साथ छल करती है, कुटिल है, कलहप्रिय है और स्वेच्छाचारिणी है।
6. **ब्रह्मचारी:** एक ऐसा व्यक्ति जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत को त्याग देता है और गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता है।
7. **गृहस्थ:** एक ऐसा व्यक्ति जो मोहवश कर्म मार्ग का त्याग कर देता है।
8. **संन्यासी:** एक ऐसा व्यक्ति जो माया-मोह में फंसा हुआ है। ज्ञान और वैराग्य की कमी है।
9. **वानप्रस्थ:** एक ऐसा व्यक्ति जिसे तपस्या को छोड़कर भोग का आनंद अधिक प्रिय होता है।
10. **छलकार:** एक ऐसा व्यक्ति जो दूसरों का अनिष्ट करता है, अपने शरीर का पोषण करता है और निर्दयी होता है।

- यदि हम किसी काम को ध्यानपूर्वक समझें और सही तरीके से करें, तो हम सबसे अच्छे प्रतिस्पर्धी माने जाएंगे। विद्वतजन कहते हैं कि बिना सोचे, समझे काम करके पछताने वाले बुद्धिमान नहीं होते।
- इस जगत में पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार पुनः मिल सकते हैं, लेकिन सहोदर भाई या भाईचारा बार-बार नहीं मिलता है। हमें इस परिवर्तनशील जगत में भाईचारे की प्राथमिकता देनी चाहिए और यह सोचकर कि हम एक दिन इस जगत से जाने वाले हैं, हमें उसे अच्छे से जीना चाहिए। भाईचारे के महत्व को हमेशा याद रखना चाहिए।
- पतिव्रत धर्म—पतिव्रत धर्म एक महत्वपूर्ण धर्म है और पति की सेवा, प्रेम और पूजा एक स्त्री के जीवन में महत्वपूर्ण होती है। यह धर्म स्त्री को सुख, सम्मान और पूर्णता की प्राप्ति में मदद करता है। शिवजी की सासू माँ अपनी पुत्री पार्वती को विदाई के समय और अत्रि मुनि की पत्नि अनुसूया सीता जी को यह बताती हैं कि पति की पूजा करना और उसकी सेवा करना एक स्त्री के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे इस बात को स्पष्ट करती हैं कि पति स्त्री के लिए परमेश्वर हैं और उसके अतिरिक्त कोई भी देवता नहीं है। वेद, पुराण और महाकाव्य आदि प्राचीन ग्रंथों में पतिव्रताओं को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। उत्तम श्रेणी की पतिव्रता वह कहलाती जिसके मन में उसे अपने पति के अतिरिक्त किसी और पुरुष की भावना नहीं होती है। मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को उसके भाई, पिता या पुत्र के रूप में देखती है। निकृष्ट श्रेणी की स्त्री अपने धर्म और कुल की मर्यादा को समझकर अपना बचाव करती है। जो स्त्री मौका न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना। जो स्त्री अपने पति को धोखा देती हैं या पराये पति के साथ सम्बन्ध बनाकर रति करती हैं, उन्हें दुष्टा स्त्री माना जाता है और उन्हें सौ कल्प तक रौरव नरक में फँसने की सजा मिलती है। सार रूप में कह सकते हैं कि उत्तम पतिव्रता को सर्वोच्च मान्यता प्राप्त होती है, जबकि अधम पतिव्रता की निन्दा की गई है।
- पत्निव्रत धर्म—पति के प्रति पत्नी का जितना कर्तव्य है उतना ही कर्तव्य पत्नी के प्रति पति का है। नारी का सम्मान और पत्निव्रत होना जीवन में अत्यंत आवश्यक है। जो पुरुष पराई स्त्री को अपनी माता के समान और पराए धन को विष के समान समझता है उसके मन में ईश्वर का वास होता है। इसके विपरीत जो पुरुष पराई स्त्रियों के संग संबंध बनाता है और उनका अपमान करता है वह पापी होता है और अधर्म की दिशा में जाता है।

- माया और विद्या—माया एक भ्रम है जिस कारण जगत में व्यक्ति वस्तुओं के भेद को समझने में भ्रमित होता है। गुण और दोष भी माया का ही एक भाग हैं। वास्तविक सत्य एक मात्र ब्रह्म है। विवेकी जीव सबको समान देखता है। जीव का वास्तविक स्वरूप परमात्मा है और ईश्वर सबका कर्मफल नियंत्रित करने वाला है। धर्म, वैराग्य और ज्ञान एक-दूसरे के सहारे से प्राप्त होते हैं और ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। भक्ति स्वतंत्र है और वह किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है। माया के प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हैं और वही हमें सबके द्वारा देखे जाने वाले भ्रम से मुक्ति दिलाते हैं। जगत में भ्रम से रहित एक ज्ञानी व्यक्ति ही वास्तविक धनी, शूरवीर और गुणों का धाम है। जगत में कोई भी गुण और दोष सच्चे नहीं हैं और इन्हें सच्चा समझना ही अज्ञानता है।
- नीति के बिना श्रेष्ठ राज्य चलाने की, धर्म के बिना धन प्राप्त करने की, भगवान को समर्पण किये बिना उत्तम कर्म करने की और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़ने की कल्पना नहीं की जा सकती। परिणाम में केवल श्रम ही हाथ लगता है। विषयों के सङ्ग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, अहंकार से ज्ञान, मदिरापान से लज्जा, नम्रता के बिना प्रीति और मद (अहङ्कार) से गुणवान शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। सारगर्भित सन्देश यह है कि नीति, धर्म, कर्म, विद्या, सहयोग, विवेक, श्रम, प्रेम और गुणवत्ता जैसे महत्वपूर्ण मानवीय मूल्यों को हमेशा महत्व देना चाहिए ताकि हम एक समृद्ध और उदार समाज का निर्माण कर सकें।
- नौ व्यक्तियों से विरोध करना हमारे लिए कल्याणकारक नहीं हैं। वह नौ व्यक्ति हैं— शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जानने वाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया।
- चौदह व्यक्ति ऐसे होते हैं जो जीवित होते हुए भी मरे के समान है। वह चौदह व्यक्ति हैं: वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा, नित्य का रोगी, निरन्तर क्रोध युक्त रहनेवाला, भगवत भक्ति से विमुख, वेद और संतों का विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करने वाला, परायी निन्दा करने वाला और पाप की खान।
- छोटे भाई की पत्नी, बहन, पुत्र की पत्नी और बेटी ये चारों स्त्रियाँ माँ के समान हैं और इन्हें बुरी नजर से देखने वालों को मारने में कोई पाप नहीं होता। इस बात से यह संकेत मिलता है कि स्त्रियों का सम्मान सर्वोपरि है।
- इस संसार में सबकी जरूरत—प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना महत्त्व होता है कोई भी छोटा अथवा बड़ा नहीं होता। बड़ी चीज जितनी उपयोगी है, छोटी चीज भी उतने ही काम की है। बड़ी-बड़ी मशीनों के कल-पुर्जों को जोड़ने वाले नट-बोल्ट छोटे-छोटे ही होते हैं। सोना अगर कीमती धातु है, तो लोहा मजबूत और प्रतिदिन काम आने वाली धातु है। जैसे कमल की प्रतिष्ठा बनाने में कीचड़ का भी महत्वपूर्ण योगदान है। एक बड़े मकान में छोटे-छोटे कंकड़ पत्थरों का भी योगदान है।
- प्रीति और वैर दो व्यक्तियों के बीच बराबरी में होना चाहिए जैसे अगर सिंह मेंढक को मारता है तो उसको किसी प्रकार से भला नहीं कहा जा सकता है।

- जो व्यक्ति स्वार्थ व लोभ में फँस जाता है और इस चक्कर में अपनों का साथ छोड़ देता है, उसका कोई भी अपना नहीं होता है और अंत में उसे पछताना पड़ता है।
- यदि हमारा चरित्र सुरक्षित है तो सभी संबंधी जन हमारे हितकारी होते हैं और यदि हमारा चरित्र नष्ट हो गया तो यही रिश्ते-नाते हमारे लिए सूर्य की भांति ताप देने वाले होते हैं। अर्थात् सभी साथ छोड़ देते हैं। यथा कमल जब जल में रहता है तो वही सूर्य कमल को विकसित करता है और यदि वही कमल जल से अलग कर दिया जाता है तो वही सूर्य उसको सुखा देता है।
- नवधा भक्ति—भक्ति का असली अर्थ है भगवान के प्रति आत्मसमर्पण और प्रेम का विकास। यह नवधा भक्ति प्रक्रिया एक साधक को अपने आप को ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ संयमित और निःस्वार्थी बनने का मार्ग प्रशस्त करती है।
- सुबुद्धि और कुबुद्धि— एक व्यक्ति जो सुमति (अच्छी बुद्धि) का उपयोग करता है, तो वह धन, सुख और समृद्धि को प्राप्त करता है। अच्छे निर्णय और सही दिशा-निर्देशन का कार्य करता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति कुमति (खोटी बुद्धि) का उपयोग करता है, तो वहाँ परिणामस्वरूप दुःख और असमृद्धि होती है। अंततः मनुष्य सुबुद्धि के आधार पर सही निर्णय लेने और सही कर्म करने से ही वह सुख- समृद्धि को प्राप्त कर सकता है।
- मनुष्य तन का महत्व—मनुष्य शरीर अद्वितीय है। इसे प्राप्त करने के बाद भी जब मनुष्य भगवान की भक्ति नहीं करता है और विषयों में आसक्त रहता है, तो मानो वह पारसमणि को फेंक देता है और कांच के टुकड़ों को बटोरता है। इतनी समझ तो पशु-पक्षियों में भी होती है जो मित्र और शत्रु को पहचान लेते हैं । मनुष्य शरीर गुण और ज्ञान का भंडार है जिसका उपयोग कल्याण, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए।
- हमें किसी भी प्रकार से मंत्री, वैद्य और गुरु को अप्रसन्न नहीं करना चाहिए क्योंकि मंत्री से एक अच्छी हितकारी मंत्रणा प्राप्त होती है, वैद्य हमारे शरीर की बीमारी को दूर करता है एवं गुरु की तो महिमा अपरंपार है जो हमारे मन की बीमारी को दूर करते है, अर्थात हमें जीवन के असली ज्ञान का दर्शन कराते हैं और हमारा मार्गदर्शन करते हैं।
- सच्चा मित्र और कुत्सित मित्र— सच्चे मित्र में सत्य, सहजता, निःस्वार्थता और विश्वास की भावना होती है। एक सच्चा मित्र हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण होता है। सुख-दुःख की बातें परिवार के बाद एक सच्चे मित्र से ही करते हैं। हमें दूसरों की बुराई करने वाले और कपटी मित्रों से दूर रहना चाहिए।
- धर्म हर युग में अपनी विशेषताओं के साथ नित्य रहता है। सतयुग में सभी के हृदय में धर्म का प्रभाव रहता है और यहाँ सतोगुण, समता, न्याय और प्रसन्न मन की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। त्रेतायुग में धर्म का लक्षण होता है कि सतोगुण अधिक हो, रजोगुण कुछ हो और सब प्रकार से सुख हो। द्वापरयुग में रजोगुण अधिक होता है, सतोगुण कम होता है और मन में हर्ष और भय की भावना होती है। कलियुग में तमोगुण अधिक होता है, रजोगुण

कुछ ही होता है और वैर-विरोध की स्थिति प्रचलित होती है। ज्ञानी लोग युगों के धर्म को पहचानकर अधर्म को छोड़ते हैं और धर्म में प्रीति रखते हैं।

- यथा दृष्टि तथा सृष्टि—भावना और दृष्टि हमारे प्रत्येक कार्य में महत्वपूर्ण होती हैं। जैसी भावना हमारे मन में होती है, वैसी ही हम दुनिया को देखते हैं। अगर हमारी भावना प्रेम, सम्मान और शांति की होती है, तो हम दूसरों को भी प्रेम, सम्मान और शांति से देखेंगे। वहीं अगर हमारी भावना द्वेष, अहंकार और क्रोध की होती है, तो हम दूसरों को भी उसी तरीके से देखेंगे। अर्थात् हम जिस प्रकृति के होते हैं हमें वैसा ही संसार दिखाई देता है।
- रामराज्य की महिमा—श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में सब लोग खुश और संतुष्ट रहते थे। उनके राज्य में सभी वर्ण, आश्रम और धर्म के अनुकूल रहकर सदा वेदमार्ग पर चलते थे और धार्मिकता के नियमों का पालन करते थे। उनके राज्य में सभी लोग सद्भावपूर्ण और प्रेमपूर्ण रहते थे, जगत में कोई विषमता नहीं रहती थी और धर्म चार चरणों (सत्य, दया, दान और पवित्रता) से परिपूर्ण होता है। इस राज्य में मृत्यु, शोक, रोग, दरिद्रता, दुःख और अज्ञान ऐसी कोई सताने वाली चीज़ नहीं होती थी। सभी लोग सत्यवादी, निष्ठावान, गुणवान, कृतज्ञ, परोपकारी और सद्भावनापूर्ण होते थे।

प्रस्तुत लघु शोध में 'रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता' के अध्ययन के पश्चात पाया कि किसी भी शोध कार्य का यह लक्ष्य होना चाहिए कि उसके द्वारा अपेक्षित सुधार हो। प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

संत और दुष्टों के गुण

- यदि हमें अवसर मिले तो संत समागम जरूर करना चाहिए। सत्पुरुषों, संतों और उच्च गुणवान लोगों के संग में रहने का प्रयास करें। उनसे सीखें और उनके मार्ग का अनुसरण करें।
- दुष्ट की न कलह अच्छी, न प्रेम, अतः हमें दुष्टों की संगति नहीं करनी चाहिए। दुष्टों की चिकनी-चुपड़ी बातों में नहीं आना चाहिए, क्योंकि वह अपना स्वार्थ ही सिद्ध करते हैं। यदि आपको लगता है कि कोई दुर्गुण आप में है, तो उसे सुधारें।
- संत और असंत के गुणों को समझें, विचार करें कि संतों के गुण जैसे परोपकार, धार्मिकता, और समर्पण हमें अपने आप में एक उत्कृष्ट प्रकृति के ओर ले जाते हैं। असंतों के गुणों, जैसे स्वार्थपरायणता, दुष्टता, और अहंकार के प्रभाव को समझें और उनसे दूर रहने का प्रयास करें।

- अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्य लोगों की मदद करने की कोशिश करें। यह मानवीय संबंधों को मधुर और सुखद बनाता है और आपके आस-पास की सामाजिक परिस्थितियों को सुधारने में मदद करता है।
- साधुओं की तरह अपने मन को शांत और स्थिर रखने के लिए ध्यान और मेधा विकसित करें। नियमित ध्यान और धार्मिक अभ्यास के माध्यम से अपनी आत्मा को ऊँचाईयों तक ले जाने का प्रयास करें।

सत्संगति और कुसंगति

- वेदों, संतों, महात्माओं और गुरुओं के उपदेशों को प्राथमिकता दें और उनका अनुसरण करें।
- जीवन में उचित विचार और कर्मों का चयन करें ताकि सत्संग की प्राप्ति हो सके। अच्छे संग को आदर्श बनाएं और कुसंग से दूर रहें।
- अपने मन को सत्संग के आदर्शों के साथ समायोजित करें, सत्संग के माध्यम से मन को शुद्ध और प्रेमपूर्ण बनाएँ।

दूसरों की खुशी में अपनी खुशी

- दूसरों की मदद करने के लिए तत्पर रहें। अपनी सामर्थ्य, कौशल और संसाधनों को उनके लाभ के लिए सहयोग में लाएं। यह आपके आस-पास के लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने में मदद कर सकता है।
- अपने साथियों, परिवार के सदस्यों, सहकर्मियों और समुदाय के अन्य लोगों के साथ मिल-जुलकर काम करें।
- दूसरों के साथ उदारता, सहयोग की भावना और दुःख के साथ सहानुभूति दिखाएं। अपनी खुशी को साझा करें और उनके साथ उनकी खुशियों में सम्मिलित हों।
- अपने आस-पास के लोगों के हित के कार्य में रुचि रखें। दूसरों की सहायता करने का प्रयास करें।
- कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वहीं उत्तम है जो सभी का हित करती हो, अतः आप निःस्वार्थ भाव से जीवन जिएँ।

त्रितापों का वर्णन

- भगवान श्रीराम का भजन, कीर्तन और योगाभ्यास से त्रितापों (मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक) से छुटकारा पा सकते हैं। योगाभ्यास आपके शरीर को स्वस्थ रखता है, मन को शांति प्रदान करता है और आध्यात्मिक विकास को प्रोत्साहित करता है।
- सत्संग, सद्गुरु के साथ समय बिताना और सच्ची प्रार्थना करना आपको मानसिक और आध्यात्मिक शांति प्रदान कर सकता है। सत्संग में सत्य की बातें सुनना, साधुजनों के साथ संगति बनाए रखना और प्रार्थना में अपनी मन की बातें ईश्वर के सामने रखना आपको आंतरिक शांति प्रदान करेगा और त्रिताप से छूटकारा दिलाएगा।

गुरु महिमा

- अपने आसपास या अपने समाज में एक सत्प्रवर्तक गुरु की खोज करें जो आपको आदर्श आचरण, सास्कृतिक ज्ञान, संस्कार और एक अच्छा मार्गदर्शन दे सके। ध्यान दें कि गुरु की खोज करने से पहले आप अपने मन में निर्णय लें कि आप वास्तव में एक गुरु के मार्गदर्शन को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।
- एक गुरु से मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए गुरु के पास जाएं और उनसे मिलें। गुरु के प्रति इस प्रकार आचरण करें एवं कर्तव्यनिष्ठ रहें कि वह जीवन भर आपको याद करें।
- गुरु के द्वारा दिए गए उपदेशों को अपनाएं और उन्हें अपने जीवन में अमल करें। गुरु के मार्गदर्शन के आधार पर आप अपने ध्यान, मेधा, और अन्तःकरण को शुद्ध करने की प्रयास कर सकते हैं और सत्य, न्याय, प्रेम, और अहिंसा के मार्ग पर चल सकते हैं।
- गुरु के साथ संबंध विकसित करें और उनके साथ संपर्क में बने रहें। उनसे संदेश, सलाह, और ज्ञान प्राप्त करने के लिए नियमित रूप से संपर्क में रहें।

माता–पिता, गुरु और स्वामी भक्ति

- माता और पिता हमारे जीवन के प्रमुख संरक्षक होते हैं। हमें उनकी सेवा करनी चाहिए और उनका सम्मान करना चाहिए। हमें उनके आदर्शों और मार्गदर्शन को मानना चाहिए।
- गुरु हमारे जीवन में मार्गदर्शक होते हैं। हमें गुरु की शिक्षा को मान्यता देनी चाहिए और उनके दिए गए उपदेशों का पालन करना चाहिए। उनके मार्गदर्शन में चलकर हम अच्छे कर्मों को अपनाने में सफल होते हैं।
- स्वामी या ईश्वर की भक्ति करना हमें आध्यात्मिक विकास में मदद करता है। उनके प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए और उनके आदर्शों का पालन करना चाहिए।
- गुरु, माता-पिता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से यदि कुसंगति के कारण कुमार्ग पर भी चलते हैं तो पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। क्योंकि वह हमारे दुर्गुणों का निवारण कर देते हैं।

श्रेष्ठ पुत्र

- एक पुत्र के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात है कि वह अपने पिता-माता के वचनों का पालन करे और उन्हें संतुष्ट करे। उसको दृढ़ निश्चय, धर्म, ज्ञान, शक्ति, दान आदि गुणों में सुसंपन्न होना चाहिए।
- एक श्रेष्ठ पुत्र बनने के लिए, नैतिक मूल्यों को अपनाएं। सच्चाई, ईमानदारी, सम्मान, दया, और धैर्य जैसे गुणों को अपने जीवन का अंग बनाएं।

एक पिता का कर्तव्य

- आपको अपने बच्चों के प्रति स्वयं एक आदर्श पिता होना चाहिए। उन्हें आपके प्रति सम्मान, शिक्षा, और नैतिकता का उदाहरण मिलना चाहिए।
- अपने बच्चों के साथ नियमित रूप से संवाद करें और उनकी बातें सुनें। उन्हें यह अनुभव करने दें कि आप उन्हें समझते हैं और उनकी बातों को महत्व देते हैं।
- अपने बच्चों को उनके प्रयासों के लिए प्रोत्साहित करें और उन्हें समर्थन करें। उनके साथ एकजुट रहें और उनकी जरूरतों को समझें।
- अपने बच्चों को संस्कृति, नैतिकता, और न्याय के मूल्यों को समझाएं। उन्हें सच्चाई, ईमानदारी, और सम्मान के महत्व को सिखाएं।

सेवक और स्वामी कैसे होना चाहिए?

- सेवक पवित्र, सुशील और सुन्दर मनोहारी बुद्धिवाला होना चाहिए। सेवक को स्वामी के प्रेम और सद्गुणों को देखकर सराहना करनी चाहिए।
- स्वामी को सद्गुरु और सत्संग का सम्बन्ध बनाए रखना चाहिए ताकि वह सत्संग के माध्यम से अहंकार से दूर रह सके।
- कार्यों में नियुक्त सेवकों को गुप्तचर रूपी नेत्र वाले स्वामी (राजाओं) को नहीं ठगना चाहिए। किसी राजा की झूठी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। सेवक और स्वामी के बीच समान प्रेम भाव होना चाहिए। स्वामी अपने पद का अहंकार न करे।

बिना बुलाए कहाँ-कहाँ जा सकते हैं?

- माता-पिता, स्वामी (राजा), गुरु और मित्र इनके यहाँ आप बिना बुलाए जा सकते हैं क्योंकि वहाँ जाने में हमारा कल्याण ही होगा
- लेकिन यही व्यक्ति (मित्र, स्वामी, पिता या गुरु) यदि हमारा विरोध करते हैं, तो वहां नहीं जाना चाहिए क्योंकि वहां जाने से हमारा कल्याण (शुभ फल) नहीं होता है।
- दूसरे व्यक्ति की आपत्ति, अयोग्य संबंधों के घर (उनका विरोध करने वाले व्यक्ति के घर), आपके शत्रु के घर, अनुचित स्थान (जहाँ आपकी सुरक्षा का पालन नहीं हो सकता है) हमें वहाँ नहीं जाना चाहिए।

समर्थ दोषमुक्त हैं

- समर्थ व्यक्ति में यदि एक मामूली दोष या गलती उत्पन्न हो जाती है तो उसकी गलती को लेकर नहीं बैठना चाहिए। माना उसमें नौ अच्छाइयाँ है और एक मामूली सी बुराई है, तो क्षमा करने योग्य (दोषमुक्त) है। समर्थ व्यक्ति से आशय

प्रतिष्ठित, धनवान, नेता, उच्च पद पर नियुक्त व्यक्ति आदि से है, यदि वह कोई सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध गलत कदम उठाए तो वह दोषमुक्त नहीं दोषयुक्त है। उस पर सवाल अवश्य उठाना चाहिए।

तप–महिमा

- तप सुखदायक होता है। यदि आप तप करते हैं, तो आप आत्म-संयम, शारीरिक सहनशक्ति, आंतरिक मन की शांति और दुःख को दूर कर सकते हैं।
- तप के माध्यम से आप स्वयं को संयमित कर सकते हैं और अपने जीवन को सर्वोच्च उद्देश्यों की ओर प्रवृत्त कर सकते हैं।

सत्य की महिमा

- व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर सत्य के प्रति समर्पण और निष्ठा बढ़ाने का प्रयास करें। अपने जीवन के आदर्शों को अपनाने के लिए सदैव सत्य का पालन करें।
- सत्य की महिमा से संबंधित विभिन्न कहानियों को जैसे–सत्यवादी हरिश्चंद्र,धर्मराज युधिष्ठिर, महात्मा गांधी आदि की कहानियों को पढ़कर अपने जीवन में अवश्य उतारने का प्रयत्न करें।

मायाजाल, छल–कपट से सावधान

- हमें जीवन में विवेकपूर्ण निर्णय लेना चाहिए और दोषों के स्थान पर गुणों को प्राथमिकता देनी चाहिए।
- व्यक्ति को सुन्दर वेश देखकर मूर्खता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं। इसलिए हमें लोगों के वचनों, बाहरी दिखावट, वेशभूषा पर विश्वास नहीं करना चाहिए। बल्कि उनके वचनों और कृत्यों की जाँच करनी चाहिए।

मानसिक दोष

- राग, लोभ, ईर्ष्या, मद, मोह जैसे दुर्गुणों को छोड़ना चाहिए। ये दुर्गुण व्यक्ति को अनुचित कार्यों में प्रेरित करते हैं। इन दुर्गुणों को छोड़ें और सबको सद्भाव से देखें। क्रोध के प्रभाव में रहकर अनुचित कर्म न करें। धैर्य रखें और अपने मन को स्थिर रखें ताकि आप सही कार्यों को चुन सकें।

किनको छोटा नहीं समझना चाहिए?

- हमें एक तेजस्वी, शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा नहीं समझना चाहिए। यह बात सत्य है कि शत्रु हमें कष्ट और दुःख पहुँचा सकता है, अतः हमें उनकी ताकत और सामर्थ्य को समझकर उनसे सतर्क रहना चाहिए।

समय की कीमत

- हमें समय की कीमत को समझना चाहिए। आप अपने कार्यों को समय से पूर्ण करें क्योंकि समय चला जाने पर पछताने से कोई लाभ नहीं होता है।

शूरवीर का व्यक्तित्व

- शूरवीरों की वीरता से युक्त कथाओं का अध्ययन करें। वीर पुरुष की वीरता, देशभक्ति, धैर्य, सहानुभूति आदि के गुणों का अनुसरण करना चाहिए।
- शूरवीर बनने के लिए आपको निष्ठा और संयम के साथ अपने लक्ष्य की ओर प्रगति करनी चाहिए। अपने कार्यों में समर्पित रहें और परिश्रम, धैर्य, समर्पण और संघर्ष के साथ अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करें।

योगी पुरुष के गुण

- आध्यात्मिक पुस्तकों (गीता, सांख्यदर्शन, वेदांतदर्शन, रामायण आदि) का अध्ययन करें और योगी पुरुषों के चित्रों को जानने का प्रयास करें।
- सात्विक आहार लेना योगी पुरुष बनाने में महत्वपूर्ण है। सात्विक आहार शुद्ध, प्राकृतिक और मानसिक शांति को बढ़ाने के लिए मदद करता है। शुद्ध और प्राकृतिक आहार का सेवन करें और तामसिक और राजसिक आहार की मात्रा को कम करें।
- नियमित योगाभ्यास करना महत्वपूर्ण है। योग के विभिन्न आसनों और प्राणायाम के अभ्यास से शरीर, मन और आत्मा का संतुलन स्थापित होता है। इसके लिए नियमित और निष्ठापूर्वक अभ्यास करना आवश्यक है।
- गुरु का सहारा लेना योगी बनने में लाभदायक होता है। यदि संभव हो सके, एक अनुभवी योग गुरु की खोज करें और उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करें। गुरु के मार्गदर्शन में आपको सही दिशा और प्रेरणा मिलेगी और आपकी साधना को समर्थन किया जाएगा।
- ब्रह्मचर्य के माध्यम से अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करें और सत्त्वगुण को बढ़ावा दें। इससे मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होती है।

कर्म की महत्ता

- हमें अच्छे कर्म करने पर ध्यान देना चाहिए। जीवन में नेक कर्म करने से हम स्वयं को और दूसरों को खुशी, समृद्धि और शांति का अनुभव कराते हैं।
-

- हम अपने कर्मों के माध्यम से अपने भविष्य का निर्माण करते हैं। सत्य, न्याय, प्रेम, और कर्तव्य के मार्ग में चलने का प्रयास करें और सदैव सकारात्मक और सद्भावना के साथ अपने कर्मों को निर्वहन करें।

विचारणीय तथ्य?

- ब्राह्मण वेदों के प्रति आग्रह बढ़ाएँ और धार्मिक अध्ययन और साधना में आसक्ति विकसित करें। धार्मिक ग्रंथों के पठन-पाठन के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान को विकसित करें।
- राजा नीति और लोकहित में गहरी रुचि प्रदर्शित करें। न्याय और उचित निर्णयों के लिए ज्ञान और समझ को बढ़ावा दें। अपनी प्रजा के प्रति सहानुभूति और प्रेम व्यक्त करें और उनके सामर्थ्य को समझें और मदद करें।
- वैश्य दानशीलता और अतिथि सत्कार के महत्व समझें। अपने धन का उपयोग दान, सेवा, और सामाजिक सुधार के लिए करें।
- शूद्र अन्य वर्णों का सम्मान करें और उनकी ज्ञान और अनुभव से सीखें। आत्मसम्मान और संवेदनशीलता को विकसित करें।
- स्त्री पति के प्रति प्रेम व्यक्त करे। पति को ही परमेश्वर माने, आत्मसंयम का विकसित करे और आदर्श पतिव्रत धर्म को बनाए रखे।
- ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें और अपने जीवन को तपमय बनाएँ।
- गृहस्थ संतोष, त्याग, और संयम के माध्यम से अपनी मोहवश इच्छाओं को नियंत्रित करें। साधना, सेवा, और प्रेम के माध्यम से अपने आप को उन्नत करें।
- संन्यासी ज्ञान और वैराग्य के माध्यम से आध्यात्मिक विकास करे। संयम, सद्भावना, और सहजता को विकसित करें।

सोचो, विचारो और कार्य करो

- हमें जीवन में अनुचित या उचित यह समझकर ही कार्य करना चाहिए।
- किसी भी महत्वपूर्ण निर्णय पर आपको शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। आपको समय देना चाहिए ताकि आप सभी पहलुओं को विचारपूर्वक समझ सकें और एक ठीक निर्णय ले सकें।
- किसी भी कार्य में, संयम और धैर्य रखना महत्वपूर्ण है। जब कार्य में कोई समस्या या विघ्न आए, तो आपको स्थिर रहकर समस्या का समाधान खोजना चाहिए।

भ्रातृ प्रेम

- जब आपके सहोदर भाई या बहन को मदद की आवश्यकता हो, तो उनकी सहायता करें। इससे आपका रिश्ता और भाईचारा मजबूत होगा।

- पारिवारिक समारोह और त्योहारों में सहोदर भाई या बहन के साथ सम्मिलित हों। इससे आपका बंधन मजबूत होगा।
- हमें सहोदर भाई के साथ आपसी मतभेदों को छोड़कर एक-दूसरे से प्रेम करना चाहिए।

पतिव्रत एवं पत्नीव्रत धर्म

- पति-पत्नी के बीच सम्मान और प्रेम होना चाहिए।
- पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यों को मजबूत बनाने हेतु रामायण, गीता, रामचरितमानस जैसी पुस्तकों को अपने जीवन में जरूर उतारें।
- पुरुषों को विशेष ध्यान देना चाहिए कि पत्नी के लिये पति व्रत का पालन करना जितना आवश्यक है उससे अधिक आवश्यक है पति का पत्नी व्रत का पालन करना। दोनों का महत्व समान है, अतः स्त्री का सम्मान करें।

माया और विद्या

- अविद्या और विद्या के बारे में जानें और उनके भेद को समझें। हमें माया और जगत के बंधन से मुक्त होने के लिए ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को विकसित करना चाहिए। मानव को विवेकी होना चाहिए और माया के फंदों से मुक्त होना चाहिए।

नौ व्यक्तियों से बैर नहीं करना चाहिए

- शस्त्री : जिसके हाथ में शस्त्र अर्थात् हथियार हो उससे विरोध या झगड़ा नहीं करना चाहिए। क्योंकि क्रोध अधिक बढ़ने पर शस्त्री अपने हथियार का प्रयोग कर विरोध करने वाली की जान ले सकता है।
- मर्मी : जो हमारे सभी रहस्यों को जानता है उस व्यक्ति से विरोध नहीं करना चाहिए। जैसे कि विभीषण रावण के वध का कारण बना।
- प्रभु: अर्थात् मालिक या राजा से शत्रुता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उसके पास अपार शक्ति होती है वह आपका बड़ा अहित कर सकता है।
- सठ: अर्थात् मूर्ख व्यक्ति से बुराई नहीं करनी चाहिए। शास्त्रों में तो ऐसे लोगों से दोस्ती करना भी अच्छा नहीं माना गया है। यह अपने ही हित या अहित के बारे में नहीं सोचते हैं।
- धनी : बहुत ही समृद्ध व्यक्ति के साथ शत्रुता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि वह कानून और न्याय को भी खरीद सकता है।
- वैद्य: अर्थात् डॉकटर से कभी झगड़ा नहीं करना चाहिए नहीं तो वह कभी भी आपको संकट में डाल सकता है।
- बंदि: अर्थात् याचक या इधर-उधर खबर देने वाले। ऐसे व्यक्ति से भी बुराई करना ठीक नहीं माना जाता।
- कवि : कवि की श्रेणी में पत्रकार, वक्ता और लेखक को भी ले सकते हैं। इन लोगों से भी शत्रुता नहीं करनी चाहिए।

- खाना बनाने वाले रसोइया से भी कभी बुराई नहीं करनी चाहिए, अन्यथा आपको हानिकारक भोजन दे सकता है।

चौदह व्यक्ति मरे हुए के समान हैं

- मरे हुए को मारने में हमारी कोई भलाई नहीं है अतः हमें मरे हुए को नहीं मारना चाहिए जैसे– वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढ़ा, नित्य का रोगी, निरन्तर क्रोधयुक्त रहनेवाला, भगवान विष्णु से विमुख, वेद और संतों का विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करने वाला, परायी निन्दा करने वाला और पाप की खान (महान् पापी)।

चार रिश्तो में समान दृष्टिकोण

- छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र वधू और पुत्री ये चारों मातृवत हैं। इनको हमें बुरी दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

मंत्री, वैद्य और गुरु से बैर नहीं करना चाहिए

- हमें किसी भी प्रकार से मंत्री, वैद्य और गुरु को अप्रसन्न नहीं करना चाहिए क्योंकि मंत्री से एक अच्छी हितकारी मंत्रणा प्राप्त होती है, वैद्य हमारे शरीर की बीमारी को दूर करता है एवं गुरु की तो महिमा अपरंपार है जो हमारी मन की बीमारी दूर करते हैं एवं हमारा मार्गदर्शन करते है।

इस संसार में सबकी जरूरत है

- किसी को छोटा या महत्वहीन नहीं समझना चाहिए। हर व्यक्ति अपनी अलग पहचान, महत्व और क्षमताओं के साथ आता है।

रिश्ता बराबरी वालों में होना चाहिए

- हमें प्रीति और वैर समान (बराबरी वाले) व्यक्ति से करनी चाहिए। तभी सामंजस्य ठीक रहेगा।

किसके बिना क्या नहीं हो सकता?

- अज्ञानता को दूर करने के लिए ज्ञान की खोज करें। यह ज्ञान मुक्ति का मार्ग होता है और अज्ञान से प्रतिरोध करने में सहायता करेगा। अध्ययन, स्वाध्याय, और सत्संग में समय बिताएं।
- गुरु की सेवा करें और उनके गुणों से प्रभावित हों। उनके मार्गदर्शन में चलें और उनसे प्रेरणा लेते रहें।
- विचारों की शुद्धता के लिए ध्यान करें। आत्मज्ञान को विकसित करें।

सच्चे मित्र एवं कुत्सित मित्र के गुण

- अपने मित्रों के दुःख को समझें और उनकी सहायता करें। चाहे दुःख की घड़ी हो या खुशी की, मित्रों का साथ निभाएँ।

- मित्रों को बुरे मार्ग पर जाने से रोकें और उन्हें सही दिशा में प्रेरित करें। सदा हित करें और सही कर्म करें।
- आपको उनके गुणों की प्रशंसा करनी चाहिए और उनके अवगुणों को छिपाने की कोशिश करनी चाहिए।
- हमें कपटी मित्रों से बचना चाहिए। हमें उन लोगों को त्याग देना चाहिए जो पीठ पीछे बुराई करते रहते हैं।
- हमें सत्यवादी, ईमानदार और हितकारी मित्रों का चयन करना चाहिए।

स्वार्थ का जगत

- हमें स्वार्थ की आदतों को छोड़कर निःस्वार्थता को महत्व देना चाहिए। निःस्वार्थता हमें अपने आपको अन्यों के लिए समर्पित करने, साझा करने और प्रेम करने की क्षमता प्रदान करती है।
- यदि हम स्वार्थ के स्थान पर सच्चे प्रेम का आदान-प्रदान करते हैं, तो हम समाज में एक मधुर और स्थायी संबंध निर्माण कर सकते हैं। इसके लिए हमें दूसरों की भलाई को ध्यान में रखने, उनकी मदद करने और उन्हें प्रेम से संबोधित करने की कोशिश करनी चाहिए।
- सबके लिए सेवा और समर्पण की भावना को बढ़ाना चाहिए। हमें समाज के दुखी, गरीब और कमजोर लोगों की मदद करने, अपने समय, धन और संसाधनों को सामाजिक प्रगति और सार्वभौमिक कल्याण के लिए उपयोग करने का प्रयास करना चाहिए।

प्रतिष्ठा की छाया में हमारा मूल्य

- अपने चरित्र एवं प्रतिष्ठा को बनाए रखना चाहिए।
- नैतिक मूल्यों का पालन करना चरित्र का महत्वपूर्ण भाग है। सच्चाई, ईमानदारी, समर्पण, संयम, सहानुभूति और अन्य नैतिक मूल्यों को अपने जीवन बनाए रखें।

नवधा भक्ति

- संतों का सत्संग, अभिमान रहित होकर गुरु के चरणकमलों की सेवा, छल-कपट का त्याग, इन्द्रियों का निग्रह, जगत को समभाव से देखना, संतोष करना, कपट रहित बर्ताव करना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना इन नौ भक्तियों को अपने जीवन में उतारना चाहिए।

सुबुद्धि और कुबुद्धि

- अच्छी बुद्धि को बनाए रखें और कुबुद्धि का त्याग करें क्योंकि जहां सुमति होती है वहां समृद्धि और खुशहाल जीवन है। और जहाँ कुमति है वहाँ विपत्तियां ही घर करती हैं।
- सकारात्मक सोचने का अभ्यास करें और नकारात्मक विचारों को दूर रखने का प्रयास करें। अपने आसपास की चीजों में सकारात्मकता को ढूँढें। नए विचारों को समझें, नए विषयों में पढ़ाई करें।

मनुष्य तन का महत्व

- मनुष्य शरीर को महत्व दें और सम्मान दें क्योंकि यह एक सत्कर्म करने का साधन है अतः इसे स्वस्थ और सकारात्मक ढंग से रखने के लिए ध्यान दें क्योंकि मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्ष के लिए सीढ़ी है।
- शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ, मानसिक स्वास्थ्य को भी महत्व दें। अपने दोषों और कमजोरियों के बारे में जागरूक रहें और स्वयं के सामर्थ्य पर विश्वास रखें।

युगों की विशेषताएं

- लोगों को युगों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित करें, जैसे कि किस युग में क्या धर्म का प्रभाव होता है और वे किस युग में रह रहे हैं। इससे उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक समझ में वृद्धि होगी।
- लोगों को ये बताएँ कि सामाजिक और नैतिक दायित्व क्या हैं और वे इसे कैसे अपने जीवन में सम्मिलित कर सकते हैं। धर्म के माध्यम से सेवा, सहानुभूति और समरसता के लिए प्रेरित करें।

राम राज्य की महिमा

- सभी नागरिकों को सेवा के प्रति जागरूक बनाना चाहिए। लोगों में परोपकार, सद्भावना, और सहानुभूति की भावना को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- सभी लोगों को समानता और न्याय पाने का अधिकार होना चाहिए। किसी भी धार्मिक, जातिगत या सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।
- सभी लोगों को आर्थिक और सामाजिक रूप से सुरक्षित रखने के लिए विकास के नए मार्गों को खोजना चाहिए। गरीबी और निर्धनता को कम करने के लिए सामाजिक कल्याणकारी योजनाओं को लागू करना चाहिए।
- एक न्यायपूर्ण शासन प्रणाली स्थापित करना, जिसमें सभी लोगों को समान अधिकार, न्याय और सुरक्षा मिले।
- रामराज्य निर्माण हेतु सामाजिक एकता, भाईचारा और संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। सभी लोगों को आपसी समझ, सम्मान और सहयोग के साथ रहने की प्रेरणा देनी चाहिए।
- स्त्रियों को स्वतंत्रता, शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, और समान अवसरों की पहुंच प्रदान करने के लिए कठोरता से काम करना चाहिए।

तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में निहित शैक्षिक मूल्य से संबंधित दोहों एवं चौपाइयों को (विभिन्न शीर्षकों जैसे– संत महिमा, दुष्टों के गुण, सत्संगति, स्वार्थ की दुनिया, भ्रातृ प्रेम आदि) के माध्यम से हमारे पाठ्यक्रम में अवश्य शामिल किया जाना चाहिए।

किसी भी शोध की शैक्षिक उपादेयता बताना अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तुत लघु शोध का शीर्षक **'रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता'** जिससे शिक्षक, विद्यार्थी एवं जन सामान्य प्रेरणा प्राप्त अपना जीवन सफल कर सकेंगे। संत तुलसीदास जी ने कुल बारह कृतियों की रचना की। जिसमें उनका नाम हिन्दी साहित्य के जगत में सदा के लिए अमर हो गया। प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध में संत तुलसीदास रचित रामचरितमानस का अध्ययन कर 46 शीर्षकों का नाम देकर के चौपाइयाँ और दोहों को छाँटा है जिनकी भावार्थ एवं प्रासंगिकता सहित विवेचना की गई है जिन्हें शिक्षा के विभिन्न स्तरों में हिंदी के पाठ्यक्रमों सम्मिलित किए जाने की आवश्यकता है। ताकि विद्यार्थी परिचित हो सके तथा उनसे मिश्रित मूल्यों का आत्मसात कर सकें। शैक्षिक उपादेयता निम्नलिखित बिन्दुओं में वर्णित की गई है—

- ✓ ये भावार्थ धार्मिक जीवन में नैतिक मूल्यों को स्थापित करने के लिए प्रेरित करते हैं और सच्चे संतों की महिमा को बताते हैं। अहिंसा, समता, विनम्रता, सेवा भाव, वैराग्य और अन्य महत्वपूर्ण गुणों को बताते हैं। इनका उपयोग आदर्श जीवन के निर्माण और समाज में सद्गुणों को फैलाने के लिए किया जा सकता है।
- ✓ दिए गए शैक्षिक परक दोहों, चौपाइयों से हमें यह सीख मिलती है कि दुष्टों के व्यवहार में दोष होते हैं और उनका संग सदा दुःखदायी होता है। हमें ऐसे दुष्टों से दूर रहना चाहिए। हमें सत्य, दया, प्रेम और न्याय की प्रथा को अपनाना चाहिए और दुष्टता, क्रोध, माया और लोभ का त्याग करना चाहिए। विनय, नम्रता और सत्य की प्राप्ति के लिए हमें नीच व्यक्तियों से संबंध नहीं बनाना चाहिए और सत्य पर दृढ़ रहना चाहिए इस प्रकार ये भावार्थ हमें सच्चे और उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित करते हैं।
- ✓ सत्संगति धर्म, संस्कृति और शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं जो हमें ज्ञान, भक्ति और धार्मिक शिक्षा में सहायता करता है। इससे व्यक्ति का मानसिक विकास, नैतिक विकास होता है। क्रोध, मान, लालच और कामना के कारण व्यक्ति कुसंगति में रहकर नैतिक मूल्यों को भूलने, पाप करने और अनुचित कार्य करने को प्रवृत्त करता है।
- ✓ परोपकार छात्रों को सहानुभूति, उदारता और सहायता के गुण सिखाती है जो समृद्धि और सफलता के मार्ग को प्रशस्त करती हैं। इससे छात्रों में सामाजिक कर्तव्य एवं समाज सेवा की भावना भी विकसित होती है।
- ✓ गुरु सत्य का प्रकाशक हैं जो छात्रों को ज्ञान, मार्गदर्शन, आदर्शों को प्रदान करते हैं, अध्ययन में प्रेरित करते हैं और गुरु की महिमा शिक्षा के आदर्शों और विचारों को समर्पित है।
- ✓ माता-पिता, गुरु, और स्वामी के प्रति भक्ति हमारे जीवन में आदर्श और शिक्षाओं का स्रोत है। उनके मार्गदर्शन से हम धार्मिकता, समर्पण, और नैतिकता को सीखते हैं।
- ✓ एक श्रेष्ठ पुत्र के क्या कर्तव्य है यहां इसको दर्शाया है जो पाठ्य पुस्तकों में रखना महत्वपूर्ण है।

- ✓ मित्रता, स्वामी-सेवा, पिता-प्रेम और गुरु-शिक्षा के महत्व को समझना आवश्यक है। ये रिश्ते जीवन के मूल आधार होते हैं जिन्हें बिना संदेह के स्वीकारना चाहिए।
- ✓ शिक्षात्मक उपदेश है कि तप (साधना) से सुख प्राप्त होता है और दुःख और दोषों का नाश होता है।
- ✓ "धरमु न दूसर सत्य समाना।" यह चौपाई छात्रों को सत्य के प्रति समर्पित रहने, नैतिकता को प्राथमिकता देने के लिए प्रेरित करती है।
- ✓ कुछ चौपाइयों के माध्यम से तुलसीदासजी ने सुंदर वेष में छिपे धोखे का सच्चाई में परिचय कराया है। शिक्षाप्रद उपदेश यह है कि विवेकी बनने से दोषों से बचते हैं और गुणों को अपनाते हैं।
- ✓ हमें सभी प्रकार के विकारों का त्याग करके मन, वचन, और कर्म से सद्कर्मों को करते रहना चाहिए।
- ✓ हम दूसरों को अपने से छोटा न समझें। शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा समझकर नजर अंदाज न करें। विरोधी की तेजस्विता को भी हमारे लिए गम्भीरता से लेना चाहिए।
- ✓ छात्रों को समय का महत्व समझने, व्यर्थ विचारों के बजाय कर्म के मार्ग पर चलने, जिम्मेदारी और समय का सदुपयोग करने की सीख देती है।
- ✓ विद्यार्थी को साहसपूर्वक अपनी क्षमताओं का प्रयोग करना चाहिए और कायरता से बचना चाहिए जिससे उसका प्रताप बना रहे। इस दोहे से हमें वीरता और साहस का महत्व समझने की शिक्षा मिलती है।
- ✓ इसमें योग साधना के लिए मोह, ममता, मद जैसे दुष्ट गुणों को त्यागने की प्रेरणा मिलती है।
- ✓ शुभ और अशुभ कर्मों का फल ईश्वर द्वारा दिया जाता है। व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार फल पाता है।
- ✓ हमें सीख मिलती है कि केवल उपदेश देना जब तक सार्थक नही है जब तक पालन नहीं किया जाए।
- ✓ यह चौपाइयाँ धार्मिक शिक्षा को समर्पित हैं और जीवन में सही और गलत के अंतर को समझाती हैं। इनसे हमें यह सीख मिलती है कि धर्म के अनुसार सही कर्म करना और दूसरों के प्रति सम्मान रखना हमें सफलता की राह पर ले जाती है।
- ✓ हमें अनुचित कार्यों से बचना चाहिए और उचित कार्यों को करना चाहिए। हमें अपनी गलतियों से सीखकर बुद्धिमानी के बल पर आगे बढ़ना चाहिए।
- ✓ राम कथा के माध्यम से भ्रातृ प्रेम की शिक्षा हैं कि जीवन में धन, स्त्री, परिवार और सम्पत्ति आते-जाते रहते हैं, लेकिन सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। इसलिए हमें प्रेम के साथ आपसी संबंध बनाना चाहिए। यह हृदयस्पर्शी संदेश है कि हमें भाईचारे को महत्व देना चाहिए।
- ✓ ये चौपाइयाँ महिला सम्मान, पतिव्रता धर्म, पति-पत्नि व्रत धर्म, प्रेम और नैतिकता के महत्वपूर्ण संदेश प्रदान करती हैं। वे दाम्पत्य जीवन को सुरक्षित रखने और सही मानसिकता को प्रोत्साहित करती हैं।

- ✓ यह चौपाइयाँ यह शिक्षा देती हैं कि नीति, धर्म, समर्पण, विद्या, विवेक और गुणवत्ता के बिना श्रम बेकार है। इससे विद्यार्थियों को समझदार बनने के लिए प्रेरित करती है।
- ✓ यह चौपाई शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी है, क्योंकि इसमें समानता, सम्मान की भावना और नारी सम्मान की भावना व्यक्त की जाती है। छोटे भाई की स्त्री, बहिन और पुत्र की स्त्री, और कन्या इन्हें बुरी नजर से नहीं अपितु समान दृष्टि से देखना चाहिए। यह सामाजिक अनुशासन और सभ्यता को बढ़ावा देती है।
- ✓ हमें यहां इस बात की शिक्षा मिलती है कि किन व्यक्तियों से मित्रता करनी चाहिए किनसे नहीं।
- ✓ मन्त्री, वैद्य और गुरु, ये तीनों आदरणीय हैं क्योंकि राज्य, शरीर और धर्म, यह तीन चीजें इन्हीं पर आधारित हैं।
- ✓ इस संसार में कोई भी छोटी-बड़ी वस्तु महत्वहीन नहीं है। एक-दूसरे को सबकी जरूरत है।
- ✓ मनुष्य तन के महत्व से संबंधित इन चौपाइयों की शैक्षिक उपादेयता है कि मनुष्य को अपने शरीर की महत्वपूर्णता समझनी चाहिए।
- ✓ रामराज्य की महिमा से संबंधित इन चौपाइयों की शैक्षिक उपादेयता है कि रामराज्य एक आदर्श समाज है, जिसमें सभी धर्मों के प्रति समरसता और समानता होती है। इस राज्य में सभी लोग अपने धर्मग्रंथों के आचारानुसार जीवन व्यतीत करते हैं और परस्पर प्रेम का भाव रखते हैं। यह शिक्षा समृद्ध समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण है।

भावी शोध हेतु सुझाव

रामचरितमानस में विभिन्न भावनाओं के आधार पर कई विषय हैं जैसे कि भक्ति, प्रेम, धर्म, भारतीय संस्कृति इत्यादि भावी शोध में इन विषयों पर गहन अध्ययन किया जा सकता है।

भावी शोध में शोधकर्ताओं के शोध, लेख, शोधपत्रों, लेखकों की टिप्पणियाँ और भाषाशास्त्रीय विशेषज्ञों के लेखों का अध्ययन कर रामचरितमानस की भावनाओं के विशेष पहलुओं को समाहित किया जा सकता है।

भावी शोध में रामचरितमानस का अन्य प्रसिद्ध सद्ग्रंथों गीता, महाभारत, रामायण, नीतिशतकम् , चाणक्य नीति, विदुर नीति, हितोपदेश, इत्यादि से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

भावी शोध में दो भिन्न कवियों की रचनाओं में निहित शैक्षिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन हिंदी भाषा के प्रसिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास जी की रचना पर आधारित है भावी शोध में हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषा के कवियों की रचनाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
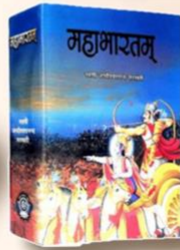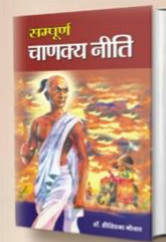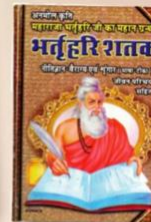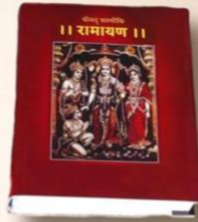
"एक अच्छी सोच का निर्माण केवल अच्छी किताबों को पढ़कर ही किया जा सकता हैं।"

"किताबों में इतना खजाना छुपा है, जितना कोई लुटेरा कभी लूट नहीं सकता।"

"बिना किताबों का कमरा बिना आत्मा वाली देह की तरह है।"

साध्वी मुक्ता (2017)। *रामचरितमानस के प्रमुख नारी पात्रों की सामाजिक यथार्थता: एक अध्ययन*। पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। डॉ० बाबासाहेब अंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद। http://hdl.handle.net/10603/477039

पटेल, प्रफुल्ल एम० (2012)। *रामचरितमानस का वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य।* पी-एच०डी० शोध। महादेव देसाई समाज सेवा महाविद्यालय, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद। http://hdl.handle.net/10603/9131

राठौर, आरती देवी आर (2013)। *रामचरितमानस में हास्य व्यंग्य।* पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। महादेव देसाई समाज सेवा महाविद्यालय, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद http://hdl.handle.net/10603/9142

शुक्ला, सपना (2002)। *तुलसीदास कृत रामचरितमानस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि।* पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। श्री हरिशचंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी। http://hdl.handle.net/10603/177550

निंबार्क, निशा ज० (2009)। *रामचरितमानस में निरूपित यथार्थ और कल्पना।* पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। महादेव देसाई समाज सेवा महाविद्यालय, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद। http://hdl.handle.net/10603/192475

शिवनारायण (2018)। *तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' और राधेश्याम कथावाचक कृत 'रामायण' का दर्शन एवं भक्ति की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन।* पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र। http://hdl.handle.net/10603/273612

सुमनलता (2018)। *रामचरितमानस में पर्यावरण।* पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल। http://hdl.handle.net/10603/309461

जोशी, नरेश प्रभु राम भाई (2021)। *तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' एवं मैथिलीशरणगुप्त कृत 'साकेत' की तुलनात्मक समीक्षा।* पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। महादेव देसाई समाज सेवा महाविद्यालय, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद। http://hdl.handle.net/10603/358781

द्विवेदी, जया (2005)। *रामचरित मानस पर भुशुण्डि रामायण के प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन।* पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर। http://hdl.handle.net/10603/177507

त्रिपाठी, स्मिता (2008)। *रामचरित मानस में सनातन धर्म की अवधारणा का पात्रों पर प्रभाव।* पी-एच०डी० शोध (हिंदी)। अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, अतर्रा (बाँदा)। http://hdl.handle.net/10603/17871

संत स्वभाव (2023, जून 11) hagwatkathanak. https://www.bhagwatkathanak.in/2019/07/sant-ke-gun.html?m=1

दुष्ट न छोड़े दुष्टता (2023, जून 11) kahanikitab. https://www.kahanikitab.com/2021/04/blog-post_29.html?m=1

संतों के प्रेरक प्रसंग (2023, जून 13) google. http://surl.li/izbsv

वाल्मीकि कथा (2023, जून 19) prabhasakshi. http://surl.li/iyzrm

संगति का असर कहानी: जैसे संग वैसा रंग | (2023, जून 19)apratimblog. https://apratimblog.com/sangati-ka-asar-kahani/

खुशी कुछ पाने से नहीं, बल्कि देने से मिलती है (2023, जून 19) naidunia. http://surl.li/izbtk

जीवन में दुःख के कारण (2023, जून 19) pasandhai. https://pasandhai.in/jivan-me-dukh-ka-karan-motivational-short-hindi-story/

परोपकार पर प्रेरक प्रसंग (2023, जून 19) apratimblog. https://apratimblog.com/paropkar-ki-bhavna-krishna-aur-arjun-ki-kahani/

दधिचि ऋषि की महान त्याग की कहानी क्या है? (2023, जून 19) quora. http://surl.li/ifayt

श्रीमदीश्वरकृष्ण-विरचिताःसांख्यकारिकाः पुस्तक से आचार्य – जगन्नाथशास्त्री द्वारा(अन्वय-अर्थ- गौडपादभाष्य – भाष्यानुवाद- टिप्पणी-विशदभूमिका- सहिताः)

एकलव्य की गुरुभक्ति (2023, जून 20) adhyatmasagar. https://www.adhyatmasagar.com/eklavya-ki-guru-bhakti.html

प्रेरक प्रसंग: मुझे भी गुरु बनना है..(2023, जून 20)webdunia. http://surl.li/izcaq

श्रवण कुमार की कथा (2023, जून 21) momjunction.

https://www.momjunction.com/hindi/kahaniya/shravan-kumar-ki-katha-story/

शास्त्रों में चार प्रकार के पुत्र (2023, जून 21) gyansadhna. http://surl.li/izcaq

पुत्र चार प्रकार के होते हैं (2023, जून 21) gurutvakaryalay.

http://gurutvakaryalay.blogspot.com/2010/10/blog-post_9592.html?m=1

सेवक बन जाओ (2023, जून 22) hindikahani.

https://www.hindikahani.hindi-kavita.com/Sewak-Ban-Jao-Lok-Katha.php

किसी के यहां बिना बुलाए नहीं जाना चाहिए (2023, जून 22) bhasakar. http://surl.li/ihtyx

समरथ को नहीं दोष गुसाईं (2023, जून 22) quora. http://surl.li/ihxsm

गीता में तब तीन प्रकार के बताए हैं (2023, जून 22)jagran. http://surl.li/iyzpb

प्रेरक प्रसंग कर्तव्य का तप (2023, जून 22) livetoday. http://surl.li/iiedp

परम सत्य क्या है (2023, जून 23) my-knowledge. https://my-knowledge.in/satya-kya-hai/

राजा हरिश्चंद्र की कहानी (2023, जून 23) preraktalks. http://surl.li/iqnlj

साधु और ठग की कहानी (2023, जून 23) hindivillage.

https://hindivillage.com/story-of-the-monk-and-the-thug/

आयुर्वेद का व्यापक क्षेत्र: मानस दोष (2023, जून 24)

http://literature.awgp.org/book/aayurved_ka_vyapak_kshetra/v1.11

काम, क्रोध, मद, लोभ, सब, नाथ नरक के पंथ (2023, जून 24) tapnewsindia.

https://www.tapnewsindia.com/2020/06/blog-post_942.html?m=1

अपने दुश्मन आग और बीमारी को कभी छोटा नहीं समझना चाहिए (2023, जून 24) bhaskar. http://surl.li/iqnko

समय का सदोपयोग और महत्व (2023, जून 24) hindisoch.

https://www.hindisoch.com/importance-of-time-in-hindi/

समय किसी के लिए नहीं रुकता (2023, जून 24) hbmotivation.

https://hbmotivation.com/value-of-time-motivational-story/

प्रेरक प्रसंग– महान भारतीय योद्धा अश्वपति की वीरता (2023, जून 25) hindisahityadarpan.

http://surl.li/izbul

सच्चा शूरवीर मनुष्य कौन है (2023, जून 25) knowledgelifetime.

https://www.knowledgelifetime.com/2020/11/who-is-true-knight.html?m=1

कैसा होना चाहिए योगी (2023, जून 26) literature. http://literature.awgp.org/book/Yug_Gita/v5.9

प्राचीन भारत के योगी पुरुष (2023, जून 26) sadhguru.

https://isha.sadhguru.org/in/hi/wisdom/article/pracheen-bharat-ke-yog-purush

कर्म की महत्ता (2023, जून 26) jagran. http://surl.li/izbvu

कर्म और भाग्य की कहानी (2023, जून 26) hindibabu.

https://www.google.com/amp/s/www.hindibabu.com/karm-aur-bhagya-ke-kahani/amp/

जो करो सोच समझ कर करो (2023, जून 27) hindivarta.

https://www.hindivarta.com/jo-karo-soch-samajh-kar-karo/

बिना विचारे, करो न कोई काम (2023, जून 27) preply.

https://preply.com/en/question/binaa-vicaare-kro-n-koii-kaam-lghu-kthaa-likhie-75394

आदर्श भाई (2023, जून 27) bhashkar. http://surl.li/inhgs

रामायण से भ्रातृ प्रेम प्रेम (2023, जून 27) speakingtree. http://surl.li/iqnmg

पतिव्रत धर्म की गरिमा (2023, जून 28) literature.

http://literature.awgp.org/akhandjyoti/1964/March/v2.18

शिव पुराण की पार्वती से रामायण की सीता तक का पतिव्रत धर्म की विवेचना (2023, जून 28) hindimedia.

http://surl.li/izbvl

माया और विद्या (2023, जून 28) wikipedia. http://surl.li/inwbs

काम और कांचन से सावधान (2023, जून 28) bhashkar. http://surl.li/iyzpx

रामायण के अनुसार पति पत्नी का रिश्ता (2023, जून 29) bhashkar. http://surl.li/iqnng

पतिव्रत की तरह पत्नी व्रत भी अत्यावश्यक (2023 जून, 29) literature.

http://literature.awgp.org/akhandjyoti/1965/November/v2.17

चाणक्य नीति: 9 प्रकार के लोगों से भूलकर भी न करे दुश्मनी (2023, जून 30) jantaserishta.

http://surl.li/iyzqg

जिनमें यह 14 दुर्गुण है वह मृतक समान है (2023, जून 30) webdunia.

https://hindi.webdunia.com/dussehra-special/angad-ravan-samvad-117092800065_1.html

आराधना कथा कोश— चाणक्य की कथा (2023, जुलाई 01) nikkyjain. http://surl.li/iqrom

चंद्रगुप्त और चाणक्य के बीच टकराव (2023, जुलाई 01) hindi. Webdunia. http://surl.li/iqmlp

गुरु का स्थान श्रेष्ठ, श्रेष्ठ (2023, जुलाई 01) bhaktibharat. http://surl.li/izbwm

पाप कर्म क्या है (2023, जुलाई 01) literature. http://literature.awgp.org/akhandjyoti/1947/July/v2.13

सच्चा मित्र अमूल्य धन (2023, जुलाई 03) hindikahaniz.

https://hindikahaniz.com/sacha-mitra-story-in-hindi-with-moral/

धर्म बुद्धि और पाप बुद्धि मित्रों की कहानी (2023, जुलाई 03) hindisuccsessstories. http://surl.li/iskxw

सभी समस्याओं का मूल है स्वार्थ (2023, जुलाई 04) jagran. http://surl.li/iyznk

स्वार्थ और लोभ में न छोड़े अपनों का साथ (2023, जुलाई 04) jagran. http://surl.li/iyznp

जीवन–मूल्य (2023, जुलाई 05) jagran.

https://www.jagran.com/lite/editorial/apnibaat-12331783.html

चरित्र का महत्व (2023, जुलाई 05) newstrack. http://surl.li/iyznu

भक्ति (2023, जुलाई 05) facebook. http://surl.li/iujzd

सुबुद्धि और कुबुद्धि (2023, जुलाई 06) drsohanrajtater.

http://drsohanrajtater.com/admin/floorplan_images/SRT%20ARTICLE-1063.pdf

दुर्लभ मनुष्य जीवन– प्रेरक कहानी (2023, जुलाई 06) bhaktibharat. http://surl.li/izbxc

चार युगों का महत्व क्या है (2023, जुलाई 07) webdunia. http://surl.li/iyzok

युग वर्णन (2023, जुलाई 07) wikipedia. http://surl.li/ivxok

राजा की सम्यक् दृष्टि (2023, जुलाई 07) bhaktibharat. http://surl.li/izbxc

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी (2023, जुलाई 07) paramhindi.

https://paramhindi.com/jaaki-rahi-bhawna-jasi-prabhu-murat-dekhi-tun-taisi/

यथा दृष्टि तथा सृष्टि (2023, जुलाई 07) hindisahityadarpan.

http://surl.li/izbym

(अ) तुलसीदास जी के समकालीन कवि

(ब) तुलसीदास जी के अप्रमाणिक ग्रंथ

(स) जीवन-वृत्त

पुस्तकें वो साधन हैं
जिनके माध्यम से हम
विभिन्न संस्कृतियों के
बीच पुल का निर्माण कर
सकते हैं।
- सर्वपल्ली राधाकृष्णन

परिशिष्ट—अ

तुलसीदास के समकालीन कवि

सूरदास
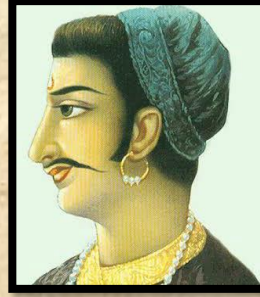
बिहारी

मीराबाई

केशवदास
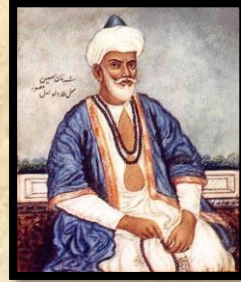
रहीमदास
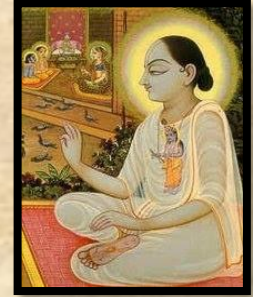
चैतन्य

नाभादास
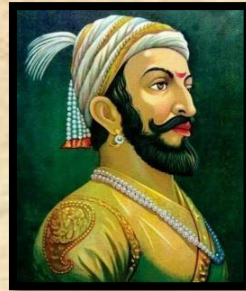
कवि भूषण

रसखान
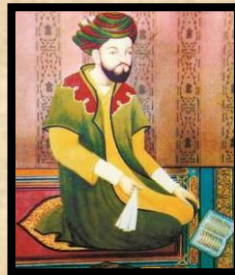
मलिक मोहम्मद जायसी

वल्लभाचार्य

परिशिष्ट—ब

कवि तुलसीदास के अप्रामाणिक ग्रन्थ

तुलसीसतसई सटीक

श्रीरामसतसई सटीक

महात्मा श्रीगोस्वामि तुलसीदासजी रचित

जिसमें

नानाप्रकारके नीतिशास्त्र ग्रन्थों से छांटकर अतीव मनोहर सातसौ दोहाओं में धर्मनीति वर्णित है

जिसको

जिला बारांबंकी मौजे मानपुर निवासि परमभक्त बैजनाथकुर्मी ने भागवतादि पुराणों के प्रमाणों से युक्त अत्यन्त परिश्रम से भाषा टीका किया है

चौथी बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपी

सन् १८९४ ई०

कुण्डलियारामायण।

कविकुलतिलक गोस्वामी

तुलसीदासजीकृत।

कलकत्ता

३८।२ भवानीचरणदत्तष्ट्रीटस्थित

बङ्गवासी ष्टीमेशीन प्रेसमें

श्रीनटविहारीराय द्वारा

मुद्रित और प्रकाशित।

सन् १९०३ ई०।

संकट मोचन

बाल समय रवि भक्षि लियो तब तीनहुँ लोक भयो अँधियारो।
ताहि सों त्रास भयो जग को यह संकट काहु सों जात न टारो॥
देवन आनि करी बिनती तब छाँडि दियो रबि कष्ट निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि संकट मोचन नाम तिहारो॥१॥

बालि की त्रास कपीस बसै गिरि जात महाप्रभु पंथ निहारो।
चौंकि महा मुनि साप दियो तब चाहिय कौन बिचार बिचारो।
कै द्विज रूप लिवाय महाप्रभु सो तुम दास के सोक निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि संकट मोचन नाम तिहारो॥२॥

अंगद के सँग लेन गये सिय खोज कपीस यह बैन उचारो।
जीवत ना बचिहौ हम सो जु बिना सुधि लाए इहाँ पगु धारो॥
हेरि थके तट सिंधु सबै तब लाय सिया सुधि प्रान उबारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि संकट मोचन नाम तिहारो॥३॥

रावन त्रास दई सिय को सब राक्षसि सों कहि सोक निवारो।
ताहि समय हनुमान महाप्रभु जाय महा रजनीचर मारो॥
चाहत सीय असोक सों आगि सु दै प्रभु मुद्रिका सोक निवारो।
को नहिं जानत है जगमें कपि संकट मोचन नाम तिहारो॥४॥

श्रीरामशलाका प्रश्नावली

मानसानुरागी महानुभावोंको श्रीरामशलाका प्रश्नावलीका विशेष परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उसकी महत्ता एवं उपयोगितासे प्राय: सभी मानसप्रेमी परिचित होंगे। अत: नीचे उसका स्वरूपमात्र अङ्कित करके उससे प्रश्नोत्तर निकालनेकी विधि तथा उसके उत्तर-फलोंका उल्लेख कर दिया जाता है। श्रीरामशलाका प्रश्नावलीका स्वरूप इस प्रकार है—

सु	प्र	उ	बि	हो	मु	ग	ब	सु	नु	बि	घ	धि	इ	द
र	रु	फ	सि	सि	रहिं	बस	हि	मं	ल	न	ल	य	न	अं
सुज	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	इ	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जे	इ	ग	म*	सं	क	रे	हो	स	स	नि
त	र	त	र	स	हुँ	ह	बु	ब	प	चि	स	हिं	स	तु
म	का	ा	र	र	म	मि	मी	म्हा	ा	जा	हू	हीं	ा	ा
ता	रा	रे	री	ह्न	का	फ	खा	जू	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	जो	गो	न	मु	जि	यँ	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	मि	स	रि	ग	द	न्मु	ख	म	खि	जि	म	त	जं
सिं	ख	नु	न	को.	मि	निज	र्क	ग	धु	ध	सु	का	स	र
गु	ब	म	अ	रि	नि	म	ल	ा	न	ढ़	ती	न	क	भ
ना	पु	व	अ	ा	र	ल	ा	ए	तु	र	न	नु	वै	थ
सि	हुँ	सु	म्ह	रा	र	स	स	र	त	न	ख	ा	ज	ा
र	ा	ा	ला	धी	ा	री	ा	हू	हीं	खा	जू	ई	रा	रे

संकट मोचन हनुमानाष्टक

परिशिष्ट—स

जीवन–वृत्त

व्यक्तिगत सूचना

नाम— भीम सिंह राजपूत

माता का नाम— बैनी बाई

पिता का नाम— अनंत सिंह

जन्म तिथि— 2 मार्च 1994

वर्तमान पता— मदनपुर रोड अर्हन फैशन हाउस के सामने की गली मास्टर कॉलोनी, मड़ावरा

स्थाई पता— ग्राम- नीमखेड़ा, पोस्ट- दिदोनियां, थाना- मदनपुर, तहसील- मड़ावरा, जिला- ललितपुर, राज्य- उत्तर प्रदेश, पिन कोड- 284404

मोबाइल नम्बर— +917388556915, +9369835416 **ईमेल:** bheemsingh7388@gmail.com

क्रमांक	परीक्षा का नाम	विश्वविद्यालय/बोर्ड/महाविद्यालय का नाम	वर्ष	प्राप्तांक	श्रेणी	प्रतिशत
1.	हाईस्कूल	यू०पी० बोर्ड, प्रयागराज	2009	365/600	प्रथम	60.83%
2.	इण्टरमीडिएट	यू०पी० बोर्ड, प्रयागराज	2012	340/500	प्रथम	68%
3.	स्नातक	बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी	2015	532/1000	द्वितीय	53.2%
4.	परास्नातक	बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी	2017	487/900	द्वितीय	54.11%
5.	बी०एड०	बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी	2020	841/1200	प्रथम	70.07%
6.	एम०एड०	बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी	2023	906/1200	प्रथम	75.5%

क्रमांक	शीर्षक	वर्ष	पृष्ठ संख्या	ISBN	वेबसाइट
1.	प्राथमिक विद्यालयों में हरीतिमाः वर्तमान परिदृश्य एवं भावी संभावनाएँ	2022	181	978-93-5636-692-3	https://archive.org/details/book-2_202207/mode/2up

कौशल/रुचियाँ: शिक्षण कार्य, कम्प्यूटर चलाना, पेंटिंग, गीत कविता लिखने और गाने का शौंक, योग–व्यायाम करना आदि।

घोषणा: मैं एतदद्वारा घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त सभी जानकारी मेरे संज्ञानानुसार सर्वोत्तम रूप से सत्य है।

दिनांक: 30/05/2025 **हस्ताक्षर**

रामचरितमानस की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रासंगिकता